छः विख्यात व्यक्ति कम्युनिज्मके प्रति अपने मत-परिवर्तन की कहानी कहते हैं

रिचर्ड राइट

पत्थर के देवता

आर्थर कोयस्लर

इगनेज़ियो सिलोने

लूई फ़िशर

स्टीफन स्पैण्डर

आन्द्रे जीद

पत्थर के देवता

लेखक :

आर्थर कोयस्लर इगनेज़ियो सिलोने
रिचर्ड राइट आन्द्रे जीद
लूई फिशर स्टीफन स्पैण्डर

अनुवादक :

सीताराम गोयल

प्रकाशक :

प्राची प्रकाशन

१२, चौरंघी स्क्वायर,

कलकत्ता

प्रकाशक—
प्राची प्रकाशन
१२, चौरंघी स्क्वायर,
कलकत्ता

प्रथम संस्करण
मई, १९५३
मूल्य एक रुपया

मुद्रक :—
उमादत्त शर्मा
रत्नाकर प्रेस
११।ए, सैयदसाली लेन,
कलकत्ता

दो शब्द

मूल अंग्रेजी पुस्तककी भूमिका ब्रिटेनके वामपक्षी सोशलिस्ट लेखक एवं विचारक मिस्टर रिचर्ड क्रॉसमैनने लिखी थी। हम उस भूमिकाका सम्पूर्ण अनुवाद प्रकाशित करनेमें असमर्थ हैं, क्योंकि पुस्तकका आकार आशाके विपरीत बड़ा हो गया है। इसलिए हम मिस्टर क्रॉसमैनके व्यक्तिगत विचार यहाँ न देकर केवल सारांशमें बता देना चाहते हैं कि यह पुस्तक लिखी जानेकी योजना क्योंकर बनी।

मिस्टर क्रॉसमैन एक बार आर्थर कोयस्लरके घर ठहरे हुए थे। राजनैतिक वाद-विवादमें गरम होकर कोयस्लरने कहा—"या तो आप समझ नहीं सकते या समझना नहीं चाहते। इङ्गलैंडके सभी कूपमण्डूक, आराम-तलब कम्युनिस्ट-विरोधियोंकी यह हालत है। आपको हमारी भविष्यवाणीसे घृणा होती है और हमारा साथी कहलानेमें आपको लाज आती है। किन्तु इतना याद रखिए कि आपके पक्षमें हम विगत-कम्युनिस्ट ही ऐसे लोग हैं, जो प्रस्तुत संघर्षको समझते हैं।"

बातचीतका रुख बदल गया। वे चर्चा करने लगे कि अमुक व्यक्ति क्यों कम्युनिस्ट बना और अमुक व्यक्तिने कम्युनिस्ट पार्टी क्यों छोड़ी अथवा क्यों नहीं छोड़ी। वाद-विवाद फिर गरम होने लगा, तो क्रॉसमैनने कहा—"ठहरिए। मुझे ठीक-ठीक बताइए कि आपने जब पार्टीमें

नाम लिखाया, तब कैसा लगा था। आज आप पार्टीके सम्बन्धमें क्या सोचते हैं, सो मैं नहीं जानना चाहता। उस दिन कैसा लगा था ?"

कोयस्लर अपनी कहानी कहने लगे, तो क्रॉसमैन बोल उठे—"यह सब तो एक पुस्तकके रूपमें आपको कहना चाहिए।"

इस प्रकार वे उन विगत-कम्युनिस्टोंकी चर्चा करने लगे, जो अपनी-अपनी आत्म-कथा कहनेके लिए तैयार हो जाएँगे। पहले-पहले तो अनेक नाम उनके सामने आए, किन्तु रात खत्म होनेके पूर्व उन्होंने छः लेखकोंके नाम पक्के कर लिए। वे कम्युनिस्ट-विरोधी प्रचारकी मात्रा बढ़ानेकी नहीं सोच रहे थे। उनका आशय था उस वातावरणका अध्ययन, जिसके कारण १९१७ और १९३९ के बीच कितने ही लोग कम्युनिस्ट बने थे। उस वातावरणको कल्पनाके बलपर अपने मानसमें लौटा लाना प्रत्येक व्यक्तिके बसकी बात नहीं। जो लोग आज भी क्रियात्मक राजनीतिमें लगे हैं, वे तो निश्चय ही ऐसा नहीं कर सकते ; क्योंकि उनके आत्म-सम्मानकी भावना उनको अपनी भूलें स्वीकार करने की इजाजत नहीं देती। इसलिए उन्होंने उन लेखकोंको ही चुना, जो किसी राजनैतिक दलबन्दीमें न पड़े हों।

हमें याद रखना चाहिए कि रूसकी क्रान्ति होनेके उपरान्त और स्टालिन-हिटलर समझौते तक, यूरोप तथा अमेरिकाके अगणित साहित्य-कार, मनीषी एवं बुद्धिवादी लोग कम्युनिज्मसे आकर्षित हुए थे। प्रथम महायुद्धने यूरोपके आत्म-विश्वास पर भारी चोट मारी थी। उसके पश्चात् १९२९-३० की मन्दीने पूँजीवाद पर टिके यूरोपके गणतन्त्रको हिलाकर प्रायः धराशायी कर दिया था। मुसोलिनी और हिटलरका

उदय, स्पेनका युद्ध, अबीसीनिया तथा चेकोस्लोवाकियाकी हत्या—ये सब ऐसी घटनाए थीं, जिनका प्रत्युत्तर यूरोपके पुराने उदारवादी सत्ताधीश साहसके साथ नहीं दे सके थे। उदारवादकी असफलताओंसे असन्तुष्ट कितने ही आदर्शवादी एक किनारा खोज रहे थे और बहुतोंको सोवियत् रूसमें एक नव-प्रभातकी झलक दिखाई देने लगी। रूसमें कुछ सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रयोग हो रहे थे और मास्को एक नए मानव और अभूतपूर्व मानव-समाजकी सृष्टिका दावा करता रहता था। उन्नीसवीं शताब्दीमें होनेवाली वैज्ञानिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक प्रगतिने यूरोपके मानसपर एक भावी स्वर्ण-युगकी आशाके बीज खूब गहरे बोए थे। विश्वासके पूरे और आँखोंके अन्धे अनेक बुद्धिवादी मान बैठे कि वह स्वर्ण-युग रूसकी ओरसे उनके अपने देशोंमें आएगा।

एक और भी कारण था। द्वितीय महायुद्धके पूर्व रूस यूरोपकी महाशक्तियोंके लिए एक अछूत देश था। कम्युनिज्मका विरोध करनेवालोंमें यूरोपके कट्टर पूंजीवादी, साम्राज्यवादी, फासिस्ट और नाज़ी लोग ही सबसे आगे थे। इस प्रकार एक मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाके कारण भी बहुतसे लोगोंको रूस और कम्युनिज्मसे सहानुभूति हो गई थी।

मास्कोके मुकदमोंमें पहले-पहल स्टालिनशाहीका काला चेहरा संसारको दिखाई दिया। १६३५-३८ के बीच स्टालिनने लेनिनके प्रमुख सहकारियोंको मौतके घाट उतार दिया। रूसके जिन लोगोंको १६१७ की क्रान्ति और उस समयके आशा-विश्वासकी याद थी, उन सभीको स्टालिनने अपना शत्रु समझ लिया और रूसके भीतर अनवरत

चलनेवाले हत्या-काण्डसे उड़कर रक्तके कुछ छींटे लौहयवनिकाके बाहर भी आ गिरे। इसके बाद स्टालिनने हिटलरसे समझौता करके नाज़ी जर्मनीको महायुद्धके लिए प्रोत्साहित किया; पोलैण्डकी हत्यामें हिटलर का हाथ बँटाकर लूटका आधा माल हड़प लिया तथा फिनलैण्ड जैसे दुर्बल देशपर बलात्कार करनेमें आगा-पीछा नहीं देखा। यह सब देखकर यूरोपके स्वप्नशील आदर्शवादी लोग, लेखक, विचारक तथा गणतन्त्र और समाजवादके हिमायती रूससे विमुख हो गए।

१९४१ के जूनमें हिटलरने रूसपर आक्रमण करके एक बार फिर रूसके प्रति सहानुभूतिका वातावरण पैदा किया। किन्तु इस बार सहानुभूति करनेवाले लोग दूसरे थे। चर्चिलने नतमस्तक होकर मार्शल स्टालिन तथा लाल-फौजको प्रणाम किया और अमेरिकामें रिपब्लिकन पार्टीके नेता वेण्डेल विल्कीने मुक्त-कण्ठसे रूसका गुण गान किया। हिटलरसे त्रस्त इन लोगोंके लिए स्टालिन एक "महान मित्र" बन गया। अमेरिकाके पत्रकारों, राजनीतिज्ञों तथा रूस-भक्तोंने उस समय रूस और कम्युनिज्मकी तारीफमें जिस साहित्यकी रचना की थी, वह आजके कम्युनिज्म-विरोधी अमेरिकन-साहित्यसे कुछ ही कम होगा।

द्वितीय महायुद्धके बाद संसारने स्टालिनके रूसको आँखें भरकर देखनेका अवसर पाया। पूर्वीय यूरोपके देशोंको हिटलरसे "मुक्त" करनेके लिए आगे बढ़ी लाल सेनाने लौटनेसे इन्कार कर दिया। महायुद्ध के समय किए हुए अनेक समझौतोंको स्टालिनने अपनी सुविधानुसार माना अथवा ठुकरा दिया। पूर्व जर्मनी, मान्चूरिया, रूमानिया, हंगरी इत्यादिको रूसने जिस प्रकार लूटा-खसोटा, उसकी तुलनामें यूरोपकी

पुरानी साम्राज्यशाहियाँ राम-राज्य बन गईं। रूससे संचालित यूरोप और एशियाकी कम्युनिस्ट पार्टियोंने अचानक रंग बदलकर "क्रान्ति" के नारे लगाने शुरू किए। जापान द्वारा तहस-नहस राष्ट्रवादी चीन रूसके पेटमें समा गया। बर्मा, मलाया, फिलिपाइन्ज, हिन्द-चीन इत्यादिमें कम्युनिस्टोंने गृह-युद्धकी ज्वाला जलाई। यह था रूसका साम्राज्यवाद।

इसके सिवाय द्वितीय महायुद्धने कुछ दिनके लिए रूस की लौह-यवनिकाको उठाकर रूसके नारकीय अभ्यन्तरका भी साक्षात्कार शेष संसारको करा दिया। रूसके अनेक नागरिक जर्मनीमें कैद होकर आए थे अथवा लाल सेनाके सिपाही बनकर रूसके बाहर निकले थे। पहले पहल बाहरका 'पूंजीवादी' संसार देखकर उनकी आँखें खुलीं और उन्होंने समझा कि रूसके सत्ताधीश बरसोंसे मिथ्या प्रचार कर रहे थे कि रूसके बाहर न रेलगाड़ियाँ हैं, न लिफ्ट, न भोजन, न वस्त्र। जीवन के साधन रूससे अधिक मात्रामें उन लोगोंने देखे, और देखा स्वाधीनता का वातावरण। उनमेंसे हजारोंने रूसमें लौटनेसे इन्कार कर दिया और रूसके सम्बन्धमें सत्यका उद्घाटन किया। इसी प्रकारके बाहरके लाखों लोगोंने रूसियोंके हाथोंमें पड़कर वहाँकी खुफिया फौज, गुलाम कैम्प तथा व्यापक भुखमरीसे परिचय प्राप्त किया। उनमेंसे जो अभी तक लौट सके हैं, उनकी आपबीतियां भी उसी सत्य-साहित्यका एक अंग है जो पिछले कुछ वर्षोंसे हमारे सामने आ रहा है। आज यदि कोई रूसको समाजवादी अथवा गणतान्त्रिक देश कहना चाहे तो सिवाय गाली-गलौज के उसको कोई दलीलें ही नहीं मिल सकेंगी। रूस तथा अन्य कम्युनिस्ट देशोंमें छपे और हमारे फुटपाथों पर रद्दीके दाम बिकनेवाले साहित्यका

अवलोकन करके कोई भी देख सकता है कि वहाँ गाली-गलौजके सिवाय और क्या-क्या है । खैर ।

हमारे देशमें भी कम्युनिज्मका एक इतिहास है । १६४२-४५ के पूर्व भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी एक प्रकारसे नदारद ही थी । कांग्रेसके भीतर घुसकर और राष्ट्रवादियों तथा समाजवादियोंके अज्ञान और ईमान्दारीसे लाभ उठाकर कम्युनिस्ट अपनी कुछ खिचड़ी कभी-कभी पका लेते थे । किन्तु देशकी जनतामें तथा राष्ट्रीय आन्दोलनके कर्ण-धारोंमें रूस और कम्युनिज्मके प्रति सहानुभूति ही थी । ब्रिटिश साम्राज्य-वादके विरुद्ध हमारे "वन्देमातरम्" के जयघोषमें "इन्क़लाब जिन्दाबाद" का रूसी स्वर भी मिल सकता था । उस स्वरका हमारे स्वरसे कितना मौलिक मतभेद है, इसका अनुभव हमें सर्वप्रथम १६४२ की अगस्त क्रान्तिके दिनोंमें हुआ । चर्चिल, एमरी, लिनलिथगो और मैक्सवेलके स्वरमें स्वर मिलाकर, "जनयुद्ध" के "रणबाकुरों" ने सहसा एक रहस्योद्घाटन किया—कि राष्ट्रपिता गांधी, जवाहरलाल नेहरू, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया इत्यादि सब "जनता" के शत्रु और न्यूनाधिक मात्रामें "फासिस्ट" हैं । इन्हीं दिनोंमें स्टालिनके ये सुपुत्र जिन्ना साहबके भक्त बने और पाकिस्तान की ऊटपटांग मांगको सिद्धान्त की रूपरेखा देकर जो धांधली फैलाई, उसका परिणाम तो हम अभी तक भुगत रहे हैं । आज भी अपने आपको उदारवादी और वामपन्थी कहनेवाला प्रत्येक भारतवासी "साम्प्रदायिकता" के भूतसे डरकर खुराफात बकता रहता है ।

किन्तु हमारी आँखें खुल चुकी हैं । हमने तेलंगानामें कम्युनिस्टोंका

ताण्डव नृत्य देख लिया है। आज कोई भी सच्चा राष्ट्रवादी अथवा समाजवादी कम्युनिस्टोंके मिथ्या प्रचारका शिकार नहीं हो सकता। फिर भी हम यह नहीं कह सकते कि देशके भीतर कम्युनिज्मको पांव टिकानेके लिए तिलभर स्थान नहीं रह गया। आज भी कम्युनिस्ट पार्टी चुनाव लड़ती है और कहीं-कहीं सफलता भी प्राप्त करती है। आज भी कम्युनिस्टोंके जलूस निकलते हैं, सभाएं होती हैं। क्यों? इसलिए कि आज भी कम्युनिस्टोंको कुछ कठपुतलियां मिल जाती हैं। ये कठपुतलियां कौन हैं?

कुछ लोग कहेंगे कि हमारे किसान, मजदूर तथा निम्न मध्यमवर्गके लोग कम्युनिज्मसे आकर्षित होते हैं। हम कहना नहीं चाहते किन्तु हमें कहना पड़ रहा है कि आँखोंके अन्धे ये लोग ही कम्युनिज्मके सबसे बड़े समर्थक हैं। ये लोग अपने आपको चाहे समाजवादी कहें चाहे कांग्रेसमैन चाहे और कुछ। एक झूठा तर्क देकर ये कम्युनिज्मको एक जनवादी सिद्धान्त बना डालते हैं, जब कि वस्तुत: कम्युनिज्म रूसके साम्राज्यवादी षडयन्त्रके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। कम्युनिस्ट पार्टीके जेनरल सेक्रेटरी कामरेड अजय घोषने अभी दो-चार महीने पहले एक लेख लिखा था। उसमें उन्होंने स्वीकार किया है कि—"इधर कुछ दिनोंमें हमने खूब सफलता पाई है, तो भी मजदूरों और किसानोंमें हमारा प्रभाव अभी तक न कुछ-सा ही समझना चाहिए।" हमारी समझमें नहीं आता कि एक दिवालिया पार्टी की साहूकारीका ढिंढोरा गैर-कम्युनिस्ट क्यों पीटते हैं?

तो हमारे देशमें कम्युनिज्मके समर्थक कौन लोग हैं, जिनकी ओर

संकेत करके अजय घोष आत्मतृप्ति अनुभव करते हैं ? यह जाननेके लिए बहुत मनन और अध्यवसाय की जरूरत नहीं। बस आँखें खोलकर अपने चारों ओर जो दस-पाँच, बीस-तीस कम्युनिस्ट, रूसभक्त अथवा चीनभक्त हैं उन्हींको पहिचान लीजिए। यदि आप कलकत्ते, बम्बई जैसे बड़े शहरमें रहते हैं तो दो-चार बार कम्युनिस्टों द्वारा आयोजित सिनेमाओं एवं प्रदर्शनियोंमें जाकर देखिए। कम्युनिस्ट पार्टीने इस देशमें अनेक गुप्त-अड्डे बनाए हैं, जिनमें प्रगतिशील लेखकसंघ, भारतीय गणनाट्यसंघ, महिला आत्मरक्षा समिति, भारत-चीन मैत्रीसंघ, सोवियत-यूनियन मित्रमण्डल इत्यादिको प्रायः सभी जानते हैं। इन सब अड्डोंपर नित्यप्रति कुछ-न-कुछ होता ही रहता है। आप भी जाकर सब देख सकते हैं। आपको वहाँ मजदूर किसान नहीं मिलेंगे। वहाँ आप देखेंगे उच्च मध्यवर्गके सजधजवाले पुरुष और नारियां जो नई-नई मोटरों पर चढ़कर आते हैं। यही लोग रूस और चीनसे थोड़ासा अनाज लाने वाले जहाजोंको माला पहिनानेके लिए दौड़ जाते हैं। इन्हींमेंसे कुछ लोग "भारतीय जनगणके प्रतिनिधि" बनकर मास्को, पैकिंग, वियना, बुडापेस्ट इत्यादिकी सैर करते हैं और संसारको "शान्ति" का सन्देश सुनाते हैं।

ये लोग कौन हैं ? ध्यानसे देखिए। ये किसान नहीं, मजदूर भी नहीं। प्रायः सभी अंग्रेजी पढ़े-लिखे उच्च मध्यवर्गके लोग हैं, जिनके हाथमें आज हमारे देशकी राज्यसत्ता भी है। कम्युनिस्ट पार्टीके नेताओंको भी पहिचानिए। उनमें अधिकतर जमींदारों, पूंजीपतियों, मन्त्रियों, गवर्नरों, जजों और राजदूतोंके बेटे, बेटियां, भानजे, भतीजे इत्यादि हैं।

इनमेंसे अधिकतर तो पैसेके बलपर इंगलैण्ड, अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस इत्यादिमें उच्च शिक्षा प्राप्त करके लौटे हैं। इन लोगोंने अपने देशको कभी अपनी आँखोंसे नहीं देखा, यहाँ की सभ्यता, संस्कृति और जनताको कभी अपना नहीं माना। अंग्रेजोंके राज्यमें ये ही लोग साहबियाना ठाटबाटसे क्लबोंमें शराब पीना और जूआ खेलना जीवनकी चरम उपलब्धि मानते थे। अंग्रेज कमजोर पड़े तो ये लोग हिटलर और जापानके भक्त बन गए। कांग्रेसके हाथमें सत्ता आने पर इन्होंने खद्दर पहिनकर गांधी टोपियाँ लगा लीं। अब कांग्रेसके विरुद्ध कुछ असन्तोष फैल रहा है और लाल चीनका नगाड़ा बज रहा है, तो ये मार्क्सवादी हो गए। सच पूछिए तो इन लोगों की अपनी जात ही नहीं है। जिधर ये लोग शक्ति देखते हैं, उधर ही इनको भगवान भी दीखने लगता है। शक्तिशालीकी स्तुति करना ही इनका एकमात्र धर्म है।

हम यह नहीं कहते कि ये लोग ईमान्दार नहीं। अधिकतर लोग ईमान्दार ही हैं। किन्तु ईमान्दारी जब तक मूढ़ रहती है तब तक उसका घातक होना अनिवार्य है। आप पूछेंगे कि विलायतमें पढ़े-लिखे लोग मूढ़ क्योंकर? हम कहेंगे, इसलिए कि अपने देशको जाननेके लिए ये लोग लन्दन, न्यूयार्क, पैरिस, मास्को और पैकिंगमें छपी पुस्तकें पढ़ते हैं। किसी अंग्रेजने यदि लिख दिया कि भारतवर्ष असभ्य देश है तो ये मान लेते हैं; 'टाइम' मैगजीनमें छप गया कि श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन प्रतिक्रियावादी और खूसट व्यक्ति हैं, तो ये टण्डनजीको देखने-सुननेकी जरूरत नहीं समझते; स्टालिनने कह दिया कि भारत स्वाधीन नहीं हुआ बल्कि १९५३ में भी एंग्लो-अमेरिकन साम्राज्यका उपनिवेश

है तो ये सड़क पर चलते-फिरते कुछ श्वेतांग लोगोंकी ओर उंगली उठा कर अथवा क्लाइव स्ट्रीटकी दस-पाँच अंग्रेजी फर्मोंके नाम गिना कर बातका अनुमोदन कर देते हैं ; पैकिंगके किसी चीथड़ेमें छप गया कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू अमेरिकन "साम्राज्यवाद" के "पागल कुत्ते" हैं तो इन्होंने जैसे वेदवाक्य सुन लिया ; मास्को रेडियोने यदि कह दिया कि नेताजी सुभाषचन्द्र "फासिस्ट गुण्डे" थे, तो इनको भी विश्वास होने लगता है। इन्हीं लोगोंका सहारा पाकर बंगलाके कम्युनिस्ट मासिक-पत्र "परिचय" को यह साहस हुआ कि विश्वकवि रवीन्द्रनाथ को खुलेआम "मागीर दालाल (वेश्याओंके दलाल)" कह दे। इसीलिए प्रेमचन्दके पुत्र अमृतराय द्वारा प्रकाशित कम्युनिस्ट पुराण "हंस" में योगीराज श्री अरविन्दको "घृणित जँगबाज़" बताया गया। "हंस" के उसी अंकमें "कबीर" और "बाणभट्टकी आत्मकथा" के लेखक पण्डित हजारी प्रसाद-द्विवेदीने कम्युनिस्टोंकी "शान्ति अपील" पर हस्ताक्षर करके जनतासे अपने "पदचिन्हों" पर चलनेकी अपील की थी।

इन लोगोंको सशक्त स्वरमें बताना पड़ेगा कि भारत अब स्वाधीन हो गया है और स्वाधीन भारतके लोग अपने भले-बुरेको समझनेकी क्षमता रखते हैं। हमारे स्वाधीन देशमें अनेक त्रुटियाँ हो सकती हैं ; हम रूस और चीनकी तरह कभी नहीं कहते कि हमारे देशमें स्वर्ग आ गया है। किन्तु त्रुटियाँ होनेका यह मतलब नहीं कि हम नाराज होकर स्टालिन और माओत्से तुँगको यहाँ बुलानेके लिए दौड़ जाएं। अपने देशमें भुखमरी, अन्याय, पाप और दमन देखते रहना तथा रूस और चीनमें स्वर्गकी झाँकी पाना—यह एक घातक देशद्रोह है। देशद्रोह करनेवाले

अधिक दिन तक जनतासे अपनी असलियत नहीं छुपा सकते, भले ही वे अपने-आपको गाँधीवादी कहें, महात्मा कहलवाएँ अथवा अर्थशास्त्रज्ञ और दार्शनिक बने फिरें।

स्वाधीन भारतके गणतन्त्रमें सबको अपनी बात कहनेकी छूट है। किन्तु उपरोक्त लोग उस छूटका एक ही उपयोग करते हैं—हमारे पुरुषार्थको झुठलाना, हमारे नेतृत्वको कोसना। यदि इन लोगोंके माथेमें आँखें हैं तो इन्हें स्वाधीन भारतमें हुई प्रगतिके आँकड़े खोजने और समझने चाहिएं। हमने अगणित शरणार्थियोंकी पुनर्वसतिका दायित्व उठाया, जमींदारीको समाप्त किया, सामुदायिक योजनाएं और बड़े-बड़े बाँध तैयार किए। हमारा उत्पादन १९४७ से लेकर अभी तक २५ प्रतिशत बढ़ गया और गणतन्त्रका अभूतपूर्व प्रयोग हमने अपने देशमें किया। इन सब कामों पर कोई भी स्वाधीन देश गर्वसे मस्तक ऊँचा कर सकता है। और ये सब काम करनेके लिए हमने रूस और चीनकी नाई करोड़ों मनुष्योंके प्राण नहीं लिए।

प्रस्तुत पुस्तक जनताके हाथोंमें देनेका हमारा यही प्रयोजन है कि वे सत्यको जान कर मिथ्याका बहिष्कार कर सकें। और 'सत्यमेव जयते' तो हमारा राष्ट्रीय मन्त्र है ही।

कलकत्ता
२०-४-५३

सीताराम गोयल

पत्थरके देवता

प्रथम भाग

जो कम्युनिस्ट पार्टीके मेम्बर रह चुके
उनकी आप-बीतियाँ

आर्थर कोयस्लर

संक्षिप्त जीवनी--इनका जन्म ५ सितम्बर सन् १९०५ में बुडापेस्ट[1] में हुआ था। पिता हँगेरियन थे और माता वीयना[2] की रहनेवाली। दो वर्ष तक पैलेस्टाइनमें बेकार घूमनेके पश्चात् ये बर्लिनके उदारवादी समाचार-पत्रोंके संवाददाता नियुक्त हुए। यूरोप लौट आनेपर १९३१ में ये जर्मन कम्युनिस्ट पार्टीके मेम्बर बने और १९३८ में पार्टी छोड़ दी। इसी बीचमें ये स्पेनके गृह-युद्धमें भाग लेनेके कारण फ्रैंकोके कारागारकी हवा भी खा चुके थे। इनकी पुस्तक "स्पेनिश टेस्टामैन्ट" में इस कारावासका ज़िक्र है।

१९३९ में इनको फ्रांसकी सरकारने गिरफ्तार कर लिया; किन्तु ये निकल भागे और १९४० में ब्रिटिश सेनामें भर्ती हो गए। इन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें "उजालेमें अन्धेरा" तथा "योगी एवं कमीसार" अधिक प्रसिद्ध हैं।

---

१. हँगरीकी राजधानी। २. आस्ट्रियाकी राजधानी।

तर्क द्वारा विश्वास नहीं उपजाया जा सकता। तर्कके बलपर न तो किसीमें नारी-प्रेम जागता है और न मन्दिरमें जाने की प्रेरणा। विश्वास और प्रेम इत्यादिका सम्बन्ध बुद्धिसे नहीं, हृदयसे होता है। इसीलिए, यद्यपि बने हुए विश्वासोंको बनाए रखनेके लिए बुद्धिसे काम लिया जा सकता है, किन्तु नए विश्वासोंको जगानेके लिए तो अन्तरमें उथल-पुथल होनी चाहिए। अन्यथा बुद्धिके पैंतरे बेकार जाते हैं। विश्वास एक वृक्षकी नाईं उगता और पनपनाता है। उस वृक्षकी शाखाएँ बेशक आकाशकी ओर फैली हों, उसकी जड़ें तो व्यक्तिके निगूढ़ मानसमें ही रहती हैं। उस निगूढ़ मानस तक तर्ककी पहुँच नहीं हो पाती। वहाँ तो मानव-जातिके युग-युगान्तरके संस्कार ही राज्य करते हैं।

इसलिए मैं नहीं कह सकता कि मैं बुद्धिसे सोच-विचार कर कम्युनिस्ट पार्टीका मेम्बर बना। वस्तुतः मैं एक बिखरती हुई समाज-व्यस्थाके बीच रहता हुआ किसी नए विश्वासकी खोजमें था। मार्क्स[1] और लेनिन[2] का नाम सुननेके बहुत दिन पहिले ही मेरे अन्तरमें कम्युनिज्मके अंकुर फूट आए थे। जिस युगमें वे अंकुर मेरे अन्तरमें फूटे, उस युगमें और भी अनेकोंने कम्युनिस्ट बननेकी प्रेरणा पाई थी। इस प्रकार मेरी कहानी

---

१. कम्युनिज्मके जन्मदाता, एक जर्मन यहूदी। २. रूसमें १९१७ की क्रान्तिके कर्णधार।

वास्तवमें मुझ अकेलेकी कहानी नहीं है। इसीलिए मैं अपनी आप-बीती सुनानेका साहस भी कर रहा हूँ।

मेरे जन्मसे लेकर १६१६ तक मेरा परिवार बुडापेस्टमें रहता था। उस सालमें हम वीयना चले आए। प्रथम महायुद्ध तक मेरा परिवार भी यूरोपके अनेकों मध्यवित्त परिवारोंकी तरह खूब खुशहाल था। मेरे पिता हँगरीमें कई जर्मन और ब्रिटिश कारखानेदारोंके एजेण्ट थे। १६१४[1] में अचानक सब कुछ स्वाहा हो गया और फिर पिताजी नहीं सँभल पाए। उन्होंने कई बार सँभलनेका प्रयत्न किया, किन्तु बार-बार पराजित होनेके कारण अन्तमें आत्म-विश्वास भी गँवा बैठे। इक्कीस वर्ष की अवस्थामें मैंने परिवार छोड़कर रोज़गार खोजा और तबसे मैं ही अपने परिवारका आर्थिक स्तम्भ रहा हूँ।

जिस समय हमारी आर्थिक अवस्था बिगड़ी, मैं नौ सालका था। तब तक खेलने-खानेमें दिन बिताए थे। अचानक मुझे जीवनकी ठोस समस्याओंका ज्ञान होने लगा। माता-पिताके लाड़-प्यारमें कोई अन्तर नहीं आया, किन्तु मैं उनकी दयनीय अवस्थाको समझने लगा था। मेरे पिता अत्यन्त उदार प्रकृतिके व्यक्ति थे। उनका कष्ट देखकर मुझे रुलाई आ जाती थी। उस दीन-दशामें जब भी वे मेरे लिए पुस्तकें और खिलौने खरीद लाते थे, तो आत्म-ग्लानिसे मेरा सिर झुक जाता था। जब मैं कमाने लगा, तब भी अपने लिए सूट सिलवाते हुए मेरा मन मैला हो जाता था। मैं नहीं चाहता था कि घर खर्च भेजनेमें मेरी ओरसे कभी भी कमी हो। साथ-ही-साथ मुझे अमीर लोगोंसे नफरत-सी हो चली।

---

१. प्रथम महायुद्ध।

इसलिए नहीं कि वे मनचाही चीजें खरीद सकते थे, बल्कि इसलिए कि उनको रुपया खर्च करते समय मन मैला करनेकी आवश्यकता नहीं होती थी। इस प्रकार अपने मनकी कुढ़नको मने समाजकी विडम्बना बना डालनेकी तैयारी कर ली।

मेरी इस वेदनाने कई वर्ष तक किसी राजनीतिक मतामतका रूप धारण नहीं किया। किन्तु एक उथल-पुथल-सी मनमें रहने लगी। जब-जब मैं गरीबोंके बच्चोंको देखता अथवा अपने पिताके पुराने कर्मचारियोंकी फाक़ामस्तीकी बात सुनता, तब-तब मेरी आत्म-ग्लानिकी मात्रा बढ़ने लगती। शायद मानस-शास्त्री कह दे कि मेरी आत्म-ग्लानिका कारण मेरे परिवारकी दरिद्रता नहीं, बल्कि कोई और गहरा मानसिक द्वन्द्व था। किन्तु मैं इतना अवश्य कहूँगा कि इसी आत्म-ग्लानिने मुझे आर्थिक प्रश्नोंपर विचार करनेकी प्रेरणा दी।

इन्हीं दिनों मैंने सुना कि बाजारोंमें दर कायम रखनेके लिए गेहूँ जलाया जा रहा है, फल नष्ट किए जा रहे हैं और जानवरोंको पानीमें डुबाकर मांसका उत्पादन घटाया जा रहा है। यह सब इसलिए कि पूँजीपतियोंके मुनाफेमें कमी न होने पाए और उनकी ऐश-अय्याशीमें खलल न आ जाए। समस्त यूरोप भूखोंके करुण-क्रन्दनसे त्राहि-त्राहि कर रहा था। अपने कमीजकी फटी हुई बाहें मुझसे छुपाने के लिए पिताजी अपने हाथ मेजके नीचे कर लेते थे। यह सब मेरे सहनकी सीमाके पार था। विद्रोहकी ज्वालाने मुझे आत्मसात् कर लिया। कम्युनिस्टोंका अन्तर्राष्ट्रीय गान गाते समय मेरा मन गवाही देता था कि मैं संसारके पूंजीपतियोंकी भर्त्सना कर रहा हूँ।

हमारी तरह ही यूरोपके अधिकतर मध्यवित्त लोग बरबाद हो चुके थे। यूरोपका पतन शुरू हो रहा था। मध्यम श्रेणीके लोग विद्रोह कर उठे और उन्होंने दक्षिण अथवा वाम-पन्थी राजनीतिक दलोंका आश्रय लिया। इस सामाजिक उथल-पुथलका हिटलर एवं स्टालिनने प्रायः बराबर-बराबर फायदा उठाया। जिन्होंने यह माननेसे इन्कार कर दिया कि सब कुछ खोकर वे मजदूरोंकी अवस्थामें पहुँच गए हैं और जो अपनी कुलीनताके मुरदेसे चिपटे रहे, वे नाज़ी पार्टीमें भर्ती होकर वरसाई सन्धि[1] और यहूदियोंको कोसने लगे। बहुतोंसे तो इतना भी नहीं बन पड़ा और वे एक छिन्न-भिन्न वर्गके खण्डहर बने यूरोपके इतिहाससे लुप्त हो गए। इसके विपरीत कुछ लोगोंने वाम-पन्थका आश्रय लिया और मार्क्सकी उस भविष्य-वाणीको पूरा किया, जिसके अनुसार मध्यवित्तके लोग धीरे-धीरे बरबाद होकर मजदूर वर्गमें नया जागरण उपजाते हैं। इन्हीं दिनोंमें मैंने भी मार्क्सका घोषणा-पत्र[2] पढ़ा। इसके पूर्व दो वर्ष तक भूखों मरकर भी मैं यह समझता रहा था कि शीघ्र ही मेरे भाग्यमें परिवर्तन आएगा। कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र पढ़नेके समय तो मैं फिरसे कमाने-खाने लगा था।

मार्क्स और एंजेलस[3] के शब्द पढ़कर मेरे मानसमें एक नई आशा

---

१. प्रथम महायुद्धके बाद जर्मनीपर लादी हुई सन्धि।

२. १८४८ में लिखा यह घोषणा-पत्र मार्क्सवादकी आधारशिला है।

३. मार्क्सके अन्तरंग मित्र, इङ्गलैण्डके कारखानेदार। मार्क्सके सिद्धान्तों तथा कार्योंके विकासमें इनका हाथ सदैव रहता था। कम्युनिस्ट घोषणा-पत्रके ये भी सहसम्पादक थे।

उठने लगी। बुद्धि आनन्दसे विभोर हो गई। मेरे मध्यवित्त संस्कारोंके बन्धन ढीले पड़कर खुलने लगे। आज जब कि मार्क्सवादी दर्शन एक 'पोप लीला' बनकर रह गया है और जब कि मार्क्सका कार्यक्रम भ्रष्ट होकर कुछ का कुछ बनता जा रहा है, उस आत्म-तृप्ति और भावनाकी अनुभूति लौट नहीं पाती। इसलिए इतना ही कह सकता हूँ कि १९१४ के पूर्वका हमारा संसार तहस-नहस हो जानेके उपरान्त हमारे पास यह नए जीवन का संकेत देवदूत बनकर आया होगा। १९३१ में मैं कम्युनिस्ट पार्टीका सदस्य बन गया।

मैं अकेला नहीं था। १९३० और १९३९ के बीच यूरोपके अनेक बौद्धिक, दार्शनिक और साहित्यिक महारथी उस ओर बह गए थे। फ्रांसमें बारबूस, रोम्यांरोलाँ, आन्द्रेजीद और मालरो ; जर्मनीमें पिस्का-टर, बेख़र, रेन, ब्रेख्त्, ईज्लर, सैघर्ज इत्यादि ; इंगलैण्डमें औडन, ईशर-वुड, और स्पैण्डर ; अमरीकामें डोस् पैसोस्, अपटन सिंकलेअर और स्टाइनबैक—सबने चाहे कम्युनिस्ट पार्टीमें दीक्षा नहीं ली, तो भी सबकी सहानुभूति उसी ओर थी। उन दिनों प्रगतिवादी लेखकोंकी सभाएं जुड़तीं, नाटक खेले जाते, शान्तिके लिए और फासिज्मके विरोधमें समि-तियोंका गठन होता, और रूसके साथ मेल-जोल बढ़ानेके लिए रूसमें बने सिनेमा देखे जाते तथा पत्र-पत्रिकाएं पढ़ीं जातीं। महायुद्धके परि-णाम स्वरूप क्लान्त, बाजारोंकी मन्दी-तेजीके कारण आलोड़ित, बेकारी और अविश्वाससे जर्जर, यूरोप एक किनारा खोज रहा था। उसी समय समय पूर्वके आकाशमें एक आशाका तारा चमक उठा और उसी पर आँखें जमा कर हम स्वर्णभूमिकी खोजमें चल निकले।

मैं उन दिनों बर्लिनमें[1] रहता था। पाँच वर्ष तक विविध स्थानोंमें उल्स्टाइन समाचार-पत्रोंकी सेवा करनेके बाद मुझे बर्लिन स्थित हैड आफिसमें सम्पादक मण्डलीका सदस्य बना लिया गया था। उनके पांच दैनिक तथा एक दर्जनसे अधिक साप्ताहिक एवं मासिक पत्र-पत्रिकाएँ बर्लिनसे प्रकाशित होते थे। इसके अतिरिक्त उनका अपना संवाद-प्रतिष्ठान, यात्रासहायक प्रतिष्ठान एवं पुस्तक प्रकाशनका बहुत बड़ा काम था। उल्स्टाइन परिवारके पाँच भाई मिल-जुलकर सब चलाते थे। इस यहूदी परिवारमें उदारवादका राज्य था। वे कट्टर राष्ट्रीयता एवं युद्धवादके सर्वथा विरुद्ध थे। उन दिनों जर्मनीके राजनीतिक मतामत पर इस परिवारका विशेष प्रभाव देखा जाता था। राज-काजके महत्वशील मामलोंमें भी उनकी सलाहको सुना और माना जाता था। इस परिवारको एक राजकीय विभाग कह देना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

१४ सितम्बर १९३०, जिस दिन मैं बर्लिनमें पहुंचा, एक अत्यन्त महत्वका दिन था। उस दिन जर्मन धारासभाका चुनाव होकर चुका था, जिसके फलस्वरूप नाज़ी[2] पार्टीके प्रतिनिधियोंकी संख्या चारसे एक सौ-सात हो गई। कम्युनिस्ट प्रतिनिधियोंकी संख्या भी बढ़ी। किन्तु गण-तन्त्रवादी दलोंका कचूमर निकल गया। वाइमर प्रजातन्त्र[3] अन्तिम सांसें ले रहा था। जर्मनीके लिए नाज़ी अथवा कम्युनिस्ट बननेके सिवाय कोई चारा नहीं रह गया था।

---

१ जर्मनीकी राजधानी। २ हिटलर द्वारा संगठित दल।

३ प्रथम महायुद्धके उपरान्त और हिटलरके उदयसे पूर्व जर्मन शासनका नाम।

मैं अपने लेख लिखता रहता था, किन्तु घटनाक्रम द्रुतगतिसे बढ़ रहा था। जर्मनीके एक तिहाई मजदूर बेकार थे और एक गृहयुद्ध होना अवश्यम्भावी हो चुका था। प्रत्येक व्यक्तिके सामने प्रश्न था कि वह हाथ-पर-हाथ धरे इस गृहयुद्धके झकोरोंमें थपेड़े खाए अथवा कमर कस कर एक पक्षकी ओरसे लड़े। समाजवादी[1] दल अपनी अवसरवादिताके कारण मर चुका था। एक कम्युनिस्ट पार्टी ही ऐसी पार्टी दीख पड़ती थी जो कि नाज़ियोंका सामना कर सके और उनका मुंह मोड़ दे। कम्युनिस्टोंकी पीठ पर सोवियत् रूसका हाथ था। किन्तु मैंने इस प्रकार हार-जीतका हिसाब लगा कर कम्युनिस्ट पक्ष नहीं चुना। अपने कामसे थक कर मार्क्स, एंजेल्स और लेनिन पढ़नेमें मुझे वस्तुतः आनन्द मिलता था। पढ़ते-पढ़ते एक दिन सहसा मेरे विश्वासकी भींत खड़ी हो गई। डूबतेको मानो किनारा मिल गया।

नए विश्वासके पहिले दिनोंकी अनुभूति लेखनी द्वारा आंकी नहीं जा सकती। अन्तर एक आलोकसे भर उठता है। जैसे किसी भूल-भुलैयामें फँसे हुए व्यक्तिको सहसा बाहर निकलनेका रास्ता मिल जाए। समस्त ब्रह्माण्डकी दौड़-धूप एकबारगी समझमें आ जाती है। समस्त प्रश्नोंका उत्तर मिल जाता है, संशय और द्वन्द्व बीते युगकी यादगार बन कर रह जाते हैं। उस बीते युगकी विश्वासहीन, अज्ञानपूर्ण, निरानन्द घड़ियोंको याद करके व्यक्ति सिहरने लगता है। विश्वास मिलनेके बाद विश्वासीके मनकी शान्ति आसानीसे भंग नहीं हो पाती। एकमात्र भय यही रह जाता है कि कभी विश्वास फिरसे टूट कर वह पुनः उसी बीहड़में न भटक

---

१ सोशलिस्ट पार्टी।

जाए, जहाँसे भाग कर उसने इस शीतल तरुका सहारा लिया था। शायद इसी कारण १९५३[1] के सालमें भी कम्युनिस्ट लोग रूसके विषयमें कठोर सत्य जान-सुन कर भी, आँखें और मस्तिष्क रखते हुए भी, टससे मस नहीं होना चाहते।

३१ दिसम्बर सन् १९३१ को मैंने जर्मन कम्युनिस्ट पार्टीमें भर्ती होनेके लिए आवेदन-पत्र लिख डाला। नया साल आने पर एक नवीन जीवन बितानेकी आकांक्षा मुझमें जागी थी। आवेदन-पत्रमें मैंने लिख दिया कि पार्टीकी चाहे जो सेवा करनेके लिए मैं सर्वथा तत्पर हूँ। साधारणतया कम्युनिस्ट पार्टीमें भर्ती होनेके लिए आवेदन-पत्र लिखनेकी आवश्यकता नहीं होती। मैंने तो कुछ मित्रोंकी सलाहसे ऐसा किया था। अन्यथा साधारणतया पार्टीके किसी एक सैलका[2] मेम्बर बन कर ही पार्टीमें भर्ती होनेका रिवाज है। सैल दो प्रकारके होते हैं। किसी कारखाने, आफिस अथवा अन्य व्यवसायमें काम करनेवालों का सैल वर्कशाप सैल कहलाता है और किसी मोहल्लेके निवासियोंका सैल स्ट्रीट सैल, चाहे मोहल्लेके विभिन्न लोग विभिन्न काम ही क्यों न करते हों। अधिकतर मजदूर दोनों प्रकारके सैलमें मेम्बर बन जात हैं। जहाँ वे काम करते हैं, वहांके वर्कशाप सैलमें और जहाँ उनका घर होता है वहांके स्ट्रीट सैलमें। कम्युनिस्ट पार्टियोंकी यह संसार-व्यापी व्यवस्था है। कोई कम्युनिस्ट चाहे कितना ही ऊँचा स्थान क्यों न रखता हो, उसे एक सैलका मेम्बर होना ही पड़ता है। हमें बताया गया था कि मास्कोकी क्रैमलीन (जहाँ स्टालिन

---

१ लेखकने १९४९ वर्ष कहा है, जब कि उन्होंने लिखा था। १९५३ हम कह रहे हैं। २ स्थानीय शाखा।

तथा रूसी सरकारके अधिकारी रहते हैं) में भी एक वर्कशाप सैल है ; जिसमें पोलिटब्यूरो (रूसी पार्टीकी नीति बनानेवाली समिति) के मेम्बर, सन्तरी और नौकर-चाकर एक साथ बैठकर चर्चा करते हैं। वहां स्टालिन भी यदि अपना चन्दा इत्यादि देना भूल जाए, तो सैलका मामूली-सा सदस्य उसके विरुद्ध शिकायत कर सकता है।

जिस मित्रने मुझे पार्टीमें भर्ती होनेके लिए प्रोत्साहन दिया था, उसका पूरा नाम मैं नहीं बताना चाहता। बहुत दिन हुए वह स्वयं पार्टी छोड़ चुका है और अब एक ऐसे देशमें रहता है, जहाँ कि कम्युनिस्टोंका राज्य है। उसके अतीतकालकी बात जान कर कम्युनिस्ट सरकार उसको घोर मुसीबतमें डाल सकती है। इसलिए मैं उसे मित्र ही कह कर काम चलाऊंगा। मित्रने मुझे एक साधारण सैलमें प्रवेश पाकर पार्टीका मेम्बर बननेसे मना किया। मित्र स्वयं एक प्रसिद्ध राजनीतिक लेखक था। एक मिस्तरीकी शागिर्दी करते-करते वह पढ़नेका शौकीन हो गया और रातोंमें जाग कर उसने बहुत-कुछ पढ़ डाला था। वह मार्क्स और लेनिनको आद्योपान्त जानता-समझता था और उसके साथ चर्चा करके किसीका भी प्रभावित हुए बिना रहना कठिन बात थी। उसने समझाया कि यदि मैंने सैलका मेम्बर बननेकी बेवकूफी की, तो बात फैलेगी और उल्स्टाइन परिवारको मेरी हरकत जाननेमें देर नहीं लगेगी। उल्स्टाइनके समाचार-पत्रोंमें काम करना पार्टीके लिए अत्यन्त महत्वकी बात थी और मैं जल्द-बाज़ीमें वह काम खो सकता था। काम पर मेरी दिनोंदिन उन्नति हो रही थी। मैं उल्स्टाइनके प्रमुख राजनीतिक पत्रका विदेश-सम्पादक बन चुका था और इस पद पर रहते हुए मुझे केवल राजनीतिक खोज-खबर

पानेका ही नहीं बल्कि राजनीतिक घटनाचक्र पर प्रभाव डालनेका भी पर्याप्त अवसर मिला था ।

अतः मैंने मित्रके कहनेसे पार्टीको आवेदन-पत्र भेज दिया । एक सप्ताह बाद मुझे एक टाइप किया हुआ पन्ना मिला, जिस पर भेजनेवालेका नाम पता कुछ नहीं था । पत्रमें लिखा था :—

महोदय,

आपका ३१ दिसम्बरका पत्र मिला । यदि आप अगले सोमवारको तीन बजे स्टाइडेमुल कागज-कारखानेमें हमारी फर्मके प्रतिनिधि हर श्नैलर से मिलने जाएँ, तो हमें खुशी होगी ।

आपका

(अस्पष्ट हस्ताक्षर)

यह कागजका कारखाना जर्मनीमें विख्यात था, किन्तु मैं स्वप्नमें भी नहीं सोच सका था कि उसका कम्युनिस्ट पार्टीसे कोई सम्बन्ध हो सकता है । सम्बन्धका क्या स्वरूप था, यह मैं आज भी नहीं कह सकता । हाँ, इतना मैंने देखा कि उस कारखानेके बर्लिन स्थित सारे दफ्तर कम्युनिस्टों की गुप्त मन्त्रणाओंके काममें आते थे । उस समय मैं यह चोरा-छिपी नहीं समझ सका था । फिर भी मैं गर्वसे फूल उठा । जब मैं नियुक्त समय पर कागजके कारखानेमें पहुँचा और हर श्नैलरसे मिलनेका प्रस्ताव किया, तो इन्क्वायरी पर बैठी लड़कीने मुझे खूब घूर-घूरकर देखना शुरू कर दिया । बहुत बार मैंने ऐसे मौकों पर लोगोंको घूरते देखा है । जब भी किसी भ्रातृभावके प्रदर्शनको भय अथवा संशयके कारण छुपाना पड़ता है, तब ऐसा ही हुआ करता है ।

लड़कीने पूछा—"आपका एंर्स्टसे मिलनेका समय तय हुआ है क्या ?"

"नहीं। मैं हर श्नैलरसे मिलने आया हूँ।"—मैंने उत्तर दिया।

शायद मेरी मूर्खताने उसको मेरे ऊपर विश्वास करनेकी प्रेरणा दी हो। उसने बतलाया कि हर एंर्स्ट श्नैलरके आनेमें कुछ देर थी और मुझ से बैठकर प्रतीक्षा करनेके लिये कहा। मुझे आध घण्टेसे अधिक प्रतीक्षा करनी पड़ी। प्रथम बार मुझे अनुभव हुआ कि कम्युनिस्ट पार्टीके अधिकारी लोग ठीक समय पर आनेकी परवाह नहीं करते। रूसके लोग तो स्वभावतः ही इस विषयमें कच्चे हैं और रूसियोंकी देखा-देखी ही यह आदत समस्त कम्युनिस्ट पार्टियोंमें फैल गई है।

अन्तमें श्नैलर साहब तशरीफ लाए और हम दोनोंने अपना-अपना नाम लेकर एक-दूसरेसे परिचय किया। देरसे आनेके लिये एक झूठी-सी शर्म जताकर वे मुझे सड़कके पार एक होटलमें ले गए। वे कोई पैंतीस वर्षके एक दुबले, हडियलसे व्यक्ति थे। उनकी हँसी कुछ बेढंगी-सी थी। व्यवहार और भी बेढंगा। प्रतिपल वे कुछ बेचैनसे दीख पड़ते थे। पहले तो मैंने सोचा कि वे पार्टीके कोई मामूली कार्यकर्त्ता होंगे। अभी मुझे यह जानना बाकी था कि श्नैलर साहब सेन्ट्रल कमिटी[1] के सदस्य और पार्टी प्रचार-विभागके प्रमुख थे। बहुत दिन बाद मैंने यह भी जाना कि वे कम्युनिस्ट पार्टीकी चार-पाँच गुप्तचर संस्थाओंमेंसे एक संस्थाके भी प्रमुख थे। साधारण पार्टी मेम्बर इन गुप्तचर संस्थाओंके विषयमें कुछ नहीं जानता। वे पार्टीसे विभिन्न, पार्टीके उच्चाधिकारियों द्वारा अथवा रूसकी गुप्तचर पुलिस द्वारा चलाई जाती हैं। श्नैलरकी गुप्तचर संस्था

१. प्रत्येक कम्युनिस्ट पार्टीकी एक केन्द्रीय समिति रहती है।

जर्मन सेनामें जासूसी करती थी या जर्मन कारखानोंमें, यह मैं आज भी नहीं जानता। श्नैलरको बादमें नाज़ियोंने पकड़कर छः वर्षका कठोर कारावास दण्ड दिया और जेलमें ही वे मर गए अथवा मार डाले गए।

जब मैं कागज-कारखानेके मैले-कुचैले दफ्तरमें उस मैले-कुचैले, दुबले-पतले आदमीसे मिला करता, तो मैं यह सब बातें नहीं जानता था। मेरे लिये श्नैलर साहब पार्टीसे सम्बन्ध स्थापित करनेके साधन मात्र थे। उस दिन होटलमें उनसे मेरी जो बातें हुईं, उनमें एक-दो मुझे अभी तक याद हैं। उन्होंने बताया था कि वे शाकाहारी हैं और कच्ची तरकारी तथा फल खाकर रहते हैं। मुझे मानों उनके दुबले-पतले होनेका कारण मिल गया। जब मैंने पूछा कि उन्होंने अमुक पत्रमें मेरा अमुक लेख पढ़ा है या नहीं, तो उन्होंने उत्तर दिया कि वे बुर्जुआ[1] पत्र नहीं पढ़ते, उनके लिए पार्टीके पत्र काफी हैं। यह सुनकर मुझे और भी विश्वास हो गया कि पार्टीने मेरे पास एक संकुचित विचारों वाले तुच्छ व्यक्तिको भेजा है। पार्टीका प्रचार-प्रमुख केवल अपनी पार्टीके पत्र ही पढ़ता है, यह मैं कैसे सोचता? यह बेवकूफी तो मुझे उस दिन जान पड़ी, जब कि श्नैलरका असली भेद मुझ पर खुला।

श्नैलर साहबने मुझसे बहुत पूछ-ताछ नहीं की। उल्स्टाइन फर्मके भीतर मेरे पदके विषयमें वे विस्तार-पूर्वक जानना चाहते थे। मैंने उन्हें बताया कि मैं वह काम छोड़कर केवल पार्टीका प्रचार-कार्य करना चाहता

---

१. गैर-कम्युनिस्ट व्यक्ति, जाति, देश तथा संस्थाओंके लिये प्रयुक्त कम्युनिस्ट शब्द। फ्रेंच भाषाके इस शब्दका असली अर्थ है, पूँजीवादी व्यवस्थामें सत्ता-प्राप्त वर्ग।

हूँ, अथवा सोवियत रूसमें जाकर ट्रैक्टर[1] चलाना चाहता हूं। इस समय रूसमें खेतीका एकीकरण हो रहा था और रूसी समाचार-पत्रोंमें ट्रैक्टर चलानेवालोंकी माँग नित्य-प्रति निकला करती थी। मित्रने मेरी रूस जानेकी बात सुनकर मज़ाक उड़ाया था और समझाया था कि पार्टीके किसी कार्यकर्त्तासे यह कहने पर मुझे मूर्ख बनना पड़ेगा। यह सब बातें, मित्रकी रायमें, बुर्जुआ स्वप्नशीलता थी, जिससे पार्टीको कोई प्रयोजन नहीं हो सकता। किन्तु मित्रकी बात पर मुझे विश्वास नहीं हुआ था। मैं समझ ही नहीं सकता था कि एक-दो साल रूसमें रहकर वहांके समाजवादी नव-निर्माणमें हाथ बँटानेकी बात किसी प्रकार भी हास्यास्पद हो सकती है।

श्नैलरने बड़ी नम्रतासे मुझे समझाया—"प्रत्येक कम्युनिस्टका प्रथम कर्त्तव्य अपने देशमें विप्लव उठाना है। रूसमें जाना और सफल विप्लव की झाँकी पाना तो परम सौभाग्यकी बात है। यह अधिकार बहुत दिन तक काम कर चुकनेवाले कम्युनिस्ट नेताओंको ही प्राप्त हो सकता है। अपना काम छोड़ देना भी आपके लिये बुद्धिमत्ताकी बात नहीं है। आप यदि अपना काम करते रहें और अपने राजनीतिक विश्वासके विषय में चुप रहें, तो पार्टीका काम अधिक हो सकता है।" मैंने जानना चाहा कि वह कौन-सा काम था। आखिर मैं न तो उल्स्टाइन समाचार-पत्रों को कम्युनिस्ट-पत्र बना सकता था और न ही उल्स्टाइनकी नीति पर कोई प्रभाव डाल सकता था। श्नैलर ने कहा :—"आपका सोचनेका तरीका अधकचरा है। समाचार-पत्रकी नीति पर प्रभाव डालनेके अनेक तरीके हैं। उदाहरणार्थ आप खूब ज़ोर-शोरसे लिख सकते हैं कि चीन पर

---

१. मशीन का हल

जापानका आक्रमण संसारकी शान्तिके लिये खतरनाक है।" पाठकोंको याद रहे कि उस समय रूस भी जापानी आक्रमणके भयसे आतंकित था।

श्नैलरने आगे कहा—"सब बातों पर चर्चा करनेके लिये प्रत्येक सप्ताहमें एक बार मिल लेना अच्छा रहेगा। आप चाहें तो मैं खुद आ सकता हूं। अन्यथा अच्छा तो यह होगा कि कोई और सदस्य जो मेरी तरह मसरूफ नहीं रहता, किसी भी समय आकर आपसे मिल जाया करे। वह आपको रास्ता दिखाता रहेगा तथा आपके पास पार्टीके कामकी जा भी खोज-खबर होगी, वह ले जाया करेगा। पार्टीको शायद जल्दी ही गैर-कानूनी बना दिया जाये। ऐसे समयमें आप जैसे लोग जो अच्छे पद पर नियुक्त हैं और जिन पर किसीको सन्देह नहीं, बहुत काम कर सकते हैं।" फासिज्म और साम्राज्यवादके विरुद्ध जीवन-मरणकी लड़ाई छिड़ी थी। मुझे श्नैलरकी बातें जँच गईं। आरम्भमें मुझे जो ग्लानि हुई थी वह भी श्नैलरके सुन्दर और सीधे तर्क सुन कर मिट गई। मैंने अगले सप्ताहमें मिलनेका वायदा किया। उस दिन श्नैलर नए साथीसे मेरा परिचय करा देंगे। मेरे पूछने पर श्नैलरने बताया कि नए साथीका नाम था एडगर।

श्नैलरसे बिदा लेने पर मुझे याद आया कि पार्टीमें भर्ती होनेकी बात तो रह ही गई। मैं कम्युनिस्ट बन गया कि नहीं, यह तो अनिश्चित ही रह गया। मैंने भाग कर फिर श्नैलरको पकड़ा और उनसे यह प्रश्न पूछ डाला। वही बेढंगी हँसी हँस कर उन्होंने उत्तर दिया कि यदि मैं हठ करूं तो पार्टीका सदस्य बनाया जा सकता हूं, किन्तु इस शर्त पर कि मेरी सदस्यताकी बात गुप्त रहे और मैं किसी सैलका सदस्य न बनूं।

पार्टीमें मेरा परिचय भी दूसरे नामसे देना होगा। मैंने बात मान ली, किन्तु मुझे दुःख हुआ कि सेलमें जाकर मैं पार्टीके जीवन और वातावरणसे घनिष्ठता प्राप्त नहीं कर सकूंगा। श्नैलरने पूछा कि मेरा छद्म नाम क्या रहेगा, ताकि अगली बार वह पार्टीका कार्ड अपने साथ लेता आए। तुरंत ही मेरे मनमें जो नाम आया वह था—ईवान स्टा-इनबर्ग। ईवान रूसी नाम था, शायद इसीलिए। स्टा-इनबर्ग मेरे एक मानस शास्त्री मित्रका नाम था, जो मुझे तेलअवीव[1] में मिला था, किन्तु जिसके विषयमें कई सालसे मैंने कुछ भी नहीं सुना था। वह मित्र सदा मुझे समझाया करता कि मुझे अपनी शिक्षा पूरी करनी चाहिए। यदि शिक्षा पूरी नहीं हुई तो उसके मतमें, मैं सदा आवारा बना फिरूंगा और चाहे कितना ही ऊँचा पद क्यों न प्राप्त कर लूं, लोगोंको मुझमें आवारापनकी बू आती रहेगी।

एक हफ्ते बाद फिर उसी स्थान पर श्नैलरसे मेरी भेंट हुई। किन्तु एडगरके स्थानमें उनके साथ एक लड़की थी, जिसका पौला नामसे उन्होंने परिचय दिया। वह एडगरकी सहकारिणी थी, सावली, मोटी-ताजी, एक आँखसे भंगी और आयुमें प्रायः पच्चीस वर्ष की। श्नैलरने मुझे समझाया, "पौला आपके और एडगरके बीच समाचार ले जाने-लानेका काम करेगी। एडगरका मिलना कठिन बात है, किन्तु पौलाको किसी समय भी टेलीफोन किया जा सकता है। पौला सब समय एडगर तक पहुँच सकती है।" कहनेका अभिप्राय यह था कि एडगरका पता-ठिकाना जानने योग्य विश्वासका पात्र मैं अभी नहीं बन पाया था।

---

१ इज़राइलकी राजधानी।

यहाँ यह बतला देना उचित होगा कि इस समय—जनवरी १९३२ में—जर्मन कम्युनिस्ट पार्टी पर कोई कानूनी पाबन्दी नहीं थी। इनैलर इत्यादि कम्युनिस्ट प्रतिनिधि जर्मनीकी धारासभामें बैठते थे, कम्युनिस्ट समाचार-पत्र नित्यप्रति हड़ताल और क्रान्तिकी आवाज उठाते थे, कम्यु-निस्ट सभाओं पर पुलिसका पहरा रहता था, ताकि नाज़ी लोग उन्हें भंग न कर दें, और पार्टीकी अर्ध-सैनिक संस्था आर० एफ० बी० उन चार संस्थाओंमेंसे थी, जिनको कानून काम करनेका अधिकार देता था। तीन और ऐसी ही संस्थाओं पर क्रमशः नाज़ी पार्टी, राष्ट्रवादियों और समाजवादियोंका प्रभुत्व था।

फिर भी पार्टी गैरकानूनी बननेके लिए तैयारी कर रही थी और पार्टीकी प्रायः समस्तः कार्यवाही गैरकानूनी थी। पार्टीके नए रंगरूटको ऐसा लगता था, मानो सहसा वह किसी अजीब दुनियांमें चला आया है, जहाँ कि अजीब प्रकारके व्यक्ति अजीब-अजीब काम करते रहते हैं। एक तो इन सब आदमियोंके पूरे नाम नहीं जाने जा सकते थे। यहाँ सभी एडगर, पौला और ईवान मात्र थे, उनके पैत्रिक नाम अथवा उनका पता-ठिकाना जानना असम्भव था। कुछ ऊलजलूल-सा वातावरण था। एक तो इतनी भारी भाईबन्दी, और दूसरी ओर इतना बड़ा पारस्परिक सन्देह! पार्टीका मानो एक मौन आदेश था—"अपने कामरेडसे प्रेम करो, किन्तु उसका विश्वास मत करो। यह तुम्हारे लिए अच्छा है, क्योंकि कामरेड तुम्हें धोखा दे सकता है। यह कामरेडके लिए भी अच्छा है, क्योंकि उसे इस प्रकार किसीको धोखा देनेका अवसर नहीं मिलता।" शायद खुफिया संस्थाओंके लिए यह सब जरूरी हो, किन्तु

इस बात पर किसीने ध्यान नहीं दिया कि इस प्रकारके वातावरणमें देर तक रहनेसे व्यक्तिके चरित्र और स्वभाव पर क्या असर पड़ता है। खैर।

श्नैलरसे यह दूसरी मुलाकात आखिरी थी। मैंने उनके साथ उसी होटलमें जाकर पौलाका टेलीफोन नम्बर लिख लिया और दो दिनके बाद मेरे घर पर उसे निमन्त्रित किया। तब श्नैलरने मेरा पार्टी कार्ड पेश किया। उस पर मेरा नाम ईवान स्टाइनबर्ग लिखा था। श्नैलरने हाथ मिलाया, तो उसी बेढंगेपनसे और पौलाकी आँखोंमें भी मेरे प्रति वही अविश्वास था, जिसकी झांकी मुझे सर्वप्रथम कागजके कारखानेवाली लड़कीमें मिली थी। ये लड़कियां सभी एक ही प्रकारकी थीं। सबके वस्त्र अस्तव्यस्त, और मुखकी देख-रेखके प्रति अवज्ञा—मानों सुन्दर दीख पड़नेकी चेष्टाको वे एक बुर्जुआ रिवाज मान कर तिरस्कृत कर रही हों। किन्तु सबकी आँखोंमें एक मुस्तैदी-सी झलकती थी, मानो वे कह रही हों कि उनको मूर्ख बनाना टेढी खीर है।

विदा लेनेसे पूर्व श्नैलरने बे-रुखी हँसी हँस कर कहा—"अब आप पार्टीके सदस्य बन गए हैं। अब मुझे और पौलाको 'आप' कह कर पुकारनेकी जरूरत नहीं। हम दोनोंको आप 'तू' कह कर पुकार सकते सकते हैं"—गर्वके मारे मेरी छाती फूल गई।

दो दिन बाद पौला और एडगर ठीक समय पर मेरे घर पधारे। वे टैक्सीमें बैठ कर आए थे और पौला अपना टाइपराइटर भी लाई थी। एडगर एक साफ-सुथरा, गोरा चिट्टा, तीस वर्षका हँसमुख नौजवान था। हमारे बीच राजनीतिक चर्चा होने लगी। मुझे पार्टीकी नीति पर कुछ सन्देह था। पार्टी हिटलरके विरुद्ध समाजवादी पार्टीसे एकता क्यों नहीं

कर लेती ? हम समाजवादियोंको फासिस्ट इत्यादि कह कर गाली क्यों देते हैं ? गाली देनेसे वे रुष्ठ होते हैं और उनके साथ एकता असम्भव हो जाती है। एडगरने मुझे बड़े धैर्यके साथ समझाया—"एकता तो कम्युनिस्ट भी चाहते हैं ; किन्तु एकता ऊपरसे न होकर नीचेसे जनताके बीच होनी चाहिए। समाजवादी नेता तो गद्दार हैं और उनके साथ यदि पार्टी कोई समझौता करे, तो वे निश्चय ही धोखा देंगे। एकता स्थापित करनेका एकमात्र तरीका है समाजवादी नेताओंकी नकाब फाड़ कर उनका असली रूप उनके अनुयायियोंके आगे रखना और जनताको उन नेताओंके धोखेसे बचाना।"

एडगर तर्क करना जानता था। पाँच मिनटमें ही मैं मान गया कि नाज़ियोंके विरुद्ध मजदूरोंकी दो पार्टियोंके बीच एकताकी बात उठाने वाला कोई महामूर्ख ही हो सकता है। एडगरने कहा कि मुझे और कोई संशय हो, तो मैं स्पष्टतया कह सकता हूं। मैंने उसे जता दिया कि मेरे सारे संशय मिट चुके। एडगरने सुखकी सांस ली और मुझसे अनुरोध किया कि यदि मैंने उल्स्टाइन दफ्तरमें किसी प्रकारकी राजनीतिक चर्चा अथवा कानाफूसी सुनी हो तो उसे बता दूं। मैं बात कहने लगा। बीचमें रोक कर एडगरने जताया कि यदि मुझे आपत्ति न हो तो पौला अपने टाइपराइटर पर मेरी कही बातोंकी रिपोर्ट ले ले। इससे सुविधा रहेगी और समय बच जाएगा। मुझे कोई आपत्ति नहीं थी।

इसके बाद मैं कई सप्ताह तक हफ्तेमें एक-दो बार पौलाको रिपोर्ट देता रहा। पार्टीका और कोई काम मैंने नहीं किया। बीच-बीचमें एडगर भी आ जाता था और कमरेमें चुपचाप टहलता हुआ सब कुछ

सुनता रहता था। मुझे भी किसीसे कुछ लिखवाते समय टहलनेकी आदत है और कई बार हम दोनों एक-दूसरेका रास्ता काटते निकल जाते थे। हमारे बन्धुत्वका यही एक प्रदर्शन था। और किसी प्रकारकी घनिष्ठता प्राप्त करनेका अवसर पार्टीने मुझे इन दिनों नहीं दिया।

और पौलाने तो मानों मुंह खोलनेकी कसम खा रक्खी थी। एकाध बार उसने अपने किसी मित्रको टेलीफोन किया तो भी पूरे शब्द नहीं बोली, कुछ इशारेसे करके ही उसने काम चला लिया। टेलीफोन करते समय वह कुछ बदल अवश्य जाती थी, मानों उसमें जीवन पड़ गया हो। मुझे उसके शरीरके प्रति तो कभी आकर्षण हुआ ही नहीं। और मैं जानता था कि मनका गाढ़ा सम्बन्ध मेरे साथ स्थापित करनेके लिये पौला तैयार नहीं होगी। मैं तो उसके संसारके बाहर था। मैं पार्टी का सदस्य बनाया गया था सिर्फ इसलिए कि मुझसे पार्टी काम निकाल सकती थी। न जाने पार्टी मुझ पर कहां तक विश्वास करती थी? पौला के लिए तो मैं पूँजीवादी संसारका एक पथ-भ्रष्ट व्यक्ति था। वह कभी मेरे घर कुछ खाने-पीनेके लिए राज़ी नहीं हुई। हम होटलमें मिले तो वह सदा हठ करके अपने पाससे बिल चुकाती थी और एक दिन जब मैंने उसको हाथ धोनेके लिए अपना बाथरूम दिखाया, तो उसमें टंगे मेरे ड्रेसिंग गाउनको उसने जुगुप्साकी दृष्टिसे देखा।

एडगरका व्यवहार कुछ अच्छा था। किन्तु कभी-कभी जब मैंने घर तक पहुँचानेके लिए उसे अपनी कारमें बैठाया, तो वह कोई न कोई बहाना बनाकर सड़क पर ही कहीं न कहीं उतर गया। अपना बासा कभी मुझे नहीं दिखाया। होटलमें भी जब-जब हम मिले, तो बातें

समाप्त होने पर वह पहले उठ कर चला जाता था और मुझसे पाँच मिनट बाद उठनेका अनुरोध कर जाता था। शायद उसे भय था कि कहीं मैं उसके पीछे-पीछे जाकर उसका घर न देख लूँ। एडगर कहता था कि यह सब एहतियात रखना पार्टीके प्रत्येक सदस्यका कर्त्तव्य है। मुझे इन छोटी-छोटी बातोंका ख्याल नहीं होना चाहिए। कुछ दिन बाद मैं स्वयं भी यह सब करना सीख जाऊँगा।

किन्तु मुझे एक पराजयकी भावनाने घर दबाया। षड्यन्त्रकारीके रूपमें काम करनेके लिए स्वीकृति देकर भी मैं पार्टीसे घनिष्टता बढ़ाना चाहता था, ताकि पार्टीका काम और भी ख़ूबी कर सकूँ। किन्तु मैं जितना ही पार्टीके पीछे भागता था, पार्टी उतनी ही मुझसे दूर होती जाती थी। इसलिए किसी तिरस्कृत प्रेमीकी तरह मैं नित्यप्रति सोचने लगा कि क्या उपहार देकर, किस नई सेवा द्वारा पार्टीका दिल पिघलाऊँ? मैंने अपना काम छोड़कर एक गरीबीका जीवन बिताते हुए रूसकी धरती पर ट्रैक्टर चलानेका प्रस्ताव किया था। पार्टीने उसे बुर्जुआ भावुकता कहकर ठुकरा दिया। मैंने जोर देकर एडगरसे कहा था कि मुझे मेरे बनावटी नामसे ही किसी न किसी सैलकी मीटिंगोंमें उपस्थित रहनेकी आज्ञा दी जाए। किन्तु एडगरको भय हुआ कि मेरा भेद खुल जाएगा और पार्टीके लिए मैं सर्वथा बेकार हो जाऊंगा। हारकर मैंने एडगरसे पूछा कि मैं क्या करूं? उसने सोचकर उत्तर देनेका वचन दिया। किन्तु सप्ताह पर सप्ताह बीतने लगे और एडगरने कुछ भी नहीं बतलाया।

इसी समय मेरे समाचार-पत्रमें काम करनेके लिये एक नवयुवक और नियुक्त हुआ। उसको मैं फान कहकर ही पुकारूंगा। वह एक उच्च-

स्थित जर्मन राजदूत का पुत्र था। आयु होगी कोई इक्कीस साल। पत्रकारका काम सीखना चाहता था। वह एक नाममात्र वेतन पर मेरे पत्र के विदेश विभागमें शागिर्दी करने आया था। दो-चार महीनेके लिए। वह मेरे पास ही बैठने लगा। हम एक साथ ही काम करते और एक साथ ही खेलते-कूदते थे। हमारी अवस्थाओंमें पांच वर्षका अन्तर तो था ही। शीघ्र ही हम दोनों मित्र बन गए। मैंने उसे मार्क्सवाद पर उपदेश देना शुरू किया और मेरा शागिर्द होनेके कारण उस पर असर पड़ने लगा। पन्द्रह-बीस दिनकी पढ़ाईके बाद मुझे विश्वास हो गया कि वह पार्टीकी सेवाके लिए तैयार है। मैंने उसे बताया नहीं कि मैं पार्टीका मेम्बर हूँ, किन्तु इतना जता दिया कि पार्टीमें मेरे कई मित्र है, जिन तक मैं समय-समय पर राजनीतिक गपशप पहुंचा देता हूं। अपनी जासूसीको इस प्रकारके शब्दोंमें ढकना अब मुझे खलता नहीं था। मेरी अन्तरात्मा पर नए मज़हबका रंग पूरी तरह चढ़ चुका था।

फानके परिवारमें जर्मनीके बहुतसे पदाधिकारी और राजदूतोंका आना-जाना था। मैंने फानसे कह दिया कि कान खोलकर रक्खे और जो-कुछ दिलचस्प गप-शप सुने वह पार्टीकी सेवाके लिए मुझ तक पहुँचा दे। उस गपशपमें सोवियत रूसके विरुद्ध जर्मनीकी सैनिक तैयारीकी खबर खास महत्व रखती थी। उस नवयुवकने बड़े चावके साथ यह काम अपने सिर ले लिया।

इस प्रकार कुछ दिन तक पौला अपने टाइप-राइटर पर बहुत अच्छी रिपोर्ट ले जाने लगी। मजेदार विदेशवार्ता, सेना सम्बन्धी खबर-खोज, जर्मनीकी राजनैतिक दल-बन्दियोंमें खींच-तान—ये सब मसाला फान

आसानीसे जुटा देता था। एक बात मुझे अभी तक अच्छी तरह याद है। कई हफ्ते तक कम्युनिस्ट पार्टी कहती रही थी कि जर्मन प्रान्त प्रश्या[1] की समाजवादी सरकार वास्तवमें फासिस्ट होनेके कारण नाज़ियोंके विरुद्ध कोई कदम नहीं उठाना चाहती और नाज़ी लोग खुले आम बलवा करने की तैयारी कर रहे हैं। हम सब यह दलील मान बैठे थे। एक दिन मैंने अपने दफ्तरके एक ऊंचे कर्मचारीसे सुना कि अगले दिन प्रातःकाल छः बजे प्रश्याकी पुलिस नाज़ियोंके अड्डों पर धावा मारकर उनके हथियार और कागज़-पत्र पर कब्जा करेगी और नाज़ी पार्टी पर पाबन्दी लगाई जाएगी। ऐसा ही हुआ। किन्तु जब कि सारे बर्लिनमें यह चर्चा हो रही थी कि समाजवादी सरकार और नाज़ी पार्टीके बीच गृह-युद्ध अनिवार्य है, तो कम्युनिस्ट दैनिक-पत्रमें वही पुरानी तोता रटन्त ही छपी कि समाजवादी सरकारका तो नाज़ियोंसे गहरा सम्पर्क है। पुलिस जब छापा मार रही थी, तो यह अखबार छप रहा था। इस प्रकार कम्युनिस्टोंका काफी मज़ाक बना। मैंने खबर पौला और एडगर तक पहुंचा दी थी, तो भी ऐसा हुआ। मैंने एडगरसे कारण पूछा। उसने समझाया कि समाजवादी-फासिस्टोंके सम्बन्धमें पार्टीका एक दृष्टिकोण है, जो ऐसी छोटी-छोटी घटनाओंसे नहीं बदल सकता। मैंने कहा कि पार्टीके अखबार ने पहले सफे पर जो कुछ छापा है, उसका एक-एक अक्षर इस घटनासे झूठा हो गया। एडगर मुस्कराया। कहने लगा—"विचार करनेका अपना पुराना तरीका तुमसे छोड़ा नहीं गया। एक नए तरीकेसे सोचनेकी

---

१. जर्मनीका सबसे बड़ा प्रान्त, जिसकी राजधानी बर्लिन जर्मनीकी भी राजधानी है।

जरूरत है। तुम्हें समझना चाहिए कि यह पुलिसका धावा वास्तवमें दोस्तीको छुपानेका एक षड्यन्त्र है। नाज़ी और समाजवादी नेता एक-दूसरेके बहुत निकट हैं। लेकिन जनताकी आँखोंमें धूल झोंकनेके लिए लड़ाईका दिखावा करते हैं। कम्युनिस्ट पार्टी जानती है कि मजदूरोंके नेतृत्वमें समाजवादी पार्टी उसकी घोर शत्रु है।" मुझे उसकी बातें जंच गई। फिर भी मैंने कह डाला कि १९१९ में मजदूरोंमें जो फूट पड़ी, उसका तो यही कारण था कि कम्युनिस्ट सोशलिस्ट पार्टीसे अलग हो गए थे। एडगरने कहा—"फिर वही बात। यह समझना बहुत जरूरी है कि मजदूरोंकी सच्ची रहनुमाई केवल कम्युनिस्ट पार्टी ही कर सकती है। १९१९ में सोशलिस्ट पार्टीके भीतर हमारा बहुमत नहीं था। हमारी बातें न मानकर सोशलिस्टोंने हमको उनसे अलग होने पर मजबूर कर दिया। इसलिए मजदूर आन्दोलनमें फूट पैदा की सोशलिस्टोंने। हमारी बात मानते रहते तो अलग होनेका सवाल ही नहीं उठता।"

इस प्रकार धीरे-धीरे अपनी विचार-शक्ति परसे मेरा विश्वास उठने लगा। रह-रहकर कठोर सत्य पर मेरी आँखें जाती थीं, लेकिन पार्टी की आवाज़ कहती रहती थी कि मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं करना चाहिए, बल्कि जो कुछ पार्टी मुझे दिखाना चाहती है, वही देखने कि आदत डालनी चाहिए। यह एक प्रकारसे तो बड़े मजेकी अवस्था थी। मुझे सत्यको जानने-पहिचाननेके लिए अब कष्ट उठानेकी जरूरत नहीं रह गई। पार्टीको सब कुछ मालूम था। पार्टीकी बात हमेशा युक्ति-संगत थी। पार्टीका आदेश निभाना ही एकमात्र कल्याणका मार्ग था। स्वयं इतिहासने पार्टीको अपना रहनुमा बनाया था और इतिहासकी

मंजिल भी केवल पार्टीको ही मालूम थी। फिर पार्टी इतिहासको उसकी मंजिल तक ले जानेके लिये जो कुछ भी करे उचित था। वह मंजिल थी मजदूरोंका राज्य। भला कोई किस प्रकार पार्टीका विरोध कर सकता था। पार्टीका विरोध करने वाले पुराण-पन्थी और अपने आपको सोशलिस्ट कहनेवाले फासिस्ट भी, एक सामाजिक वातावरणके प्रतीक थे। पूँजीवादी समाजकी सडांध ही उनके विचारोंमें पाई जा सकती थी और पार्टीमें रहनेके बाद जो पार्टीको छोड़कर चले जाते थे, उनकी तो कोई गति ही नहीं थी। वे तो अधःपतनकी पराकाष्ठा पर पहुँच चुके थे। उनसे बात करना तो दूर उनके मुंहसे निकली बात सुनना भी गुनाह था, पार्टीके साथ गद्दारी भी।

जर्मनीमें वाइमर प्रजातन्त्र अन्तिम साँसें गिन रहा था और कम्युनिस्ट पार्टीके सब सदस्योंके भाग्यमें लिखा था कि शीघ्र ही नाज़ियोंकी जेलों और बन्दी-शिविरोंमें बुरी मौत मारे जाएँ; किन्तु हम सब तो अपने अन्ध-विश्वासके कारण एक दूसरी ही दुनियामें रह रहे थे। हमको असली दुनियासे क्या सरोकार था। हमारी आँखोंमें नाज़ी तो जानवर थे, उनको जनता जानती थी। हमें तो ट्राट्स्कीके अनुयायियों और सोशलिस्टोंकी नकाब फाड़नी थी। १९३१ के चुनावमें कम्युनिस्ट पार्टीने प्रश्याकी सोशलिस्ट सरकारके विरुद्ध नाज़ियोंसे गुटबन्दी की थी। १९३२ में बर्लिनके यातायात मजदूरोंकी हड़तालमें भी वैसी ही मित्रता निभाई गई। कुछ दिन पहले कम्युनिस्ट नेता हाइन्ज न्यूमानने नारा उठाया था कि नाज़ी जहाँ मिले, वहीं उसका खून पी लो। न्यूमानको उनके पद से हटा दिया गया और बादमें इस अपराधके कारण रूसमें उनको मौतकी

सज़ा भी मिली। पार्टी तो नाज़ियोंके निकट सरकती जा रही थी। पार्टीका विश्वास था कि १९३२ में जर्मनीमें मजदूर-क्रान्ति होकर रहेगी। विश्वासके सामने सत्य क्या काम आता। विश्वासका तो अपना अलग नशा होता है। दुनियाको गली-सड़ी बताकर अपने-आपको धर्मात्मा माननेवालोंको कौन समझाता?

एक दिन अचानक एडगर मुझसे पूछ बैठा कि मैंने जापान देखा है या नहीं। मैंने सिर हिला दिया। उसने फिर पूछा कि क्या मैं जापान जाना चाहता हूँ। मैंने कहा कि अवश्य जाना चाहता हूँ, क्योंकि यात्रा मुझे पसन्द आती है। एडगर जानना चाहता था कि क्या उल्स्टाइन फर्म मुझे अपना प्रतिनिधि बनाकर जापान नहीं भेज सकती। मुझे कोई आशा नहीं थी; क्योंकि जापानमें हमारा आफिस जमा हुआ था और मुझ-जैसे अनजान आदमीको वहाँ भेजकर क्या होता। किन्तु एडगरकी राय थी कि पार्टीके लिए मेरा जापानमें होना अधिक लाभदायक होता। उसने सुझाया कि मैं किसी और समाचार-पत्रका प्रतिनिधि बनकर जापान पहुँचनेकी कोशिश क्यों न कर देखूँ। मुझे बात मुश्किल मालूम पड़ी। मैंने पूछा कि जापान जाकर मुझे करना क्या होगा। एडगरको मेरे सवालसे मानो दुःख पहुँचा। कहने लगा कि कोई खास काम तो नहीं था। जैसे बर्लिनमें, वैसे ही जापानमें मैं अपना काम करता रहूँ और रुपए कमाता रहूँ। बस, जो खोज-खबर मिले, वह उन लोगों तक पहुँचा दूँ, जिनके साथ कि जापानमें मेरा परिचय करा दिया जाएगा। उसने मुझे सोचकर देखनेके लिए कहा। मैंने उत्तर दिया कि इसमें सोचनेकी क्या बात है। पार्टी जहाँ भी मुझे भेजना चाहे जानेके लिए मैं तैयार था;

किन्तु असली समस्या थी, किसी अच्छे समाचार-पत्रका प्रतिनिधित्व प्राप्त करने की। इसकी मुझे कोई आशा नहीं थी। एडगरने एक क्षण विचार किया और फिर बोला कि यदि पार्टी वह सब इन्तजाम मेरे लिए कर दे, तो क्या मैं तैयार हूँ। मुझे सोचकर उत्तर देनेके लिए उसने अपना आग्रह दोहराया। किन्तु मैं तो उल्लसित हो उठा था। मैंने कहा कि सोचनेकी मुझे कोई जरूरत नहीं, पार्टी जहाँ भी कहेगी मैं चला जाऊँगा। एडगरने दो-चार दिन बाद मुझे पक्की बात बतलानेका वायदा करके वह चर्चा बन्द कर दी। उसने फिर कभी वह चर्चा नहीं चलाई और मैंने भी पार्टीके अनुशासनके अनुसार कोई कौतूहल इस विषयमें नहीं दिखाया।

किन्तु एक अजीब घटना कुछ दिन बाद घटी। आफिसमें बैठा था कि कोई मिस मेयर मिलने आ पहुँची। उसने बाहरसे जो पर्चा लिख कर मुलाकातके लिए इजाजत माँगनेके वास्ते भेजा था, उसमें लिखा था कि वह मेरी एक पुरानी परिचित हैं। किन्तु मैंने उसे देखा तो पहचान नहीं सका। कभी देखा ही नहीं था। वह छोटी-सी, सीधी-सादी लड़की थी। किन्तु उसका रंग-ढंग और अकड़कर चलनेका तरीका देखते ही मैं समझ गया कि पार्टीकी सदस्या है। उसने मुझे एक नई समाचार एजेन्सीका सम्पादकीय उत्तरदायित्व सँभालनेके लिए अनुरोध किया। जर्मनीमें इस उत्तरदायित्वके मायने खाली अपना नाम दे देना ही होता है, काम सँभालना नहीं पड़ता। किसी अच्छे व्यक्तिका नाम पाकर और लोग काम चलाते रहते हैं। मैंने मिस मेयरसे कहा कि उस एजेंसीके विषयमें कुछ अधिक जान पाऊँ, तो उत्तर दूँ। वह धैर्य खोकर बोली कि मुझे नासमझ नहीं बनना चाहिए। कहने लगी कि हमारे

बन्धुओंने उसे भेजा है और मुझे हस्ताक्षर करनेमें कोई आनाकानी नहीं होनी चाहिए। मैंने "हमारे बन्धुओं" का परिचय पूछा। तब उसे और भी ताव आ गया। वह कुछ सनकी-सी जान पड़ती थी। मध्य-श्रेणीकी बहुत-सी लड़कियाँ अपने-आपको मजदूर श्रेणीका समझते-समझते प्रायः सनकी हो जाती हैं। मैंने "बन्धुओं" का नाम जाननेका हठ किया, तो बोली—"जार्जको तुम नहीं जानते?" साथ ही उसने संशय से मेरे आफिसमें इधर-उधर देखा जैसे कोई माईक्रोफोन[1] वहाँपर छुपा होनेकी उसे आशंका हो। मैं मुसीबतमें पड़ गया। जार्ज नामके किसी व्यक्तिको मैं पार्टीमें नहीं जानता था। मेरा परिचय केवल तीन व्यक्तियों से था—टनैलर, पौला और एडगर। मैंने गर्दन हिला दी। वह आग-बगूला होकर बोली कि उसे मुझ-जैसे आदमियोंके पास भेजकर उसका समय नष्ट किया गया है और धड़धड़ाती हुई मेरे आफिससे निकल गई। अगली बार मैंने पौलासे इस घटनाका ज़िक्र किया। वह कुछ असमंजसमें पड़ गई और बोली कि ठीक पता लगाकर शायद वह कुछ बतला सकेगी। दोबारा मिलनेपर पौलाने कहा कि खोज-खबर लेनेका समय ही उसे नहीं मिला। तीसरी बार मैंने फिर पूछा तो कुछ तमककर उसने मुझे फिजूल की बातें करनेसे मना कर दिया। बोली कि कहीं कुछ भूल-चूक हुई होगी और मुझे अपना सिर खपानेकी कोई जरूरत नहीं। किन्तु इसी प्रकारकी और भी कई घटनाएँ हुईं, सब-की-सब अजीब। मैं कुछ नहीं समझ सका। शायद टोकियो जानेकी वह बात एडगरने मेरा इम्तिहान लेनेको चलाई थी। शायद वह सच्ची बातें कह रहा था और उससे

---

1. एक मशीन, जिसमें बोलनेवालेकी आवाजका रिकार्ड भर लिया जाता है।

ऊपरवाले पार्टीके अधिकारी उसकी बात नहीं माने। शायद मिस मेयर को एडगरने ही भेजा हो और मिस मेयर एडगरको जार्जके नामसे जानती हो। शायद वह पार्टीके किसी दूसरे जाजूसी-विभागसे आई हो, जो एडगरके कार्य-क्षेत्रमें दखल देना चाहते हों। कम्युनिस्ट पार्टीके बारेमें झूठ-मूठ ही यह प्रसिद्ध है कि उनकी व्यवस्थामें कोई गड़बड़ी और भूल नहीं हो पाती। जर्मनीमें काम करते हुए और बादमें रूसमें जाकर भी मैंने देखा कि पार्टीके पास न तो उतने साधन ही हैं, जितने कि अन्य लोग समझ बैठे हैं और न पार्टीका काम ही बहुत सफाईसे होता है। इसके विपरीत तीन मनोवैज्ञानिक तथ्योंपर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। वे हैं पार्टीके सदस्योंकी आदर्शवादिता, मूर्खता और कुछ भी कर-गुजरने के लिए तत्परता।

श्नैलरके जासूसी-विभागसे मेरा सम्पर्क दो ही तीन महीने तक रह सका। वह सम्पर्क बाहर-ही-बाहर रहा और पार्टीके गूढ़तम षड्यन्त्रोंमें मैं नहीं खिंच पाया। यह भाग्यकी ही बात थी, मेरी किसी बुद्धिमानीके कारण नहीं। मैं तो पूर्णतया पार्टीपर कुर्बान होनेके लिए तैयार था, उस नई-नई प्रेमिकाकी नाईं, जो अपने प्रेमीको तन और मन सौंप देने में आगा-पीछा नहीं देखती। और ऐसा करनेके लिए उद्यत मैं अकेला रहा हूँ, यह नहीं कहा जा सकता। उस समय मध्य यूरोपमें मुझ जैसे मूर्ख आदर्शवादी नौजवान अनेक थे। उन्हीं नौजवानोंके सहारे कमिन्टर्न[1]

१. रूससे संचालित एवं नियन्त्रित अन्तर्जातीय संस्था, जिसमें कि विभिन्न देशोंकी कम्युनिस्ट पार्टियाँ स्थायी शाखाके रूपसे संगठित हैं। अब इस संस्था का नाम बदलकर कामिनफार्म रख दिया गया है।

और रूसकी खुफिया पुलिस अपनी काली करतूतोंका जाल चारों ओर फैला सकी थी।

मुझे फानके भोलेपनने बचाया। वह छोटी उम्रका था और गुरु मानकर मुझसे खूब प्यार करता था। कई हफ्ते तक इसी तरह चलता रहा। अचानक मैंने देखा कि फान मुझसे कुछ खिंचा-खिंचा रहने लगा है। मैंने अधिक ध्यान नहीं दिया। कई बार उसने कहा भी कि वह मुझसे दिल खोलकर बातें करना चाहता है। किन्तु उन दिनों एक तो मेरे पास काम बहुत था और ऊपरसे चढ़ा था मेरे नए प्रेमका नशा। इसके सिवाय वह गुरुआई भी मैं निभा नहीं पा रहा था। मुझे ऊब-सी होने लगी थी। इसलिए मैं उसे टालता रहा। यह वह भूल थी, जो कभी-कभी सौभाग्यका कारण बन जाती है। जैसे कि कोई देरसे पहुँचने के कारण उस वायुयानमें न बैठ पाए, जो कि कुछ दूर जाकर गिरनेवाला हो।

एक दिन जब मैं आफिसमें टाइपिस्टको चिट्ठियाँ लिखवा रहा था, तो अचानक फान भीतर चला आया और बोला कि उसे तुरन्त ही मुझ से अकेलेमें कुछ ज़रूरी बात करना है। उसकी दाढ़ी बढ़ी थी, आँखें लाल होकर सूज गई थीं और वह कुछ ऐसा भयावह-सा लग रहा था कि टाइपिस्ट तो घबड़ाकर भाग गई और मैंने भी घबड़ाकर पूछा कि बात क्या है? उसने कहा कि उसके सामने दो रास्ते रह गए हैं—या तो हमारी कार्यवाहीका भण्डा फोड़ दे या गोली खाकर आत्म-हत्या कर ले। मैंने पूछा कि उसका मतलब किस कार्यवाहीसे है। "देश-द्रोह"—उसने संक्षिप्तसा उत्तर दिया। और फिर उसने सारा किस्सा सुनाया। कहने

लगा—"एक सप्ताह पूर्व मेरे मनमें, मैं जो कुछ कर रहा था, उसके बारेम आशंकाएँ उठने लगीं। पिछली रातको मैं सो भी नहीं सका हूँ। मुझे विश्वास हो गया है कि मैं एक देश-द्रोही जासूसके सिवाय कुछ नहीं। अब या तो मुझे आत्म-हत्या कर लेनी चाहिए, या सारी बातें बतलाकर जो दण्ड मिले भुगतना चाहिए।"

"तुम फिजूलकी बातें कर रहे हो।"—मैंने समझाया—"जासूस तो वह होता है जो सेनाके गुप्त कागज-पत्र अथवा राज्यके भेद किसी विदेशी सरकारके पास पहुँचाए। तुमने सिवाय मामूली गप-शपके मुझे कुछ भी नहीं बतलाया। और मैं तो तुम्हारा दोस्त हूँ।"

"आप बता सकते हैं कि मुझसे सुनी बातोंको आपने कहाँ पहुँचाया है?"—फानने क्रोधसे फफकारते हुए पूछा।

"मैंने अपने मित्रोंको बतला दिया। बतलानेको था ही क्या?" —मैंने उत्तर दिया।

"बड़े आए मित्र! विदेशी जासूस क्यों नहीं कहते?"

"लेकिन भाई, कम्युनिस्ट पार्टी तो जर्मन मजदूरोंकी संस्था है।"—मैं उसे समझाने लगा—"ठीक नाज़ी अथवा कैथोलिक पार्टियोंकी तरह।"

"नहीं, मैं कभी नहीं मान सकता।"—फानने जलकर उत्तर दिया—"सब जानते हैं कि कम्युनिस्ट रूसी सरकारके कठपुतले हैं।"

मेरी समझमें नहीं आ रहा था कि उसे हो क्या गया है। क्या एक ही रातमें वह नाज़ी हो गया? किन्तु उसने बतलाया कि उसकी सहानुभूति तो पहलेकी तरह मजदूरोंके ही साथ है। और बोला—

"लेकिन सोशलिस्ट अथवा मार्क्सवादी होना एक बात है। किसी

विदेशी सरकारकी जासूसी करना दूसरी बात है। शायद बालकी खाल निकालें, तो कहा जा सकता है कि हम दोनों जासूस नहीं हैं। किन्तु हमारी अन्तरात्मा गवाही देगी कि हम दोनोंने बेईमानी और गद्दारीका काम किया है। मैं तो अब सब कुछ खोले बिना जिन्दा रहनेके लिए तैयार नहीं हूँ। मैंने सब कुछ लिखकर तैयार कर लिया है। बस, आपकी राय जानने आया हूँ।"

उसने एक हाथसे लिखा हुआ आठ पन्नेका पत्र मेरे सामने रख दिया। वह उसने उल्स्टाइनके मैनेजिंग डाइरेक्टरके नाम लिखा था। उसने मुझसे वह पत्र पढ़नेका अनुरोध किया।

मैंने दो-तीन लाइनें पढ़ीं। लिखा था—"मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि नीचे लिखी बातोंपर आपका ध्यान आकर्षित करूँ.........

और आगे मुझसे नहीं पढ़ा गया। लड़का मेरे सामने खड़ा था। उसने बैठनेसे इन्कार कर दिया। गोरे चेहरेपर दाढ़ीके काले डंठल और लाल, फूली हुई आँखें उसकी मुद्राको भयावह बना रही थीं। यह तो मैं समझ गया कि वह यह सब करके कुछ नाटकका-सा आनन्द ले रहा है। जवान ही तो था न। लेकिन मैं यह भी जानता था कि वह साधारण लड़का नहीं है। वह अवश्य ही अपनी बातपर अड़कर आत्म-हत्या करनेकी क्षमता रखता है।

मुझे हँसी भी आ रही थी। बुरा भी लग रहा था। हँसी इसीलिए कि फान अपने आपको और अपनी कही बातोंका मनमाना महत्त्व दे रहा था। उसने मुझसे कोई विशेष महत्त्वकी बात तो कभी कही नहीं थी। फिर भी मैं उसके साथ बहस कैसे करता? मेरे अपने भविष्य

का सवाल उठ खड़ा हुआ था। पीछे चलकर जब मैंने सब हाल एडगर को बतलाया, तो उसने ताज्जुब किया कि मैंने चिट्ठी पढ़कर क्यों न देखी। शायद इसीलिए पार्टीने मुझे निकम्मा समझकर छोड़ भी दिया। आज मैं मामला बखूबी समझता हूँ। चिट्ठीमें मेरी करतूतोंका रोजनामचा लिखा था। मैं अपने-आपको तर्क द्वारा बहकाकर किसी प्रकार अपने मनका संशय मिटा लेता था। वह पत्र पढ़नेकी शक्ति कहाँसे लाता ? उस समय मुझे विश्वास था कि मैंने कोई बुरा काम नहीं किया, सिर्फ एक गधेसे पाला पड़ गया है। फिर भी उस लड़केकी आँखोंमें मैं कसूरवार तो बन गया था। कल्पनामें मैंने उसे गोली खाकर मरते हुए देखा। मैं सिहर उठा। उसकी जेब में पत्र वापिस ठूंसते हुए मैंने कह दिया कि मेरी ओर से वह जहन्नुम में ज [illegible] स्वत ।

"तो क्या आप सहमत हैं कि यह पत्र मैं पते पर पहुंचा दूँ ?" फॉन ने पूछा। मैंने देखा कि उसे मेरी हिम्मत पर ताज्जुब हो रहा है। वह मरना नहीं चाहता था। एक बार तो मैंने मन में कहा कि बेवकूफी करने से कोई फायदा नहीं। थोड़ा समझा-बुझा कर उसे रास्ते पर ले आना चाहिए। लेकिन मेरा जी नहीं चाहा। गुरुपद का मेरा आत्मविश्वास खोखला हो चुका था। जाते-जाते फॉन एक बार फिर लौटकर मेरे पास आया और बड़े तपाक से हाथ मिलाकर बाहर निकल गया। उस क्षण में उसकी मुद्रा और भी भयावह हो उठी।

इस प्रकार उलस्टाइन से मेरा पत्ता कट गया। इसके बाद मुझे सात साल तक फिर धूल फाकनी पड़ी। मैं पार्टी के लिए काम छोड़ने को

सदा तैयार था, लेकिन ऐसी बेवकूफी करके काम गँवा देने का पछतावा मन में बना रहा।

पार्टी के उस जासूसी विभाग से भी मेरा सम्पर्क टूट गया। अब मैं उनके किस काम का रहा था। फिर कभी एडगर और पौला में मेरी मुलाकात नहीं हुई। पीछे चलकर मुझे मालूम हुआ कि पौला को तो नाज़ियों ने कैद में मार डाला है। एडगर के सम्बन्ध में मैं आजतक कुछ नहीं जान पाया।

उलस्टाइन ने मुझे जिस ढंग से जवाब दिया, उसको भद्रता अथवा बूर्जुआ ढोंग, दोनों ही कहा जा सकता है। आप के दृष्टिकोण पर निर्भर है कि आप क्या कहेंगे। फॉन के मेरे कमरे से चले जाते ही मैं बुलाया जाने के लिए तैयार होकर बैठ गया था। मन ही मन मैंने अपना बचाव भी सोच लिया था। मैं मानने के लिए तैयार था कि उस लड़के से गप-शप सुनाने का अनुरोध मैंने किया था और कुछ गपशप मैं कम्युनिस्ट पार्टी में अपने मित्रों को भी सुना देता था, किन्तु इसमें दोष की क्या बात थी ? सभी तो राजनीतिक चर्चा करते हैं और अपने मित्रों में बातें सुनते सुनाते हैं। मेरे राजनीतिक विश्वासों से भला फर्म को क्या मतलब था। मैं जब तक अपना काम अच्छी तरह करता रहूं, तब तक······ इत्यादि, इत्यादि। किन्तु कई दिन तक कुछ भी नहीं हुआ। इस बीच मैंने एडगर से भी सलाह ले ली। उसे भी मेरी दलीलें पसन्द आईं। धीरे-धीरे मेरे मन से भय निकल गया और एक नैतिक कठोरता उमड़ पड़ी। मुझे ऐसा लगने लगा कि झूठमूठ मुझ पर लाञ्छन लगाने की तैयारी हो रही है।

आठ दस दिन बाद एक सुबह मुझे अपनी मेज पर एक पत्र मिला। मालिकों का पत्र था। उसमें बहुत विनीत शब्दों में लिखा था कि मन्दी आने के कारण स्टाफ में छंटाई करना अनिवार्य हो गया है और मेरी सेवाओं से वे और अधिक लाभ नहीं उठा सकते। अब मैं चाहूं तो क साथ हरजाने की रकम ले सकता हूँ अथवा एक बंधे हुए मासिक पारिश्रमिक पर उनके पत्रों में कुछ लेख आदि लिखता रह सकता हूँ। पत्र में फॉन अथवा कम्युनिस्ट पार्टी के विषय में एक शब्द भी नहीं था। स्पष्टतया उलस्टाइन कोई शोर-गुल नहीं खड़ा करना चाहते थे। पार्टी भी नहीं चाहती थी कि कोई हंगामा हो। एडगर ने मुझे हरजाना लेकर अलग हो जानेकी सलाह दी। और यह आखिरी आदेश देकर वह जो गया सो फिर जीवन में मुझे कभी नहीं मिला।

अपना काम खोकर मैं आखिरकार पूंजीवादी संसारके समस्त बन्धनोंसे मुक्त था। उलस्टाइनसे जो हरजानेका रुपया मिला वह मैंने पिताजीको भेज दिया। वह दो-तीन साल तक उनके लिए काफी था। और इतने दिनोंमें तो मुझे क्रान्ति हो जाने की आशा थी। क्रान्ति के बाद तो फिक्र की कोई बात ही नहीं थी। इस प्रकार मैं उस ओरसे निश्चिन्त हो गया। मैंने अपने लिए सौ सवा सौ रुपए बचा लिए, ताकि पार्टीकी आज्ञा मिलते ही मैं सोवियत भूमिकी यात्रा कर सकूँ। अपना बढ़िया बंगला छोड़कर मैं एक सस्तेसे घरमें चला आया। वहाँ अधिकतर भुख-मरे कलाकार बसते थे। उन सबके क्रान्तिकारी विचार होनेके कारण उस बस्तीका नाम ही "लाल मोहल्ला" पड़ गया था। वहाँ जो तीन मास मैंने बिताए, वे पार्टीमें मेरे सात सालोंके सबसे सुख के दिन थे।

अब पार्टीने मुझे इजाजत दे दी कि मैं सेलमें भर्ती होकर पूरे तौरसे पार्टीके सदस्यका जीवन बिताऊँ। उलस्टाइनसे जवाब मिलनेके कुछ दिन पूर्व ही एडगरने मुझे ईवान स्टाइनवर्गके नामसे "लाल मोहल्ले" के सेलमें नाम लिखवाने की अनुमति दे दी थी। शायद पार्टीने मेरी पिछली सेवाओंका यह इनाम मुझे दिया था। सेलमें नाम लिखाते समय मैं "लाल मोहल्ले" से दूर अपने बंगलेपर ही रहता था। इसलिए ईवान स्टाइनवर्गका असली भेद खुलनेका कोई डर नहीं था। किन्तु पार्टीने भूल की थी। पहिले ही दिन जब कामरेड ईवानका परिचय कराया गया, तो आधे दर्जन जाने-पहिचाने चेहरोंपर मुस्कान फैल गई।

अब मुझे पार्टीसे अपना नाता छुपाए रहनेकी कोई जरूरत नहीं थी। मैंने तन-मनसे सेलका काम करना शुरू कर दिया। सेलमें प्रायः बीस सदस्य थे, जो हफ्तेमें एक-दोबार जरूर मिल कर बैठते थे। सेलका नेतृत्व तीन आदमियोंके हाथमें था। एक राजनीतिक नेता, दूसरा व्यवस्थापक और तीसरा प्रचारक। राजनीतिक नेताका नाम था अलफ्रेड कांटारोविच जो आज-कल बर्लिनके एक रूसी समाचार-पत्रका सम्पादन करता है। तीस सालका, लम्बा, फुर्तीला जवान था। उसका काम था कभी-कभी अखबारोंमें विवेचना अथवा निबन्ध लिखना। पार्टीको विश्वास था कि हमारे युगका एक जीवन्त उपन्यास उसके हाथों लिखा जाएगा। आज तक तो वह उपन्यास उसने लिखा नहीं। खैर। वह अत्यन्त ही मीठा और निःस्वार्थ व्यक्ति था। उसके व्यवहारमें आत्मसम्मानकी छाप थी। हसमुख तो था ही। उसमें एकमात्र कमी थी, नैतिक बलका अभाव। हम बहुत दिनों तक एक साथ रहे। पेरिसमें जाकर जब मैंने पार्टीसे संबंध

छोड़ा तो वही एक ऐसा साथी था, जिसने मुझ पर थूका नहीं। आज वह रूसके मातहत एक बड़ा साहित्यिक माना जाता है। मेरी कामना है कि उसका भोलापन और पार्टीके प्रति फरमाबरदारी उसे उन हथकण्डोंसे बचाए रहे, जिनमें फँस कर अनेक कम्युनिस्ट साहित्यकार पिस चुके हैं।

हमारे व्यवस्थापकका नाम था मैक्सश्रोडर। पन्द्रह वर्ष पूर्व जब उसकी आयु उन्नीस वर्षकी थी, तो उसने दो-चार सुन्दर कविताएं लिख कर जो यश कमाया था, वही अभी तक उसकी जमा पूंजी थी। वह भला आदमी था। पार्टीको ऐसे बहुत लोगोंकी सेवा मिलती है जो कि साहित्य, धनार्जन और प्रेम इत्यादिमें असफल रह कर कुछ आवारासे हो जाते हैं।

प्रचारकका काम मेरे सैलमें प्रवेश पानेके कुछ दिन बाद ही मेरे जिम्मे आया। मैंने जो दो-चार परचे और इशतिहार लिखे, उनमें क्रान्तिकारी कारुण्यकी छाप थी। सैलके दूसरे सदस्योंमेंसे मुझे डाक्टर विलहेम रीख भी याद पड़ते हैं। उन्होंने यौन-राजनीतिके नाम पर एक संस्था स्थापित की थी। वे फ्रायड[1] और मार्क्स दोनोंके भक्त थे। उन्होंने एक पुस्तक लिख कर यह प्रतिपादन किया था कि मजदूरोंकी यौनवासना पूरी न होने के कारण उनकी क्रान्तिकारी चेतना पनप नहीं पाती। मुक्त भावसे यौन-वासनाको तृप्त करके ही मजदूर श्रेणी अपना क्रान्तिकारी कर्त्तव्य निभा सकती है और इतिहासकी सेवा कर सकती है। हिटलरकी जीत होनेके बाद उसने नाजियोंकी प्रवृत्तियोंका विश्लेषण करते हुए एक चटाकेदार किताब लिख मारी। पार्टीने पुस्तकका खण्डन किया और डाक्टर रीखने

---

१ मनोविश्लेषण नामक मनोविज्ञानके अधिष्ठाता जिनको मार्क्सवादी 'बूर्जुआ सबोध" कह कर तिरस्कृत करते हैं।

खीज कर पार्टीसे विदा ले ली। आजकल वे अमेरिकामें किसी वैज्ञानिक प्रयोगशालाके संचालक हैं। इनके अतिरिक्त सैलमें कई प्रकारके नाट्य-कार भी थे। इनमें कई लड़कियाँ थीं जो बुद्धिशाली होनेका दम भरती थीं। एक था इन्श्योरेन्सके एजेन्ट मोहल्लेके कुंजड़ेका लड़का और दो-चार मजदूर भी इस नाटक मण्डलीमें शामिल थे।

सैलके आधे काम तो कानूनके मुताबिक होते थे और आधे गैर-कानूनी। सब सभाओंके आरम्भमें एक राजनीतिक भाषण होता था। वह पार्टीके जिला कार्यालयसे सीख कर या तो सैलका राजनीतिक नेता देता था, अथवा जिला कार्यालयसे इसी कामके लिए आया हुआ एक प्रतिनिधि। उस समयकी समस्त समस्याओं पर पार्टीकी नीति सम-झानेका काम इसी भाषण द्वारा होता था। १९३२ के उन भयानक दिनोंमें कई चुनाव हुए, जिनसे देशमें भूकम्प-सा आ गया। आठ महीनेमें ही गृह-युद्धकी घटाएं घिर आईं। हमने भी घर-घर जाकर, पार्टीका साहित्य बेच कर और पर्चे बांट कर चुनाव में भाग लिया। लोगोंको समझानेका काम सबसे कठिन था। प्रायः रविवारकी सुबह हम यह काम करने निकलते थे। उस समय लोग अपने-अपने घर पर मिल जाते थे। हम घन्टी बजाते और द्वार खुलते ही भीतर सिर डाल कर अपना लेक्चर शुरू कर देते। पार्टीका साहित्य घरवालेकी ओर बढ़ा कर बहस करनेके लिए उसे ललकारते हम विश्व-क्रांति उसी प्रकार बेचना चाहते थे, जैसे कि झाड़ू बेचे जाते हैं। लोगोंका व्यवहार अच्छा कभी नहीं होता था। कभी-कभी वे लाल-पीले भी हो जाते थे। बहुत बार मुझे धकेल कर द्वार बन्द किया गया, किन्तु मार-पीटकी नौबत कभी नहीं

आई। हाँ, हम नाजियोंके घरोंसे दूर-दूर रहते थे। हमारे मुहल्लेके नाजियोंको हम पहिचानते थे और वे भी हमको जानते थे। हमारी तरह मोहल्ले-मोहल्लेमें उनकी भी शाखाएँ थीं। समस्त जर्मनीमें इस प्रकार दो पार्टियोंका जाल बिखरा हुआ था। मेरा विश्वास है कि यदि मास्कोकी दखलअन्दाजी हमारे हाथ नहीं बाँध देती, तो पांसा हमारी तरफ ही पड़ता। हमारे पास आदर्श था, बलिदानकी भावना थी और था जनताका समर्थन।

फिर भी हमने मैदान हारा। हम झूठमूठ समझ बैठे थे कि हम शिकारी हैं। असली शिकारी तो मास्कोमें बैठे थे और हम बिचारे तो उनके कांटेकी ओर लपकनेवाली अनजान मछलियाँ थीं। यह हमारी समझमें इसलिए नहीं आया कि अनुशासनके डण्डेसे हमारी कपाल-क्रिया करके हमें मास्कोकी इच्छाको अपनी इच्छा मान लेनेका पाठ पढ़ाया गया था। हमने सोशलिस्टोंसे मिल कर चुनावमें राज्यप्रमुखके पदके लिए एक व्यक्ति ठीक करनेसे इन्कार कर दिया। हार कर सोशलिस्टोंने हिन्डनबर्ग[1] को चुना। हमने तुरन्त ही उसके विरुद्ध थेलमैन[2] का नाम दे दिया। थेलमैनके चुने जानेकी कोई गुञ्जायश नहीं थी और यह निश्चित था कि मजदूर-श्रेणीके वोट फूट कर हिटलरको विजयी बना देंगे। पार्टीमें से कुछने कहा कि सोशलिस्ट आखिर हिटलरसे तो कम बुरे हैं। तुरन्त ही पार्टीने हमें लैक्चर पिलाया कि "थोड़ा बुरा" जैसा कुछ नहीं होता

---

१ प्रथम महायुद्धमें ख्यातनामा जर्मन जेनरल।

२ जर्मन कम्यूनिस्ट पार्टीके नायक जिनको पीछे चल कर मास्कोने अपराधी ठहराया। ये हिटलरकी जेलमें मरे।

और जो इस प्रकारकी मीन-मेख निकालते हैं, वे वास्तवमें ट्राटस्की[1] के अनुयायी, पार्टीमें फूट डालनेवाले, क्रान्तिके शत्रु हैं। बात हमें जंच गई और "थोड़ा बुरा" की बात करनेवालोंसे हमें भी नफरत होने लगी। हमारी समझमें ही नहीं आया कि इस प्रकारके ओछे विचार हमारे बीच उठे ही क्योंकर। लंगड़ा भला अपाहिजसे अच्छा कैसे हो सकता है। असली क्रान्तिकारी नीति यह नहीं कि सोशलिस्टोंको सहायता देकर गण-तन्त्रको लंगड़दीन बनाया जाए। क्रान्तिका अर्थ था गणतन्त्रकी दोनों टांगे तोड़ डालना। विश्वासमें वस्तुतः बड़ी ताकत होती है। मसीहने कहा था कि राई भर विश्वास पहाड़को हिला सकता है। हम भी अपने विश्वासके जादूसे चुहियाको रेसका घोड़ा बनाने पर तुले थे।

हमारी विचार-शक्ति ही नहीं, हमारा शब्दकोष तक फेरमें पड़ चुका था। कुछ शब्द जैसे कि "थोड़ा बुरा" इत्यादि मुँह पर लाना गुनाह था। कुछ और शब्दों और नारोंका मन्त्रकी तरह जाप करना पड़ता था। लेनिनने कहीं अपने लेखमें हैरोस्ट्रेटस नामके एक ग्रीक व्यक्तिका नाम लिया है। उस बिचारेने और किसी भी प्रकार प्रसिद्धि प्राप्त न होते देख कर एक मन्दिरमें आग लगा दी थी। बस हैरोट्रेटसका नाम ले-लेकर हम अपने विपक्षियों पर गालियोंका धुंआधार उड़ाने लगे।

शब्दोंका प्रयोग सुन कर ही हम समझ जाते थे कि कौन ट्राटस्की

---

१ लेनिनका साथी और स्टालिनका प्रतिद्वन्द्वी जिसको १९२८ में रूससे बहिष्कृत किया गया। १९४० में मैक्सीकोमें स्टालिनके एक एजेन्ट ने इनकी हत्या कर डाली। स्टालिनवादी कम्युनिस्ट ट्राटस्कीसे उतनी ही घृणा करते हैं, जितनी कि ईसाई लोग शैतानसे।

मतानुयायी है, कौन सुधारवादी और कौन ब्रैन्डलर* अथवा ल्लाड्क* इत्यादि झूठे धर्म-गुरुओंका चेला। इसी प्रकार कम्युनिस्टोंकी भाषा सुन कर पुलिस भी उनको भाँप लेती थी। पीछे चलकर हमारी विशेष प्रकारकी भाषाने हमको हिटलरकी गेस्टापो[1] द्वारा पकड़वानेका काम भी किया। मुझे एक लड़कीका उदाहरण याद आता है, जिसको बिना किसी सबूतके ही गेस्टापोने पकड़ लिया था। वह उसे छोड़ने ही वाले थे कि उसके मुखसे एक शब्द निकल गया—"ठोस बात"। गेस्टापोका दारोगा जो अपने आदमियोंकी बेवकूफी पर बिगड़ रहा था, चमक कर उठ बैठा। आँखें निकाल कर उसने लड़कीसे पूछा, "यह शब्द तुमने कहांसे सीखा ?" लड़कीके होश गुम हो गए। उसे घबराया देख कर पुलिसने और धर दबाया और बिचारीका सारा भेद खुल गया।

साहित्य, कला और संगीत सम्बन्धी हमारी मान्यताओं पर भी पार्टी ने ऐसा ही जादू कर दिखाया। लेनिनने कहीं लिखा होगा कि उसने फ्रांसके सम्बन्धमें फ्रेंच उपन्यासकार बाल्जाकसे जो सीखा वह इतिहास के समस्त ग्रन्थ उसे नहीं सिखा सके। बस, बाल्जाक सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार बन गया, जब कि अन्य लेखक तो गली-सड़ी पूँजीवादी व्यवस्थामें उगे हुए विषवृक्ष मात्र थे! कलाके क्षेत्रमें हम "क्रान्तिकारी प्रगतिवाद" के भक्त बन गए। जिस चित्रमें कारखानेकी चिमनी अथवा मशीनका हल न आंका जाए, वह चित्र पलायनात्मक ठहराया जाता था। इस तरह कई प्रकारकी बेढंगी, भोंडी चित्रकारीको हम प्रगतिवादके नाम पर

---

* मार्क्सवादके विरोध समाजवादियोंके नाम।

1 हिटलरकी खुफिया पुलिस।

उपासना करनेको तैयार हो गए। कई वर्ष बाद इस "क्रान्तिकारी प्रगतिवाद" की भी शामत आई और "समाजवादी यथार्थवाद" का बोलबाला हुआ। तब तो कोई भी नई अथवा आधुनिक तस्वीर पूँजीवादके थोथेपनका प्रतीक बन गई। संगीतमें सम्मिलित गानको उन दिनों श्रेष्ठ माना जाता था, क्योंकि पार्टीकी दृष्टिमें व्यक्तिगत गान पूँजीवादकी निशानी थी। किन्तु व्यक्तिगत गानको मंचपरसे सर्वथा हटाना असम्भव था। इसलिये जरूरतके अनुसार नए शब्द गढ़कर उसकी मार्जना की जाने लगी। मानस-शास्त्रमें केवल दो ही भावनाएँ सत्य मानी जाती थीं, वर्ग-एकता और यौन-वासना। शेष सब भावनाएँ बुर्जुआ तत्ववाद कहकर झुठला दी गयीं। पूंजीवादी समाजमें प्रतिस्पर्द्धाके कारण महत्वाकांक्षा, ईर्ष्या, शक्तिलोलुपता इत्यादि अनेकों मिथ्या भावनाएं जन्म लेती हैं, यह हमें भली-भांति समझा दिया गया।

यौन-वासनाके सम्बन्धमें एक मजेदार दृष्टिकोण मैंने देखा। एक पत्नित्व एवं परिवार-पोषणकी प्रणालीको पार्टी, पूँजीवादी व्यवस्थाकी प्रतीक मानती थी। पार्टीका मत था कि इनसे व्यक्तिवादकी भावना जन्म लेती है और व्यक्ति पाखण्डका आश्रय लेकर वर्ग-संघर्षसे जी चुराने लगता है। अतः कम्युनिस्टोंके लिये ये सब रीति-रिवाज कानी-कौड़ीका भी मूल्य नहीं रख सकते। पूंजीवादके अन्तर्गत विवाह-पद्धतिको पार्टी, वेश्यावृत्तिका ही दूसरा रूप मानती थी। किन्तु पार्टी उच्छृङ्खलताके भी विरुद्ध थी। बहुत दिन तक रूसमें और कम्युनिस्ट पार्टियोंमें उच्छृङ्खलताका बोलबाला रहा था। प्रसिद्ध कहावत थी कि नर-नारीका यौन सम्बन्ध उतना ही महत्व रखता है, जितना की गिलास भरकर पानी पी लेना। लेनिनने

इस मान्यताकी निन्दा की थी।' इस प्रकार पूंजीवादकी नैतिकता और उच्छृङ्खलता दोनों ही बुरी मानी जाती थीं। मजदूरोंको इस प्रश्न पर एक नए दृष्टिकोणको अपनानेकी जरूरत थी। उन्हें विवाह करके अपनी स्त्रियोंके प्रति प्रेम दिखाना चाहिये और बच्चे पैदा करके मजदूर-कुलकी उन्नति करनी चाहिये। यदि पार्टीसे पूछा जाता कि इस नैतिकता और पूँजीवादकी नैतिकतामें क्या अन्तर है, तो उत्तर मिलता कि जो अन्तर नहीं देख पाते, उनकी विचार शक्तिको लकवा मार गया है। किसी पुलिस वालेके हाथमें बन्दूक हो अथवा किसी क्रान्तिकारी मजदूर वर्गके हाथोंमें—इन दोनों बातोंमें तो बहुत बड़ा अन्तर है। पुलिसमैन बन्दूक से क्रान्तिकी हत्या करके पूँजीवाद और शोषणकी रक्षा करता है, जब कि क्रान्तिकारी मज़दूर उसी बन्दूक से जनता के मुक्ति-संग्रामको आगे बढ़ाते हैं। बस पूँजीवादी नैतिकता में और मजदूरोंकी नैतिकतामें इतना फर्क है। वही विवाह-प्रणाली जो पूँजीवादी समाजमें पतनकी प्रतीक है, मजदूरोंके समाजमें एक स्वस्थ एवं सुन्दर प्रणाली बन जाएगी। यह समझानेके बाद कहा जाता—"यदि बात जँची न हो तो कुछ और ठोस उदाहरण देकर समझानेकी चेष्टा की जा सकती है।" किन्तु प्रायः हम पार्टीकी बात इतने ही में समझ जाते थे।

एक ही बात को बार-बार दोहराना, एक बड़ा-सा प्रश्न पूछकर उत्तर देते समय प्रश्नकी भाषाको एक बार फिरसे कह डालना, कुछ खास विशेषणोंको बार-बार काममें लाना और दूसरेकी बातका उत्तर न देकर मज़ाक उड़ाने की चेष्टा करना—स्टालिनकी शैलीके ये कुछ ऐसे अंग हैं, जिनको प्रत्येक कम्युनिस्ट सीख लेता है और जिनका सुनने वाले पर

असर हुए बिना नहीं रहता। दो घण्टे तक एक सधे हुए कम्युनिस्ट से बात करनेके बाद यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि सुनने वाला स्वयं लड़का है अथवा लड़की और सत्य जाननेके लिये फिर स्टालिनके सिवाय कोई शरण नहीं रह जाती। एक ही साथ आपको परस्पर विरोधी बातों पर विश्वास करना पड़ता है। एक ही साथ आप मानने लगते हैं कि सोशलिस्ट (क) आपके सबसे बड़े शत्रु है और (ख) आपके अचूक मित्र हैं। आपको विश्वास होने लगता है कि (क) पूंजीवादी और समाजवादी देश शान्तिसे साथ-साथ रह सकते हैं और (ख) ये दो तरह के देश कभी शान्ति से साथ-साथ रह ही नहीं सकते। आपको साबित करना पड़ता है कि जब एन्जेल्सने साफ-साफ लिखा था कि एक देशमें समाजवादका गठन नहीं हो सकता, तो वस्तुतः उसका अभिप्राय ठीक इसका उल्टा था, अर्थात् समाजवाद एक देशमें स्थापित हो सकता है।

सबसे बढ़कर आपको एक बातमेंसे दूसरी और दूसरीमेंसे तीसरी निकालनेकी कला आ जाती है। किसी व्यक्तिका फासिस्टोंने मार-मार कर कचूमर निकाल दिया हो, तब भी आप इस कला द्वारा सिद्ध कर सकते हैं कि वह व्यक्ति फासिस्टोंका दलाल है। सीधी-सी बात है। यदि वह व्यक्ति पार्टी से सहमत नहीं है, तो पार्टीको कमजोर करता है। पार्टी कमजोर होनेसे फासिस्टोंकी विजयकी सम्भावना बढ़ जाती है। बस हो गया फासिस्टोंका दलाल। इस प्रकार पार्टीमें गणतन्त्र, स्वाधीनता, दलाल इत्यादि आमफहम शब्दोंका एक विशेष अर्थ होता है जो कि साधारण लोग नहीं समझ सकते और पार्टी भी इन शब्दोंके क्या माने

लगाती है, यह निर्भर करता है किसी समयकी पार्टी लाईन[1] पर। पार्टी लाइन बदली और सारे शब्दोंके अर्थ भी एक साथ बदल गए !

जिन दिनोंकी मैं बात कह रहा हूं, उन दिनों पार्टीमें मजदूरोंके प्रति श्रद्धा दिखाने और शिक्षित समाजको गाली देनेका फैशन था। मध्यम श्रेणीसे आए हुए तमाम कम्युनिस्टोंको एक कुढ़न रहती थी कि वे मजदूरोंके घर क्यों नहीं पैदा हुए। उनको पार्टी सिखाती थी कि उनका कम्युनिज्म तो बस दिखावे भर का है, असली कम्युनिस्ट बननेका अधिकार तो उन्होंने अपने जन्मके दिन गंवा दिया था। लेनिनने कहा था कि इन मध्यम श्रेणीसे आए कम्युनिस्टोंसे पार्टीको काम निकालना पड़ेगा और रूसमें भी अभी तक डाक्टर, इञ्जीनियर, वैज्ञानिक इत्यादि लोगोंकी जरूरत थी। इसलिए पार्टी किसी न किसी तरह हमारे प्रति एक सहनशीलता दिखानेका उपक्रम करती थी। हिटलर ने कुछ कामके यहूदियोंको जर्मनीमें रहनेकी इजाजत दी थी। किन्तु उनका कहीं आदर-सम्मान नहीं था और एक विशेष प्रकारका बिल्ला हाथ पर बाँधकर वे घर से निकलते थे। ठीक वही हालत पार्टीमें हम पढ़े-लिखे लोगों की थी। पार्टीका मेम्बर बननेसे पहले हमारी वंश-परम्परा और दादा-परदादा तककी टोह ली जाती थी। पार्टीमें शोधन[2] होता तब सबसे पहले हमीं

---

१ पार्टीकी नीति और कार्यक्रमको पार्टी लाइन कहा जाता है। वह समय-समय पर बदलती रहती है।

२ बार-बार कम्युनिस्ट पार्टीमें छँटाई होती है, जिसके फलस्वरूप बहुतसे नेता और कार्यकर्त्ता और साधारण सदस्य पार्टीसे निकाल दिये जाते हैं, अन्यथा स्टालिनको साष्टांग प्रणाम करते हुए अपनी भूलें मान लेते हैं। हमारे देशमें तेरह वर्षकी लीडरीके बाद पूर्णचन्द जोशीको रणदिवेने पदच्युत किया और रणदिवे स्वयं आज पार्टीकी नजरोंमें गिरे हुए हैं।

पढ़े-लिखोंकी शामत आती थी। सच्चे मजदूर तो रूसके मजदूर ही माने जाते थे। उनमें सर्वश्रेष्ठ मजदूर थे, लेनिनग्राड[1] स्थित पुटीलोवके लोह कारखानेमें काम करनेवाले अथवा बाकूके कुओंसे तेल निकालनेवाले। जो-जो किताबें हम पढ़ते उन सबमें इस आदर्श मजदूरका चित्र मिलता था। उसके कन्धे प्रशस्त, मुख पर ढीठता और नख-शिख सामान्य। वह अपने वर्गकी अनन्य भक्ति करता और अपनी काम-वासना को काबूमें रखता। वह मजबूत किन्तु चुप रहनेवाला, दयालु किन्तु अवसर पड़ने पर घोर निर्दयता दिखा सकनेवाला होना आवश्यक था। उसके पांव बड़े-बड़े, गठीले हाथ और खुला हुआ कण्ठ होता, जिससे कि वह क्रान्तिके गीत उच्च स्वरमें गा सके। जो मजदूर कम्युनिस्ट नहीं बनते, उनको मजदूर कहना ग़लत माना जाता था। या तो वे कंगाली मवाली कहे जाते अथवा सरदार मजदूर।

मध्यम श्रेणीका शिक्षित कम्युनिस्ट पूर्ण मजदूर बननेकी तो आशा ही नहीं रख सकता था, किन्तु उसका कर्त्तव्य अवश्य था कि पूर्णताके निकट पहुंचनेका प्रयत्न करे। कितने ही लोग टाई पहनना छोड़कर, गन्दे कपड़े पहनकर और नाखून बढ़ाकर मजदूर बननेकी चेष्टा करते थे। पार्टी इस पाखण्ड और स्वांग भरनेके विरुद्ध थी। सही रास्ता तो यह था कि ऐसी कोई बात न लिखे, न बोले, न सोचे, जो कि कुली-कबाड़ी

---

1 रूसकी पुरानी राजधानी जिसका नाम क्रान्तिसे पहले पैट्रोग्राड था। यहीं लेनिन ने पहले-पहले अपने हाथ दिखाए थे। किन्तु बादमें पैट्रोग्राडके क्रान्तिकारी मजदूरोंसे डरकर लेनिन राजधानीको मास्को ले गए और ट्राट्सकीने पैट्रोग्राडके नाविकोंके खूनसे नगरको रंग डाला।

की समझमें न आ सके। जिस प्रकार एक डूबते हुए जहाजके यात्री अपना असबाब फेंककर बोझ घटाना चाहते हैं, उसी प्रकार हम भी शिक्षा और संस्कारोंको तिलाञ्जलि देकर दस-पाँच नारोंसे काम चला लेने की आदत डाल लेते थे। स्टालिनके धर्मकी एक भाषा है, जो समस्त संसारमें बोली और समझी जाती है। बस उस भाषामें जो कहा न जा सके अथवा सोचा न जा सके, उसको कहने विचारनेकी कुचेष्टा, अथवा किसी समस्या पर पार्टीके दिये हुए दृष्टिकोणके अतिरिक्त किसी अन्य दृष्टि कोणसे विचारनेका मिथ्या प्रयास—इन झांसोंसे हमें हमेशा सतर्क रहना पड़ता था। बुद्धिवादकीकबर खोद कर ही हम रूसमें रहनेवाले आदर्श मजदूरकी नकल कर सकते थे।

× × ×

सेलमें हमारी सभाएँ पार्टी लाइनके सम्बन्धमें एक या दो लैक्चरसे शुरू होती थीं। इसके बाद वाद-विवाद होता था। किन्तु यह वाद-विवाद एक खास किस्मका था। कम्युनिस्ट पार्टीका यह कड़ा कायदा है कि किसी समस्या पर एक बार नीति-निर्धारित करनेके बाद उसकी आलोचनाको द्रोह कहा जाता है। किन्तु चूंकि नीतिके विषयमें सारे फैसले ऊपरवाले पार्टीके साधारण सदस्योंको पूछे बिना ही कर लेते हैं, इसलिये साधारण सदस्योंको अपनी राय प्रकट करनेका कभी अवसर ही नहीं मिलता। नेता लोगोंको भी जनताके मनोभावको जाननेका मौका नहीं मिल पाता। जर्मन पार्टीमें तो कहावत थी कि युद्धके मैदानमें खड़े होनेवालोंको वाद-विवादकी फुरसत कहाँ और कम्युनिस्ट हमेशा युद्धके मैदानमें तो खड़े ही रहते हैं।

इसलिये हमारे वाद-विवादका असली मतलब था कि प्रत्येक सदस्य खड़ा होकर कुछ मिनट तक नेता लोगोंके भाषणका अनुमोदन करे। यही नहीं; प्रत्येक श्रोता सिर खुजलाकर नेताके भाषणकी पुष्टिमें दलीलें खोजता था। सब अपने-अपने अन्तःकरणको कुरेद कुरेद कर विचारके वे टुकड़े खोज निकालते थे, जिनके अनुसार नेताने जो कुछ कहा; वही हमेशासे वे स्वयं भी सोचते आये थे। विचारके ऐसे टुकड़े सबको ही अपने-अपने भीतर मिल जाते, क्योंकि व्यक्तिका मन न जाने क्या-क्या सोचा करता है। इसलिये पार्टीने जब बतलाया कि जर्मनीके आनेवाले चुनावमें हम बेकारोंकी समस्या पर अथवा नाज़ी आतंक पर नारे न उठाकर, जापानियों द्वारा सताये हुए चीनियोंके पक्षमें गरमागरम भाषण देते रहें, तो मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ। इसके विपरीत मैंने एक पर्चा लिखकर यह साबित कर डाला कि उस समय शांघाईमें जो घटनाएँ हो रही थीं, वे जर्मनीमें होनेवाली घटनाओंकी तुलनामें जर्मन मजदूरोंके लिये अधिक महत्व रखती हैं। पार्टीने मेरी पीठ थपथपाई और जिलेके पार्टी दफ्तरसे मुझे शाबासी मिली। वह शाबासी मुझे आज भी अच्छी लगती है। क्या करूँ, मन ही नहीं मानता।

सैलके मजदूर सदस्य भाषण सुनते-सुनते ऊँघने लगते थे। बुद्धिके पटेबाज एकके बाद एक उठकर सुनाते कि वे सब एकमत क्यों हैं। मज-दूरों की आँखें आश्चर्यसे खुल जातीं। उन्हें शायद विश्वास नहीं होता था कि ये पढ़े लिखे लोग झगड़नेकी बजाए एक दूसरेसे इतनी जल्दी सहमत हो गए। समझा-बुझाकर एक दो मजदूरको भी बोलनेके लिये तैयार किया जाता था। वह अपनी आवाजमें नेताके शब्द दोहरा देता।

उसके भाषण पर ताली पिटती और उसके बैठ जानेपर नेता खड़ा होकर कहता कि उस सभामें जो कुछ कहा गया, उसमें कहनेका सबसे अच्छा ढंग मजदूर वक्ताका था। बस मीटिंग समाप्त हो जाती।

मैं पहले कह चुका हूँ कि १९३८ एक हलचलका साल था। पार्टी गैर कानूनी बननेकी तैयारी कर रही थी और एक विशेष अनुशासनमें सदस्योंको बाँधा जा रहा था। किसी क्षण भी हमपर पाबन्दी लग सकती थी और हमें तैयार रहना ही उचित था। गैरकानूनी बनते ही समस्त सैल अपने आप टूट जाते हैं और एक नये प्रकारका संगठन काममें लाया जाता है। सैलमें तो सदस्योंकी संख्या तीस-तीस तक पहुंच जाती है और गैरकानूनी कामोंके लिए इतनी भीड़ खतरनाक है। इतने लोगोंमें सर-कारी भेदियोंका घुस जाना आसान बात है, इसलिए सब सैल तोड़कर पांच-पांच सदस्योंकी शाखाएं बनाना बचावके लिए अधिक अच्छा तरीका है। केवल शाखाका नेता ही बाकी चारों सदस्योंके असली नाम और पते जान सकता है, और नेताकी मारफत ही शाखा; पार्टीके ऊपर वाले अधिकारियों से सम्पर्क में आ सकती है। अगर नेता पकड़ा जाए तो अधिकसे-अधिक चार और सदस्यों की टोह पुलिसको मिल सकती है, पार्टीके पूरे संगठनको आंच नहीं आती।

इसलिए हमारे सैलके सब सदस्योंको पांच-पांचकी शाखाओंमें बाँटा जा रहा था। सेलका काम भी बराबर चल रहा था, किन्तु वह किसी समय भी बन्द हो सकता था। एक शाखाका दूसरी शाखासे कोई सम्बन्ध न हो और एक शाखा सदस्योंको दूसरी शाखाके लोग न पहिचान पाएँ, इस बातकी पूरी चेष्टा हो रही थी। किन्तु सैलके सारे सदस्य पड़ोसी

ठहरे, एक ही मोहल्लेमें रहते थे। इसलिए प्रायः सबको मालूम हो गया कि किस के घर कौन सी शाखा की सभा हो रही है। और गोयरिंगने* जब पार्टीपर भरपूर वार किया तो कुछ ही दिनोंमें समस्त जर्मनीमें फैली हुई पार्टी छिन्न-भिन्न होकर बेकार बन गई। हमको अपने नेताओं की बुद्धि और चातुर्यपर विश्वास था और स्वयं भी षड्यन्त्र सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ी थीं। किन्तु अन्ध विश्वासका परदा जो आँखों पर पड़ा था, सो हम देख ही नहीं पाए कि हम कितनी भारी भूल कर रहे थे। पार्टीके संगठन को इस प्रकार बिखेर देनेका यही परिणाम हो सकता था कि पार्टी किसी बड़े पैमानेपर हिटलरसे संघर्ष न कर सके और छोटी-छोटी टोलियाँ इधर उधर कुछ तोड़-फोड़ मचाकर रह जाएँ। इस प्रकार हिटलर की विजय अवश्यम्भावी बन गई।

लेकिन पार्टीके साधारण सदस्योंको इन तैयारियोंका कुछ पता नहीं था। वे पार्टीसे आदेश पाकर इक्के-दुक्के नाजियोंपर हमला करने लगे। उन दिनों बर्लिनमें नित्यप्रति दो-चार आदमी मारे जाते थे। युद्धका असली मैदान था मजदूरों की बस्तियाँ। वहींपर नाजियोंके अड्डे थे, और हमारे भी। भूलसे यदि एक दूसरेके अड्डेमें कोई चला जाता, तो बच निकलना कठिन था। बार-बार नाजी लोग हमारे अड्डोंपर धावा बोलते रहते थे। नाजी स्वयंसेवक मोटरमें बैठे हमारे अड्डेपर गोली चलाते हुए सर्राटेसे निकल जाते। हमारे पास उनके जितनी गाड़ियाँ नहीं थीं, इसलिए हमलोग दोस्तोंकी गाड़ी माँगकर या चुराकर काम

---

* हिटलरकी सरकारका गृहमन्त्री जो हिटलरका उत्तराधिकारी भी माना जाता था।

चलाते थे। यह गाड़ियाँ चुरानेका काम करनेके लिए पार्टीका एक अलग दस्ता था। कई बार मेरी गाड़ीको ऐसे लोग ले जाते, जिनको मैंने कभी देखा तक नहीं था। दो-चार घंटेमें गाड़ी वापिस आ जाती। न तो मैंने कभी उनसे कोई सवाल पूछा, न उन्होंने ही कभी कुछ बतलाने की जरूरत समझी। मेरी कार छोटी-सी और खुली हुई थी। शायद ही उससे वैसा कुछ काम लिया जा सकता था। लेकिन हमारे सेलमें और किसीके पास तो वैसी गाड़ी भी नहीं थी, इसलिए उसीसे काम चलाया जाता था। यह कार मेरे मध्यवित्त जीवनकी एकमात्र निशानी बची थी और अब मजदूर क्रान्तिका बाहन बन चली थी। मैं अपना अधिकतर समय गाड़ीमें बैठकर इधरसे उधर संदेश ले जाने लानेमें बिताता था। या फिर पार्टीके परचे इत्यादि ढोता अथवा किसी जानी पहिचानी नाजी गाड़ीका पीछा करके खोज-खबर लगाता। एक बार तो मुझे एक छोटे-मोटे छापाखानेके समस्त कल पुरजे स्टेशनसे एक पंसारीकी दूकान तक पहुँचाने पड़े। परचे छापनेके लिए पार्टी वह प्रेस चाहती थी।

मेरी गाड़ी लेने जो लोग आते थे, उनमें कई बार बर्लिनके गुण्डे भी रहते थे। उनके आने की खबर मुझे पार्टी पहले ही पहुँचा देती थी। और एक ही आदमी दो बार कभी नहीं आया। कई बार जब कि उनका काम खतरनाक नहीं होता था, तो मुझे ही गाड़ी चलानेका काम भी मिल जाता। हम धीरे-धीरे गाड़ी चलाते हुए या तो नाजी अड्डों की देखरेख करते थे, या यह खबर मिलने पर कि हमारे किसी अड्डेपर नाजियोंका धावा होनेवाला है; हम उस अड्डेके चारों ओर पहरा देते थे। यह पहरा देनेका काम ज़रा टेढ़ा था। गाड़ीको एक जगह खड़ी

बुद्धि वैज्ञानिक था। कमरेमें सिगरेटोंका धुआँ भरा था। सब तरफ, चारपाइओं पर, फर्श पर, रसाई घरमें, आदमी बैठे थे अथवा लेटे और सोए थे। शराबके गिलास, हण्टर और लोहेके डण्डे बिखरे पड़े थे। जब गलीमें जाकर गश्त करनेका मेरा नम्बर आया, तो मैं अपने मित्रको साथ ले गया।

"यह सब डाकुओं जैसी तैयारी किस लिए है?" उसने पूछा।

मैंने उसे सब समझा दिया तो वह बोला, "वह सब मैं जानता हूँ। लेकिन तुम अपना जीवन इस प्रकार क्यों नष्ट कर रहे हो?"

"मैं क्रान्तिकी सहायता कर रहा हूँ।" मैंने उत्तर दिया।

"मुझे तो ऐसा कुछ नहीं लगता।" उसने शंका उठाई।

"क्यों?" मैंने पूछा।

"मालूम नहीं। वस्तुतः क्रान्ति क्या और कैसे होती है, मैं कुछ भी नहीं जानता।" वह चिन्तित-सा होकर कहने लगा, "लेकिन ऊपर तुम्हारे कमरेमें जो लोग पड़े हैं वे तो ऐसे लगते हैं जैसे किसी छिन्न-भिन्न सेनाके भगोड़े सैनिक हों।"

उसने ठीक कहा था। हम समझ बैठे थे कि हमलोग क्रान्तिके अग्रदूत हैं, जब कि वास्तवमें हम एक टूटते हुए मजदूर-आन्दोलनके तितर बितर टुकड़े थे। दो-तीन सप्ताह बाद फान पेपन* ने अपने हथकण्डे दिखाए और सेनाके एक अफसर तथा आठ सिपाहियोंने प्रश्याकी सोशलिस्ट सरकारको पदच्युत कर डाला। अस्सी लाख सदस्योंके रहते हुए

* हिटलरके तुरन्त पूर्व जर्मनीका प्रधान मन्त्री जो नाजीवादके साथ सहानुभूति रखता था।

भी सोशलिस्ट पार्टीने कुछ नहीं किया। सोशलिस्ट पार्टी द्वारा संचालित ट्रेड यूनियन एक हड़ताल भी नहीं कर सकी। केवल हम कम्युनिस्टोंने ही हड़तालकी मांग उपस्थित की। किन्तु हमारी अपील किसीने नहीं सुनी। हम सोशलिस्ट पार्टीको अपना प्रथम शत्रु कहते आये थे और प्रश्याकी गणतन्त्र सरकारको हरानेमें हमने नाजियोंका साथ दिया था। खोटे सिक्केकी तरह हमारे नारोंका जनताके लिए कोई मूल्य ही नहीं रह गया था। इसलिए हिटलरसे मोरचा बाँधनेके पहिले ही हम हार गए। २० जुलाई १६३२ को यूरोपकी सबसे बड़ी कम्यूनिस्ट पार्टी झूठी चिल्ल-पों मचा कर अपने खोखलेपनको छुपानेकी कोशिश कर रही थी।

हड़ताल सर्वथा असफल रही, किन्तु अगले दिन पार्टीके अखबारोंमें छापा गया कि हड़तालमें हमको खूब सफलता मिली है। कहा गया कि सोशलिस्ट पार्टी हाथ-पर-हाथ धरे बैठी रही और हमारी पार्टीने रणभेरी बजा कर सोशलिस्टोंका असली चेहरा जनताको दिखा दिया है। जैसे लड़ाई नाजी पार्टीसे नहीं, सोशलिस्ट पार्टीसे रही हो!

दो तीन महीने पश्चात् तो सब कुछ स्वाहा हो गया। सालों तक हम जिस घड़ीके लिए तैयारी कर रहे थे और षड्यन्त्रकी शिक्षा-दीक्षा ले रहे थे, वह घड़ी आने पर हम कुछ भी नहीं कर पाए। पार्टीका कुम्भकरण मिट्टीकी बनी मूर्तिकी तरह ढहकर धराशायी हो गया। थेलमैन इत्यादि पार्टीके नेता अपनी समझमें बहुत अच्छी तरह छुपकर बैठे थे, लेकिन चन्द दिनोंमें ही उनको पकड़ लिया गया। सेन्ट्रल कमिटी जर्मनी छोड़ कर भाग खड़ी हुई। और जर्मनी पर वह काली रात फैल गई जो आज, सत्रह साल बाद (कोयस्लर १६४६ की बात कहते हैं

जब कि यह आप बीती उन्होंने लिखी थी) भी नहीं बीत पाई है।

हिटलर राज्य सिंहासन पर जा बैठा, थेलमैन जेलमें पहुँच गए, और पार्टीके हजारों सदस्य मारे गए, हजारों बन्दी शिविरोंमें पहुँच गए—तब जाकर कामिन्टर्नकी आँखें खुलीं। पार्टीकी अदालतें और रूसकी खुफिया पुलिस खोज-बीन करने बैठी कि यह सब हुआ कैसे? और उन्होंने एक स्वरसे फैसला कर डाला कि पार्टीके भीतर फासिस्ट दलाल घुस गए, जिन्होंने सोशलिस्ट पार्टीको अपना सबसे बड़ा शत्रु न मानकर कामिन्टर्नके विरुद्ध काम किया और पार्टीका दीवाला निकाल दिया। फिर भी पार्टीने हार नहीं मानी है। पार्टी दोबारा आगे बढ़नेकी तैयारी करनेके लिए पीछे हट गई है।

× × ×

साधारणतया हम अपनी आप-बीतीको रंगीन बनाकर सुनाया करते हैं। किन्तु यदि किसीने कोई विश्वास बदला हो अथवा मित्रसे धोखा खाया हो, तो कुछ उल्टा हो जाता है। अनुभवकी कडुवाहट उन पुरानी बातोंको और भी कडुवा बना डालती है। मैंने अपनी कहानी कहते समय कोशिश तो यही की है कि उन दिनोंकी अपनी भावनाको ज्यों का त्यों दिखा दूं। किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि मैं सफल नहीं हो पाया। क्रोध, लाज और व्यंग बार-बार मेरी बातोंमें घुल मिल गये हैं। उस समय की दृढ़ निष्ठा आज पागलपन लगती है, उस दिनका आत्म-विश्वास आज एक अन्धी कट्टरता बन कर सामने आता है। स्मृति के रंगमंच पर मानों किसीने कांटे बिछा डाले हों। उस समयमें जिसने

भी कम्युनिज्म द्वारा दिखाए गए रंगीन स्वप्न देखे थे और जिसकी भी नैतिक-भावनाओं तथा बुद्धिको कम्युनिज्म ने कुण्ठित कर डाला था, वह या तो आज किसी दूसरी कट्टरताका शिकार हो चुका है अथवा जीवन भर एक पश्चात्तापका बोझ ढोता रहेगा। वह मानों अपने उन अनेक मित्रोंकी कब्रगाह है, जिनको कि बुरी मौत मरना पड़ा था। आज हाथमें कफनके सिवाय कोई झण्डा ही नहीं रह गया। इसीलिए शायद, आज भी जो लोग उस कट्टरताके शिकार हैं, वे आँखें खोलना नहीं चाहते।

१९३२ के ग्रीष्म कालमें आखिर मुझे सोवियत रूस जानेकी अनुमति मिल गई। वहाके "अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्तिकारी लेखक संघ" ने मुझे देशमें घूम-घूमकर एक पुस्तक लिखनेका अनुरोध किया था। शायद उनके निमन्त्रणने ही मेरे लिए रूसके दरवाजे खोले होंगे। मेरी पुस्तकका नाम भी पहले ही रख दिया गया था—"पूञ्जीवादी आँखोंसे देखा हुआ सोवियत् देश"। पुस्तकमें यह दिखाना था कि किस प्रकार मिस्टर कोयस्लर एक पूंजीवादी पत्रकार जो कि रूससे नफरत करता रहा था, रूसमें समाजवादी नव-निर्माणके चमत्कार देखकर अपनी धारणाएँ बदलता है और कम्युनिज्मको अपनाकर मिस्टरसे कामरेड बन जाता है।

हिटलरके सत्ता हथियानेसे छः मास पूर्व मैं जर्मनीसे रूस चला गया था। मेरे पास कामिन्टर्नके प्रचार प्रमुख कामरेड गोपनरके नाम एक परिचय-पत्र था। उस पत्रके बल पर कामिन्टर्नकी व्यवस्थापिका समितिने सोवियत् अधिकारियोंसे मेरी विशेष सिफारिश कर दी। सरकारसे अपील की गयी थी कि जर्मनीसे आए हुए क्रान्तिकारी मजदूर लेखकका स्वागत किया जाए और उसका काम पूरा करानेमें सब प्रकारकी सहायता दी जाए।

इस प्रकारका परिचय-पत्र रूसमें जादूका काम करता है। मुझे रूसमें बिना गाइड लिए घूमने-फिरनेकी सुविधा तुरन्त मिल गई। रेलका टिकट खरीदनेके लिए मुझे लाइनमें खड़ा होना नहीं पड़ा। डाकबंगलोंमें सोने की जगह मिल गई। और उन होटलोंमें खाना मिला, जहाँ कि केवल सरकारी कर्मचारी ही जा सकते हैं। जितना रुपया मुझे मिला था उसमें से जी खोलकर खर्च करनेके बाद भी रूससे लौटते समय मेरे पास कुछ बच गया। यह सब कैसे हुआ सो बतलाता हूँ।

किसी भी प्रमुख नगरमें जाते ही मैं स्थानीय लेखक संघके दफ्तरमें पहुँच कर अपना वह परिचय-पत्र दिखा देता था। संघका मन्त्री तुरन्त ही मेरे अभिनन्दनमें एक सभा बुला देता था। नगरके सब राजनीतिक और बुद्धिजीवी लोगोंसे मेरा परिचय कराया जाता था। एक आदमी मुझे घुमाने-फिराने और मेरी देख-रेख करनेके लिए नियुक्त हो जाता था। स्थानीय साहित्यिक पत्रिकाके सम्पादक और पुस्तक-प्रकाशनालयके डाइरेक्टर भी मेरा स्वागत करते थे। ज्यर्जिया[1] की एक पत्रिकाके सम्पादकने मुझसे कहा कि बहुत सालसे वे मेरी एक कहानी अपने पत्रमें छापनेकी बाट जोह रहे हैं। मैंने उनको जर्मनीमें छपी अपनी एक कहानी दे दी। उसी दिन उन्होंने मेरे पास होटलमें दो-तीन सौ रूबल[2] का

१. सोवियत् साम्राज्यका एक प्रान्त। स्टालिन इसी प्रान्तके टिफलिस शहरमें जन्मा था।

२. रूसका सिक्का। सरकारी दर पर हमारे सौ रुपए पचासी रूबलके बराबर होते हैं, किन्तु रूसके साथ व्यापारमें यह दर काम नहीं आती। व्यापारमें हम रूससे जिनिस लेकर जिनिस देते हैं। वास्तवमें एक रूबलकी कीमत आज-कल हमारे ढाई-तीन आनेसे अधिक नहीं। रूसमें चीजोंके दाम अत्यन्त ऊँचे हैं

चेंक पहुँचा दिया। ज्योर्जियाके प्रकाशनालयके डाइरेक्टरने कहा कि जो पुस्तक मैं लिखना चाहता था, उसका अनुवाद ज्योर्जियन-भाषामें छापनेकी अनुमति उन्हें दे दूं तो वे धन्य हो जाएँगे। मैंने उनकी बात मान कर एक कागज पर हस्ताक्षर कर दिए। तुरन्त ही मुझे तीन-चार हजार रूबलका एक और चेंक मिल गया। यह याद रहे कि उस समय साधारण रूसी मजदूरकी मासिक आय कुल १३० रूबल थी। मैंने अपनी एक ही कहानीको लेनिन ग्राण्डसे चल कर ताशकन्द तक दस बार विविध पत्रिकाओंको बेच डाला। और जो पुस्तक लिखनेका मेरा इरादा था, उसके अनुवादके अधिकार भी मैंने रूसी, जर्मन, यूक्रेनियन[१], ज्योर्जियन और आर्मीनियन[२] भाषाओंमें बेच डाले। इस प्रकार मुझे जो रुपया मिला वह पाकर मैं एक छोटा-मोटा रईस बन गया। यह सब रुपया मुझ तक पहुँचानेमें सोवियत् सरकारका हाथ था, यह जानते हुए भी मुझे लिखनेमें कोई हिचक नहीं हुई कि सोवियत्-राष्ट्र लेखकोंके लिए स्वर्ग है और संसारमें अन्यत्र कहीं भी लेखकको न इतना रुपया मिलता है न इतनी मान-प्रतिष्ठा। आदमी दुर्बल होता है। मुझे एकबार भी यह बात नहीं खटकी कि मुझे जो रुपया पेशगी दिया जा रहा था, उसका कारण यह नहीं था कि सोवियत सरकार मुझे अच्छा लेखक समझती थी। इस सब आवभगतके पीछे उनका मनोभाव दूसरा था।

उस समय तक मेरी एक भी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई थी। जिन लोगोंने मेरी कहानी और पुस्तक पढ़े बिना ही मुझे इतने रुपये दे डाले,

---

१. रूसके एक और प्रान्त यूक्रेनकी भाषा।

२. रूसके प्रान्त आर्मीनियाकी भाषा।

उन्होंने भी निश्चय ही मेरा नाम पहले कभी नहीं सुना था। वे तो बिचारे सरकारी कर्मचारी थे जो सरकारी हुक्मकी तामील कर रहे थे। जिस देशमें प्रकाशन पर पूर्णतया सरकारका अधिकार हो, वहाँ स्वभावतः ही सम्पादक, प्रकाशक और विवेचक इत्यादि सरकारी कर्मचारी बन जाते हैं। वे सरकारका हुक्म पाते ही किसी भी लेखकको आसमान पर चढ़ा दें अथवा रास्तेकी रेत बना डालें। वह हुक्म पाकर प्रकाशक आपकी पुस्तककी सहस्रों प्रतियां छाप डालता है। अथवा आपकी समस्त पुरानी रचनाओंको कूड़ेके ढेरमें फिकवा देता है। विवेचक लोग भी उसी हुक्मके अनुसार आपकी तारीफके पुल बांधने लगते हैं अथवा घोर निन्दा कर डालते हैं। आपको टाल्स्टाय[1] का नया अवतार बताना अथवा नालीका घृणित कीड़ा कह देना, उनके लिए एक-सी बात है। अधिकतर तो कालान्तरसे लेखक अपने दोनों रूप देखनेका अवसर पा जाता है।

किन्तु बाहरसे आए लेखकको भला यह सब क्यों मालूम हो? उसके मनमें कुछ खटका उठे भी तो अपना गुण-गान सुनकर सब भूल जाता है। सभा-सोसाइटीमें और खान-पानके अवसरों पर वह जिनसे भी मिलता है, वे सभी मानों उसकी समस्त पुस्तकोंको बार-बार पढ़ चुके होते हैं। कोई ही लेखक यह समझ सकेगा कि उन सब

---

१. रूसके एक महान लेखक, विचारक और अहिंसावादी जिनका महात्मा गांधी पर भी प्रभाव पड़ा था। स्टालिनके रूसमें उनकी पुस्तकें पढ़नेकी इजाजत नहीं है, किन्तु उनके नामको कम्युनिज्म फैलानेका साधन अवश्य बनाया जाता है।

लोगोंको इन अवसरों पर अच्छी तरह लिखा-पढ़ा कर भेजा जाता है। रूसका केन्द्रीय प्रकाशनालय उससे कन्ट्राक्ट पर सही कराते समय उसको डेढ़ लाख प्रतियोंकी बिक्री पर कमीशन पेशगी दे डालता है। यदि लेखक इमान्दार हो तो सकुचा कर कहेगा कि यूरोपके बड़े-बड़े प्रकाशकोंने जिस बिक्रीके हिसाबसे उसको पेशगी दिया है, उससे तो यह रूसी पेशगी पन्द्रह गुनी ज्यादा है। प्रकाशनालयका डाइरेक्टर मुस्कराकर कहेगा "साहब, पूँजीवादी प्रकाशकोंकी बात छोड़िये। रूसमें तो सब प्रकाशनों पर जनताका अधिकार है और रूसका साधारण नागरिक अमरीकाके नागरिकसे २१३. प्रतिशत अधिक पुस्तकें खरीदता है। दूसरी पंच वर्षीय योजना पूरी होने पर तो यह मात्रा २६५ प्रतिशत हो जाएगी। इसी कारण रूसके लेखक पूँजीवादी देशोंकी तरह तंग तारीक कोठरियोंमें नहीं सड़ते। रूसका लेखक दो कमरेके फ्लैटमें रहता है जहाँ उसका अपना पाखाना घर भी होता है। इसके सिवाय उसको चढ़नेके लिए मिलती है मोटर गाड़ी और गर्मीकी छुट्टियाँ बितानेके लिए सुन्दर स्थानमें एक बंगला।"

शायद अपने रहन-सहनकी ऐसी निन्दा सुनकर बाहरसे आया हुआ लेखक कुछ बुरा मान जाए। किन्तु डाइरेक्टर तुरन्त ही समझा देगा कि उसे पूँजीवादी आत्मसम्मानकी भावनाको त्याग देना चाहिए। लेखक कन्ट्राक्ट पर सही कर देगा और चार छः दिन बाद अपने देशमें लौटकर कहेगा कि लेखकका मान जैसा रूसमें होता है, वैसा और कहीं नहीं इत्यादि-इत्यादि।

वहाँ जो रुपया मिलता है, उसको लेखक रूसके बाहर नहीं ला

सकता। किन्तु वह कुछ चीज वस्तु खरीद कर अपने साथ ला सकता है और बाकी रुपया उसके नामसे रूसके सरकारी बैंकमें जमा हो जाता है। उस जमापूँजीको याद करके वह बार-बार खुश हो सकता है, चाहे फिर उसे रूस जानेका अवसर शायद ही मिले। दो चार विशेष लेखकोंको तो अपनी उस जमापूंजीके एक अंशको अपने देशके सिक्केमें बदलवा कर घर पर लानेका अधिकार भी मिल जाता है मैं स्वयं दो ऐसे जर्मन लेखकोंको जानता हूं जिनकी कोई भी पुस्तक कभी भी रूसमें नहीं छपी, किन्तु जो कमीशनके रुपये कई साल तक रूससे पाते रहे। वे दोनों गणतन्त्रकी घोर निन्दा करते रहते थे, किन्तु रूसके विरुद्ध कभी भी उन्होंने एक शब्द नहीं लिखा। मेरा कहनेका अभिप्राय यह नहीं है कि वे घूस खाकर यह काम करते थे। वे तो यही समझते थे कि उनको लेखक होनेके नाते ही सब मिलता है। उनको विश्वास हो गया था कि पूँजीवादी देशोंमें किताब यदि बिके तो प्रकाशक इस बातकी परवाह नहीं करता कि पुस्तकमें क्या लिखा है, जब कि सोवियत् प्रकाशक ऐसी धृष्टता नहीं कर सकते, क्योंकि सोवियत् जनता अपने सोनेके देशपर कोई आक्षेप भी बर्दाश्त करने लिए तैयार नहीं।

सोवियत् रूस वास्तवमें लेखकोंके लिए स्वर्ग है—किन्तु उस स्वर्गमें फलोंसे लदे हुए वृक्ष हैं, उनपर नंगी तलवार ताने हुए पर्वताकार दैत्योंका पहरा है। वे किस दिन लेखकका सिर काट डालें यह कोई ठीक से नहीं कह सकता। किन्तु सिर कटने का भय हमेशा रहता है।

× × ×

मैं सावियत् रूसमें एक साल तक रहा। आधा समय तो मैंने घूम-

फिर कर बिता दिया। उसके बाद खारकोव[1] और मास्कोमें बैठकर मैंने अपनी पुस्तक लिख डाली। उस पुस्तकका जर्मन संस्करण तो नाम बदलकर खारकोवमें प्रकाशित हो गया। किन्तु जंहाँतक मैं जानता हूं, रूसी, ज्योर्जियन और आर्मीनियन इत्यादिमें उसके अनुवाद कभी नहीं छपे।

अपनी यात्राके दिनोंमें पहले तो मैं बोल्गा[2] के तट पर बसे उद्योग प्रधान नगरोंमें गया। फिर यूक्रेन होता हुआ दक्षिणमें ट्राँसकाकेशिया, ज्योर्जिया, आर्मीनिया और एजर्बैजान पार करके बाकू जा पहुँचा। उसके परे मैं मध्य एशिया देखता हुआ तुर्कमानिस्तान और उजबेगिस्तान में अफगानिस्तानकी सीमा तक गया। फिर ताशकन्द होता हुआ कज़-कस्तानकी सैर करके मास्को लौट गया। मैंने जो कुछ अपनी आँखोंसे देखा उसका मुझपर गहरा प्रभाव पड़ा। पार्टीसे सीखी तोतारटन्तने उस समय तो अवश्य उस प्रभावको शब्दाडम्बरसे ढककर दबा दिया, किन्तु कुछ दिन बाद ही वह अपना रंग लाया।

मैं रूसकी भाषा बहुत अच्छी तरह बोल लेता हूं। किन्तु सारी यात्रामें सिवाय सरकारी कर्मचारियोंके किसीसे बात ही नहीं हो पाई। रूसके साधारण लोग जानते हैं कि किसी विदेशीसे बात करते हुए देखा जाना उतना ही भयानक है जितना कि किसी कोढ़ीको छू लेना। रेलके डिब्बे अथवा होटल इत्यादिमें दो चार लोगोंसे बात हुई, तो ऐसा

---

१. यूक्रेनकी एक शिल्पप्रधान नगरी।

२. रूसकी सबसे बड़ी नदी।

लगा जैसे वे मुझे प्रवदा[1] पढ़कर सुना रहे हों। वही नपी तुली एकसी बातें। उस समय मैंने यही सोचा कि सब विशेष सावधानी और क्रान्तिकारी अनुशासनका फल है। यूक्रेनमें मैंने १९३२-३३ में पड़े भयानक अकालके पद-चिन्ह देखे। चीथड़ोंमें लिपटे परिवारोंके दलपर दल भीख माँगते फिर रहे थे। रेलवे स्टेशनपर भिखारिन स्त्रियाँ अपने बच्चोंको डिब्बेकी खिड़कियों तक उठाकर दिखाती थीं। उन बच्चोंके अस्थिशेष पंजर, बड़े-बड़े सिरोंमें टिमटिमाती आँखें और फूले हुए पेट देखकर ऐसा लगता था, मानो गर्भसे अधूरे बच्चोंको निकाल कर नमूनेके तौरपर शराबकी बोतलोंमें सुरक्षित किया गया हो। बूढ़े भी देखे जिनके पाला मारे हुए पाँवकी अँगुलियोंके ठँठ उनके फटे हुए जूतोंमेंसे बाहर निकल आए थे। मुझे समझाया गया कि ये लोग वे कुलक (समृद्ध किसान) थे, जिन्होंने खेतीको सामूहिक बनानेका विरोध किया था। मैंने बात मान ली। मनमें सोचा भी कि जरूर ये लोग जनताके घातक होंगे, इसीलिए काम करनेके बजाय भीख माँगना पसन्द करते हैं। एक दिन खारकोवके रेजीना होटलमें मेरे कमरेकी नौकरानी काम करते-करते बेहोश हो गई। भूखसे परेशान थी। होटलके मैनेजरने मुझे समझा दिया कि वह नई-नई देहातसे आई थी और किसी भूलके कारण उसका राशन कार्ड नहीं बन सका। फिर मैंने बात मान ली।

किन्तु कहाँतक मनको समझाता। सब ओर घोर दरिद्रताका राज्य था। गली कूचों, ट्राम और रेलमें आते जाते लोग मानो चलते फिरते मुरदे हों। वासस्थानकी कमीके कारण सारे शहर एक गन्दी

---

1. रूसी सरकार का प्रमुख दैनिक पत्र।

गली जैसे बन कर रह गए थे। एक-एक कमरेमें बीचमें रस्सियाँ बाँध कर और उनपर परदे लटका कर कई-कई परिवार रहते थे। कोपरेटिव दूकानोंमें जो राशन मिलता था, वह खाकर शायद ही किसीके पेटकी आग बुझती हो। खुले बाजारमें खरीदनेवालोंको एक सेर मक्खनके बदले एक महीनेकी तनखा देनी पड़ती थी। एक जूता खरीदनेमें तो दो महीनेकी तनखा निकल जाती थी। मुझे पढ़ाया गया कि "जीवनके नग्न सत्यका अपने आपमें कोई अर्थ नहीं होता। एक सत्यकी दूसरे सत्योंसे तुलना करनी चाहिए। माना कि लोगोंका रहन-सहन काफी खराब है, किन्तु जारशाहीमें तो और भी बदतर था। पूंजीवादी देशोंमें माना कि मजदूरों की दशा कुछ अच्छी है। किन्तु आज की बात ही सब कुछ नहीं। रूसके मजदूरोंकी हालत दिन पर दिन अच्छी होती जा रही है, जब कि पूंजीवादी देशोंमें मजदूरोंकी हालत उत्तरोत्तर बिगड़ रही है। दूसरी पंचवर्षीय योजना पूर्ण होने तक दोनों एक स्तर पर पहुँच जाएंगे। तब तक दोनोंकी तुलना करके रूसी मजदूरोंका उत्साह भंग करनेसे क्या फायदा ?"

हारकर मैंने अकालको अनिवार्य मान लिया। यह भी मैंने स्वीकर कर लिया कि रूस के बाहर जाने और विदेशी पुस्तकें तथा पत्र इत्यादि पढ़नेपर पाबन्दी भी रूसी मजदूरों के लिए हितकर है। पूंजीवादी देशोंके विषयमें जो मिथ्या प्रचार मैंने देखा, उसकी भी आवश्यकता मैंने समझ ली। एक भाषण देनेके उपरान्त मैं कुछ प्रश्नों पर चौंक उठा। मुझसे पूछा गया—

"आपने जब पूंजीवादी समाचारपत्र छोड़ा, तो क्या आपका राशन कार्ड जब्त कर लिया गया और क्या आपको धक्के देकर आपके मकानसे निकाल दिया गया ?"

"फ्रांसके शहरों और देहातोंमें भूखसे तड़प कर नित्यप्रति मर जाने वाले परिवारोंकी संख्या भला कितनी है ?

"सोशलिस्ट, फासिस्ट गद्दारों की मददसे पूंजीपति वर्ग सोवियत् रूस के विरुद्ध जिस युद्ध की तैयारी कर रहा है, उसको रूसके सहायक लोग कितने दिन रोकनेमें समर्थ हो सकेंगे ?"

प्रश्न मुझे अजीबसे लगे। किन्तु फिर मैंने मन समझा लिया। मन में कहा—"इन प्रश्नोंमें कुछ न कुछ सत्यका अंश तो है ही। फिर प्रचारके लिए कुछ अत्युक्ति भी आवश्यक हो जाती है। शत्रुओंसे घिरे सोवियत् देशके लिए शायद इस प्रकारका प्रचार भी आवश्यक हो, इसीलिए।"

इस प्रकार मैंने वहाँ की सारी बीभत्सताको "आवश्यक" शब्दमें लपेटकर गायब करनेका मन्त्र सीख लिया। झूठ बोलना और गाली देना आवश्यक था। जनताको भटक जानेसे बचानेके लिए उन्हें डराना-मारना आवश्यक था। विरोधी दलों और प्रतिपक्षी वर्गोंका उन्मूलन आवश्यक बन गया। आनेवाली पीढ़ीके सुखके लिये अपनी पीढ़ीके लोगोंका बलिदान भी आवश्यक दीख पड़ा। यह सब आज मुझे क्रूर आत्म-वञ्चना लगती है। किन्तु अन्धविश्वास की सीधी सड़कपर दौड़ने वालेके लिए यह सब कुछ सम्भव है। इतिहासमें बार-बार ऐसा हुआ है। मध्ययुगमें धर्मान्ध लोगोंने यही सब किया था। किन्तु जिस प्रकार संयत लोग एक नशेबाज़ की दुनिया नहीं समझ पाते, उसी प्रकार अन्धविश्वासी की यह समस्त कलाबाज़िया भी साधारण लोग नहीं समझ पाएंगे। जलमें थल और थलमें जल देखनेके लिए तो विश्वासका पूरा और आँखका अन्धा चाहिए।

मैं १९३३ की शरद्ऋतुमें रूससे लौटा। किन्तु इसके बाद भी साढ़े चार साल तक पार्टीका सदस्य बना रहा। मेरे विश्वासों पर भारी चोट पड़ी थी। किन्तु चोटको किसी प्रकार दबा छुपाकर स्वस्थ होनेका अभिनय करता रहा। बाहर की दो चार घटनाएं ही उस चोटको ऊपर ला सकीं।

सबसे महत्वकी घटना थी १९३४ में होनेवाली कामिटर्न की सातवीं कांग्रेस। पार्टी लाइन बदलकर ठीक उल्टी हो गई, किन्तु नेता लोग वही बने रहे। अब क्रान्तिकारी आन्दोलन और नारे, वर्ग-युद्ध और मजदूर, तानाशाही की बातें करना घोर अपराध था। उनके स्थान में "शान्ति और फासिस्टवादके विरुद्ध जनताका संयुक्त मोरचा" सजाया गया। सभी भले आदमियोंके लिए अब दरवाजे खुले थे, चाहे वे सोसलिस्ट हों, चाहे कैथोलिक, रूढ़िवादी अथवा राष्ट्रवादी। यह कहना कि कम्युनिस्टोंने कभी हिंसा और क्रान्ति की बातें कही थीं, अब गाली माने जाने लगा। कहा जाने लगा कि पार्टीके विरुद्ध प्रतिक्रियाशील और जंगबाज लोग ही ऐसे आरोप फैला सकते हैं। हमने अपने आपको बोल्शेविक अथवा कम्युनिस्ट कहना छोड़ दिया। हम सीधे-साधे, इमान्दार, शान्तिप्रेमी लोग बन गए, जो फासिस्टवादका विरोध करते हैं और गणतन्त्रमें विश्वास रखते हैं। १९३५ में बैस्टील दिवस[1] पर हजारों की भीड़के सम्मुख

---

१. १७८९ में हुई फ्रांसकी क्रान्तिकी स्मृतिमें यह दिन मनाया जाता है, बेस्टील पेरिसकी बड़ी जेल थी, जिसमें फ्रांसके बादशाह राजनीतिक बन्दियोंको रखते थे। क्रान्तिके दिन पेरिसकी जनताने धावा मारकर इस जेलको तोड़ डाला था।

प्रमुख कम्युनिस्ट नेता मार्सल काशाँ[1] ने सोसलिस्ट नेता लियों ब्लुम[2] को आलिंगनमें बाँध लिया। कुछ दिन पहले इन्हीं ब्लुम महाशयको हम फासिस्ट कुत्ता कहकर पुकारते थे। भीड़ने आँसू बहाए और फ्रांस तथा रूसके राष्ट्रगीत गाए। सबको हर्ष था कि आखिर मजदूर मिलकर एक हो गए। १९३६ के चुनावमें "संयुक्त मोरचे" को स्पेन तथा फ्राँसमें भारी सफलता भी मिली।

यह सब सोवियत् रूस की विदेश नीति बदल जानेके कारण हुआ था। रूस लीग आफ नेशन्ज[3] का सदस्य बना, और फ्राँस तथा चैको-स्लोवाकियाके साथ रूसने पैक्ट किए। आज हम जानते हैं "संयुक्त मोरचे" के पीछे रूसकी क्या कूटचाल छिपी थी और स्वाधीन संसारने कितना बड़ा धोखा खाया था। रूसकी नकाब उतरते भी हमने १९३९ में देख ली। किन्तु उस समय तो भावनाके प्रवाहमें सब बह गए। पार्टीके प्रति मिटता हुआ मेरा प्रेम फिर जवान हो उठा।

मैं जब रूसमें ही था तो हिटलर जर्मनी पर अधिकार पा चुका था। इसलिए लौट कर मैं पेरिसमें पड़े अपने शरणार्थी-बन्धुओंसे जा मिला। छोटे-छोटे घरोंमें हमारे "लाल मोहल्ले" के वे सब लोग भरे थे जो कि हिटलरकी पुलिससे बच कर भाग निकले थे। मैं पूरे पाँच साल तक

---

१. फ्राँसके प्रसिद्ध कम्युनिस्ट नेता अब बूढ़े होकर बेकारसे हैं।

२. फ्राँसके प्रसिद्ध समाजवादी नेता जिनकी कुछ दिन पूर्व मृत्यु हो गई।

३. प्रथम महायुद्धके बाद शान्ति-रक्षाके लिए बनाई गई अन्तर्राष्ट्रीय संस्था।

प्रायः भूखा मरता रहा। किन्तु मैंने राजनीतिक काममें भी अटूट परिश्रम किया। हमें प्रेरणा देनेके लिए पश्चिमी यूरोप और जर्मनीका पार्टी-प्रचार-प्रमुख बिली मून्जेन्बर्ग हमारे साथ था। वह मजदूर-परिवार में उत्पन्न एक मोटा, ठिंगना-सा आदमी था। किन्तु लोगोंको मोह कर उनसे काम लेनेकी क्षमता उसमें अपार थी। उसने १९३८ में पार्टी छोड़ दी। और १९४० में उसकी हत्या हो गई। हत्याका रहस्य कभी नहीं खुल सका। किन्तु ऐसी बहुत-सी हत्याओंके जो भी एकाध सूत्र मिलते हैं, उन सबका संकेत सदा मास्कोकी ओर ही होता है।

बिली फासिस्ट विरोधी अन्तर्जातीय आन्दोलनका पण्डा था। हिटलरने जर्मन रीखस्टाग[1] में आग लगानेका जो मुकदमा कम्युनिस्टों पर चलाया था, उसके उत्तरमें विलीने पेरिसमें एक मुकदमा यह साबित करनेके लिए चलाया कि आग वास्तवमें स्वयं नाजियोंने लगाई थी। उसने अनेक पुस्तक, पुस्तिकाएँ और समाचार-पत्र निकालनेके लिए रुपया दिया, हालांकि उसका नाम कहीं भी नहीं लिखा जाता था। एक जादूगरकी तरह वह कमिटियां, कांग्रेस और आन्दोलन खड़े करता जाता था। फासिस्टोंके सताए हुए लोगोंकी सहायता समिति, सावधानी और गण तान्त्रिक अनुशासन समिति, अन्तर्जातीय नवयुवक कान्फ्रेंस इत्यादि। इन सब संस्थाओंके साथ इज्जतदार लोगोंके नाम जुड़े थे, जिनमें अंग्रेजी नवाबज़ादिया, अमरीकन संवाददाता और फ्रांसीसी शास्त्रज्ञ सभीका स्थान था। इनमेंसे अधिकतर लोगोंने मुन्जेन्बर्गका नाम कभी नहीं सुना

---

१. जर्मनीकी केन्द्रीय धारासभा।

था, किन्तु ये सब मानते थे कि कमिन्टर्न कोई असली संस्था नहीं, बल्कि गोयबल्ज[1] का खड़ा किया हुआ हव्वा है।

मैंने बहुत दिन तक बिलीके साथ काम किया। १६३८ में जब उसने पार्टी छोड़ दी तो हम दोनोंने एक गैर-कम्यूनिस्ट हिटलर-विरोधी पत्र भी निकाला। इस बीचमें मैंने छोटे-मोटे अनेक काम किए। पार्टीने फासिस्टवादके अध्ययनके लिए एक खोज परिषद बनाई थी, जिसका काम जनतासे चन्दा इकट्ठा करके चलाया जाता था। वहाँ हमलोगोंको बिना वेतनके दस-बारह घण्टे काम करना पड़ता था। किन्तु सौभाग्यसे वहां खाने-पीनेका इन्तजाम था और हमको मटरका सूप पीनेके लिए मिल जाता था। कई सप्ताह तक मुझे और कोई खाना नसीब नहीं हो सका। रहनेके लिए शहरके बाहर एक खलियान था, जहां और भी कई लोग रात बिताते थे। जगह दूर थी। कई मील पैदल चल कर जाना पड़ता था, किन्तु वहां सोनेके लिए किराया नहीं देना पड़ता था।

काम करनेका भी एक नशा होता है। और जब मन यह मानने लगता है कि हम चुपचाप एक बहुत बड़े काममें लगे हैं, तो वह नशा और भी तेज हो जाता है। हम स्टालिन और कमिन्टर्नकी काली करतूतोंको भूलकर नाजीवाद और युद्धके विरुद्ध अपनी समस्त शक्ति संजो

---

१. हिटलरका प्रचार-प्रमुख जिसका नाम प्रसिद्ध हो चुका है। उसका कथन था कि यदि काफी बड़ा झूठ बोला जाए तो लोग उसका कुछ न कुछ अंश तो मान ही लेंगे। आज-कल स्टालिनका प्रचार-विभाग इसी सिद्धान्त पर काम करता हुआ मित्र-राष्ट्रोंके विरुद्ध कीटाणु-युद्ध इत्यादिके मिथ्या आरोप करता है।

बैठे। उस समय हमारी समझमें नहीं आया कि हम एक झूठ-मूठकी लड़ाई लड़ रहे हैं।

एक और बात थी जिसके कारण रूस देख आनेके पश्चात् भी मैं पार्टीमें काम करता रहा। मेरे बहुतसे और मित्र भी जो अब पार्टी छोड़ चुके हैं अथवा मारे जा चुके हैं, कहते थे,—"हमारा आन्दोलन बुराइयोंसे खाली तो नहीं, किन्तु पार्टीके भीतर रहकर ही हम उन बुराइयोंको मिटा सकते हैं, पार्टीके बाहर जाकर नहीं। कोई क्लब इत्यादि हो और उसकी नीति हमें पसन्द नहीं आए, तो हम छोड़ सकते हैं। किन्तु कम्युनिस्ट पार्टी तो एक अलहदा चीज़ है। पार्टी तो मजदूर-वर्गकी हरावल ठहरी, इतिहासकी अन्तरतम इच्छाको चरितार्थ करनेका एकमात्र साधन। एकबार हम पार्टीसे निकले कि इतिहासके प्रवाहसे भी निकल गए। फिर हम कुछ भी क्यों न करें, इतिहासकी गति पर हमारा कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। तो एक ही मार्ग बच रहता है। पार्टीके भीतर रहें, मुंह बन्द रक्खें, कड़वे घूंट चुपचाप गलेके नीचे उतार लें, और उस दिनकी बाट जोहते रहें जब कि शत्रु-पक्षकी पराजयके पश्चात् रूस और कमिन्टर्न तानाशाही छोड़ कर गणतन्त्रकी राह पकड़ेंगे। उस दिन नेताओंका लेखा-जोखा लिया जा सकेगा। नेताओंकी गलतियोंके कारण कहाँ पराजय हुई, कहाँ निष्फल बलिदान देने पड़े, किस प्रकार पार्टीमें गाली-गलौज और कलह बढ़ी और किस प्रकार हमारी पार्टीके अनन्यतम साथी काम आए—इन सब बातोंका उत्तर उस दिन नेतृत्वको देना होगा। किन्तु उस दिन तक तो इसी प्रकार निबाह देना ठीक है, आजकी कही बातसे कल मुकर जाना उचित है, आज जो किया उस पर

कल पश्चात्ताप दिखाना उचित है, थूक कर चाटना भी उचित है। क्रान्तिकी सेनाके सिपाहीको अपना काम करनेके लिए यह सब सहना होता है।"

× × ×

अठारह जुलाई सन् १९३६ के दिन स्पेनमें जनरल फ्रैंकोने बलवा कर दिया। मैंने विलीके पास जाकर स्पेनके प्रजातन्त्रकी सहायताके लिए जानेकी इजाजत मांगी। उस समय तक कम्युनिस्टोंका अन्तर्जातीय ब्रिगेड[1] नहीं बना था, जो पीछे चल कर स्पेनमें भेजा गया। मैं अपना हंगरीमें बना पासपोर्ट भी अपने साथ लेता गया। विली चुपचाप मेरी तरफ देखता रहा। वह धुरन्धर प्रचारक था और उसे यह पसन्द नहीं आया कि मेरे जैसा लेखक जाकर फौजमें शामिल हो और खाइयां खोदनेमें अपना समय नष्ट करे। मेरे पास हंगरीके एक समाचार-पत्रका प्रेस-कार्ड भी था, जिसमें मुझे उस पत्रका पेरिस स्थित प्रतिनिधि कहा गया था। पेरिसमें पड़े अनेक शरणार्थियोंके पास किसी-न-किसी पत्रका प्रेस-कार्ड रहता था। हमलोग उन पत्रोंके लिए कभी एक शब्द भी नहीं लिखते थे, किन्तु कार्डके बल पर कभी-कभी थियेटर, सिनेमा हमें मुफ्तमें देखनेको मिल जाते थे। मेरा प्रेस-कार्ड देख कर विलीकी आँखें चमक उठीं। बोला,—"तुम इस हंगेरियन समाचार-पत्रके प्रतिनिधि बन कर फ्रैंकोंके शिविरमें चले जाओ। हंगरी भी प्रायः फासिस्ट देश है। फ्रैंकोके अनुयायी अवश्य तुम्हारा स्वागत करेंगे।"

---

१ फ्रैंकोंसे लड़नेके लिए देश-देशसे आए कम्युनिस्टों तथा सहयात्रियोंकी फौज।

बात मुझे भी पसन्द आई। किन्तु एक-दो अड़चनें थीं। प्रथमतः मैं जानता था कि वह पत्र मेरी बात नहीं मानेगा। मैंने तय किया कि उनको कुछ बतलानेकी जरूरत ही क्या है। एक गृहयुद्धसे उत्पन्न खल-बलीमें भला कौन मेरी जांच-पड़ताल करने बैठेगा। पर एक दूसरी मुसी-बत थी। स्पेनमें आए दूसरे पत्रकारोंको विश्वास नहीं होगा कि हंगरीका एक छोटा-सा पत्र अपना विशेष प्रतिनिधि स्पेन भेज सकता है और उन्हें दालमें काला दिखाई देगा। इस कठिनाईका भी हल मिल गया। लन्दनके न्यूज क्रानीकल* में मेरे कुछ मित्र थे। 'न्यूज क्रानीकल' कट्टर फ्रैंको-विरोधी पत्र था और उसके प्रतिनिधिको फ्रैंकोके शिविरमें जानेकी इजाजत मिलना असम्भव था। इसलिए न्यूज क्रानीकलका सम्पादक तुरन्त मान गया कि मैं ही उनका प्रतिनिधित्व भी करूं।

मैं लिज़बन[1] और सैवील[2] होता हुआ स्पेन पहुंच गया। किन्तु वहाँ पहुंचनेके दूसरे दिन ही मेरा भेद खुल गया। फिर भी वहाँ बद-इन्तजामी इतनी थी कि मैं पकड़ा नहीं गया और बचकर जिब्राल्टर[3]के रास्ते भाग निकला। किन्तु स्पेनमें बिताए उस थोड़ेसे समयमें ही मैंने देखा कि फ्रैंकोंकी सेनामें जर्मन वायुयान और जर्मन हवाबाज काम कर रहे हैं। ये सब समाचार मैंने न्यूज क्रानीकलको लिख भेजे और एक छोटी पुस्तिका भी छपा डाली। फ्रैंकों सरकारकी आँखोंमें मैं खटकने लगा और छः

---

* एक उदारवादी दैनिक समाचार-पत्र।

१. पुर्तगालकी राजधानी एवं प्रमुख बन्दर।

२. स्पेनका एक नगर जिसकी राजधानी सैवील नगर है।

३. स्पेनके दक्षिण पश्चिमी कोनेपर एक अंग्रेजी उपनिवेश।

महीने बाद जब प्रजातन्त्रकी सेनाओंके साथ प्रतिनिधिके रूपमें सफर करता मैं फ्र कोंके सिपाहियों द्वारा पकड़ा गया, तो मुझे विश्वास हो गया कि मुझे तुरन्त गोली मार दी जाएगी।

परन्तु मैंने फ्र कोंके कारागारमें चार महीने बिता डाले। मन कहता रहता था कि किसी दिन भी मुझे गोलीसे उड़ा दिया जा सकता है। किन्तु ब्रिटिश सरकार मुझे छुड़ानेका प्रयत्न कर रही थी। और जून १९३७ में जब मैं जेलसे निकला तो मैं बदल चुका था। मेरे बाल सफेद नहीं हुए थे, मेरी शकल सूरतमें भी कोई फर्क नहीं आया था और नहीं मेरे ऊपर धार्मिक नशा सवार हुआ था। किन्तु सत्यका एक नया साक्षात्कार मैंने अवश्य कर लिया था और मेरे दृष्टिकोण तथा मौलिक बिश्वास एकबारगी बदल चुके थे। इस परिवर्तनके दो कारण तो थे ही—भय और करुणा। मैं मौतसे नहीं डरता था। किन्तु यन्त्रणा अपमान और कुत्तेकी मौत मारनेके तरीके अवश्य भय उपजाते थे। और स्पेनके किसान जिन्हें रातमें पकड़-पकड़ कर गोली मारी जाती थी जब "माँ, माँ" चिल्लाकर क्रन्दन करते थे, तो करुणासे मेरा हृदय भर आता था। इसके सिवाय, मेरे बदलनेका सबसे बड़ा कारण था एक अनूठी अनुभूति जिसे रहस्यवादी ही समझ सकते हैं। बार-बार मेरे मन पर एक ऐसी गाढ़ शान्ति छा जाती थी, जो न तो मैंने कभी पहले अनुभव की थी और जो न कभी बादमें ही लौट कर आई। उस अनुभूतिको भाषामें वर्णन करनेके अनेक तरीके हैं, किन्तु सब फीके दिखाई देते हैं। सत्यतः तो वह अनुभूति अनिर्वचनीय है, भाषामें उसे उतारा नहीं जा सकता। किन्तु फिर भी उस अनुभूतिके फलस्वरूपमें जो भाषा

बोलने लगा वह मेरी पुरानी कम्युनिस्ट भाषासे मेल नहीं खाती थी। यह भी बहुत बड़ी बात थी।

× × ×

यदि यह कहानी काल्पनिक होती तो यहीं समाप्त हो जाती। नायक एक आध्यात्मिक परिवर्तनके फलस्वरूप अपने पुराने साथियोंसे बिदा माँगकर मुस्कराता हुआ अपने नए रास्तेपर चला जाता। किन्तु मुझे तो ऐसा नहीं लगा कि इन नए विश्वासोंके कारण मैं कम्युनिस्ट नहीं रहा। इसलिए जिब्राल्टर पहुँचते ही मैंने पार्टीको तारसे अपनी रिहाईकी खबर दे दी। उसमें मैंने यह भी कह दिया कि पार्टीकी नीति के प्रति मेरे सारे संशय मिट गए हैं।

मैंने इंगलैंड जाकर शान्तिसे तीन मास बिता डाले। स्पेनके सम्बन्धमें एक पुस्तक भी लिख डाली। फिर कुछ दिनके लिए मैं 'न्यूज क्रौनीकल' का प्रतिनिधि बनकर मध्य-पूर्वका दौरा कर आया। पार्टीसे अभीतक कोई तनातनी नहीं थी। दोबारा इंगलैण्ड लौटने पर ही झगड़ेका सूत्रपात हुआ। कोई बड़ी बात नहीं थी।

मैं वक्तव्य देता हुआ इंगलैंडका दौरा कर रहा था। कई स्थानों पर मुझसे स्पेनमें फ्रैंकोके विरुद्ध लड़नेवाले ट्राट्स्कीके दलके विषयमें पूछताछ की गई। पार्टी इस दलको फ्रैंकोका दलाल बतलाती थी। मैंने कहा कि वे लोग अवश्य एक ऐसी नीति पर चल रहे हैं, जो क्रान्तिके लिए हानिकारक है, किन्तु उन्हें गद्दार अथवा दलाल कहना ग़लत है। आश्चर्यकी बात थी कि मेरी इस बातपर इंगलैंडकी पार्टीने कोई ध्यान नहीं दिया। इंगलैंडकी पार्टी तो इस प्रकारकी उदारताके लिए सदा बदनाम भी रही है।

इसी समय मुझे पता चला कि रूसमें होनेवाले व्यापक शोधनमें मेरे बहनोई और दो अंतरंग मित्र पकड़ लिए गए हैं। बहनोई डाक्टर थे, जो रूसके एक सरकारी अस्पतालमें काम करते थे। वे जर्मन कम्यु-निस्ट पार्टीके सदस्य अवश्य थे, किन्तु राजनीतिसे सर्वथा उदासीन और एक बालककी नाई अबोध भी। उनपर दोष लगाया गया था कि वे अपने बीमारोंको सूज़ाकके इंजेक्शन देकर रूसमें यौन-व्याधियाँ फैलाते थे और उन्होंने जनतामें एक भ्रान्ति फैलाई थी कि यौन-व्याधियोंका कोई इलाज नहीं इत्यादि-इत्यादि। अन्तमें उनको एक विदेशी सरकारका गुप्तचर ठहरा कर जो गुम किया गया, तो आज बारह बरस बाद भी मालूम नहीं कि वे कहाँ गए, जिन्दा हैं या मर गए।

मेरे मित्र थे एलेक्स बाइस बर्ग और उसकी पत्नी ईवा। उनके विषयमें कुछ विस्तारसे कहना पड़ेगा। एलेक्स पदार्थ-विज्ञानका धुरन्धर विद्वान् था और यूक्रेनकी सरकारी खोज परिषदमें काम करता था। मैं उन दोनोंको बहुत दिनसे जानता था और खारकोवमें उन्हींके घर ठहरा भी था। १९३३ में जब मैं रूससे लौट रहा था, तो एलेक्स स्टेशनपर मुझे पहुंचाने आया था। बिदा लेते समय उसने कहा था "चाहे कुछ भी हो जाए, किन्तु तुम रूसका झण्डा ऊँचा रखना।"

१९३७ में उसको गिरफ्तार कर लिया गया। उस पर दोष लगाया गया था कि स्टालिन और कगानोबिच[1] को काकेशस[2] ले जाने

---

१. स्टालिनके मन्त्रीमण्डलका एक सदस्य।

२. ज्योर्जिया प्रान्तमें एक सुन्दर पहाड़ी स्थान, जहाँ रूसके उच्चाधिकारी आराम करने जाते हैं।

वाली गाड़ीको उड़ानेके लिए उसने बीस गुण्डोंको तैयार किया था। उसने अपना दोष कबूल करनेसे इन्कार कर दिया और तीन साल तक रूसके जेलखानोंमें सड़ता रहा। फिर रिबनट्राप[1] और मोलोटोव[2] के बीच हुए समझौतेके अनुगत एलेक्सको रूस वालोंने नाजी गेस्टापोके हाथोंमें सौंप दिया। उसके साथ-साथ प्राय: एक सौ और भी जर्मन आस्ट्रियन और हंगेरियन कम्युनिस्ट गेस्टापोके हाथोंमें दिए गए थे। वह गेस्टापोके हाथोंसे निकलकर वारसौ[3] की लड़ाईमें जर्मनोंसे लड़ा और अब एक पुस्तक लिखकर उसने अपनी आप बीती भी सुनाई है।

एलेक्सकी पत्नी ईवा मिट्टीके बर्तन बनानेकी विशेषज्ञ थी। वह एलेक्सकी गिरफ्तारीसे एक वर्ष पहले पकड़ी गयी थी। पहले तो उस पर इल्जाम लगाया गया कि उसकी देख-रेखमें जो चायके प्याले इत्यादि बनते थे, उनपर की गई मीनाकारीमें उसने चिन्ह स्वस्तिका भी मिला दिया। फिर कहा गया कि स्टालिनकी हत्याके लिए उसने दो पिस्तौल अपने तकिएके नीचे छुपाकर रक्खे थे। वह अठारह महीने तक मास्को की लुबियान्का जेलमें रही, जहाँ उसको रूसी पुलिस बुखारिन[4] पर

---

१. हिटलरके विदेश मन्त्री जिनकी कोशिशसे १९३९ में रूस और जर्मनीमें समझौता हो गया।

२. स्टालिनके पुराने साथी और बहुत दिनतक रूसके विदेश मन्त्री।

३. पोलैण्डकी राजधानी जिसके निवासियोंने १९४४ में जर्मन सेनाके विरुद्ध उठकर बड़ी विकट लड़ाई की थी।

४. लेनिनके एक प्रसिद्ध साथी जो बहुत दिनतक कमिन्टर्नके प्रधान रहे। १९३८ में उनको नाज़ी गुप्तचर बताकर स्टालिनने मरवा डाला।

चलाए हुए मिथ्या मुकदमेमें झूठा गवाह बनानेके लिए तैयार करना चाहते थे। उसने आत्महत्या करनेकी चेष्टा की, किन्तु सफल न हो सकी। इसी समय आष्ट्रियाके राजदूतकी जी तोड़ कोशिशोंके कारण वह मुक्त कर दी गई।

रूससे बहिष्कृत होकर १६३८ के बसन्तमें जब ईवा आई, तो मैं उससे मिला था। उसने रूसकी पुलिसके सम्बन्धमें जो कुछ मुझे बताया, उसीके आधारपर मैंने अपनी पुस्तक "उजालेमें अन्धेरा" का कुछ अंश लिखा था। मैंने एलेक्सको बचानेके लिए खूब परिश्रम किया। आइन्स्टीन[1] तो पहले ही अपील कर चुके थे। मैंने तीन बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंके हस्ताक्षर लेकर स्टालिनके नाम एक तार भिजवाया। हस्ताक्षर करनेवाले नोबल-पुरस्कार पानेवाले पैरिन, लेन्गेविन और जोलियत् कूयूरी थे। तार की एक नकल रूसके सरकारी वकील विशिंस्की[2] के नाम भी भेजी थी। तारमें लिखा गया था कि वाइसवर्गके विरुद्ध जो इलजाम हैं, वे खुलेआम कहे जाएं और उनपर अदालतमें मुकदमा चलाया जाए। लौन्गेविन और जोलियत्-कूयूरी दोनों सोवियत् भक्त थे और कुछ दिन बाद ही वे पार्टीके सदस्य बन गए। किन्तु वे भी इतना मानते थे कि रूसके न्यायविधान पर विश्वास नहीं किया जा सकता। उन्होंने एलेक्सका नाम कभी नहीं सुना था। मुझे भी वे मामूली तौरसे ही जानते थे।

---

१. संसारके सर्वश्रेष्ठ पदार्थ विज्ञानवेत्ता।

२. आजकल रूसके विदेश मंत्री हैं। इनका नाम रूसमें चलाए गए झूठे मुकदमोंके सम्बन्धमें विश्वविख्यात है। उन्हीं मुकदमेमें लेनिनके प्रमुख साथी तथा अधिकतर पुराने रूसी कम्युनिस्ट मारे गए थे।

फिर भी वे तुरन्त मान गए कि एलेक्स निर्दोष है। तारपर मानचेस्टरके प्रसिद्ध वैज्ञानिक पोलानीने भी हस्ताक्षर कर दिए। बड़े वैज्ञानिकोंमेंसे मैं केवल ब्लैकेटकी सही न पा सका। ब्लैकेटने एलेक्सके साथी दूसरे वैज्ञानिक हौटरमान्सको बचानेका तो पूरा प्रयत्न किया था। शायद वे डरते थे कि दो-दो आदमियोंकी हिमायत करके शायद वे एकको भी न बचा पाएं।

इस घटनासे एक विचारणीय बात उठती है। रूसके हिमायती हमारे मार्क्सवादी वैज्ञानिक, जिनमें ब्लैकेट और जौलियत्-क्यूरी इत्यादि शामिल हैं, रूसके विषयमें बिल्कुल अन्धे तो नहीं हैं। कमसे-कम वे अपने दो साथियों की कहानी जानते हैं, जो कि रूसके बफादार सेवक थे; किन्तु जिनपर ऊटपटांग इलज़ाम लगाकर बिना मुकदमा चलाए ही जिनको कई वर्ष तक जेलमें रक्खा गया और अन्तमें जिन्हें गेस्टापोंके हाथोंमें दे दिया गया। रूसके ये हिमायती यह भी जानते हैं कि इस प्रकारके केस दो-चार नहीं, हजारों लाखों रूसमें हुए और हो रहे हैं। इनको विश्वसनीय सूत्रोंसे पता लगता रहता है कि रूसमें बुद्धिजीवियों पर क्या बीतती है। और हमारे मार्क्सवादी वैज्ञानिक ही क्यों, कम्युनिस्ट और कम्युनिज्म के हिमायती अनेकों लेखक, पत्रकार तथा बुद्धिवादी, सभी रूसके विषयमें यह सब जानते हैं। उनमेंसे प्रत्येक कमसे-कम एक ऐसे व्यक्तिको अवश्य जानता है जो निर्दोष होनेपर भी साइबेरियाके हिमाच्छादित दास कैम्पोंमें भेजा गया अथवा जिसको गुप्तचर बताकर गोली मार दी गई, अथवा जो अचानक गायब हो गया। गणतन्त्र देशोंके न्यायविधानमें कहीं कोई तिलमात्र भूल हो जाए अथवा त्रुटि रह जाए, तो ये लोग गला फाड़-फाड़ कर मर जाते हैं। किन्तु सोवियत् भूमिमें इनके अपने साथी ही जब

बिना मुकदमा चले अथवा अपराधी प्रमाणित हुए, मौतके घाट उतार दिए जाते हैं, तो ये लोग चुप्पी साधे रहते हैं। इन सबकी अन्तरात्माओंमें कंकाल छूपे हैं, जिनको बाहर निकालकर देखनेका इनमें साहस नहीं। और यदि सब कंकालोंको इकट्ठा कर लिया जाए, तो पेरिसके मुरदा तहखाने मात हो जाएंगे।

रूसमें जितने क्रान्तिकारियोंको मरना अथवा जेलमें सड़ना पड़ा है, उसकी किसी देशमें, किसी युगमें भी, तुलना नहीं मिलती। मैं स्वयं सात बरस तक इस तमाम हत्याकाण्ड और बर्बरताकी मार्जनामें दलीलें जुटाता रहता था। सीधे-साधे, अनपढ़ लोग जब उन दलीलोंको कहते सुनते हैं तो मुझे बुरा नहीं लगता। किन्तु भद्र, सज्जन और बुद्धिशाली लोगोंको वह कसरत करते देखकर मैं अवाक् रह जाता हूँ। बुद्धि की पैंतरेबाजीसे मेरा परिचय है। और मैं यह भी जानता हूँ कि भावनापर कितने आघात पड़नेके बाद वह पैंतरेबाजी बेकार हो पाती है।

एलेक्स की गिरफ्तारीका मुझे जिस समय पता लगा, उसी समय एक साथी जर्मनीमें पाँच साल जेल काटनेके बाद भागकर पेरिस आ पहुँचा। गिरफ्तार होनेसे पहले वह पार्टीकी जिस टुकड़ीके साथ काम करता था, उस टुकड़ीके नेताओंको रूसमें गुप्तचर बताकर समाप्त किया जा चुका था। इसीलिए उस साथीसे किसीने बात नहीं की और न किसीने उसकी कैफियत सुननेकी तकलीफ उठाई। उसको तथा उसकी पत्नीको गोस्टापोके एजेन्ट बताकर उनके फोटो पार्टीके पत्रमें छापे गए और पार्टीके सदस्योंको सतर्क किया गया कि कोई उनके पास भी न फटके। पहले भी मैं इस प्रकारके मामले देख सुन चुका था। किन्तु

पैंतरेबाजी करके अपना मन समझा लिया था। किन्तु इन दो व्यक्तियों की विडम्बनाने मुझे हिला दिया और अचानक वे लोग मुझे पार्टीसे भी बढ़कर लगने लगे। मैंने उनका पक्ष लिया।

पार्टीने मेरे विरुद्ध कोई कारवाई नहीं की। जब फ्रैंकोंकी जेलमें था तो मुझे शहीद बताकर पार्टी मेरे नामसे खूब लाभ उठा चुकी थी, इसलिए मुझे अचानक फ्रैंको अथवा जापानका एजेन्ट कहकर तिरस्कृत करना तनिक कठिन बात थी। अतः पार्टी चुप रही।

किन्तु अध्याय समाप्त होनेमें देर नहीं थी। एक साधारणसी घटनाने मुझे पार्टीसे अलग कर दिया। जर्मनीके पेरिस स्थित शरणार्थी-लेखक-संघकी सभामें मुझे स्पेन पर एक वक्तृता देनी थी। पार्टीके एक व्यक्तिने आकर कहा कि वक्तृतामें मैं स्पेनमें लड़नेवाले ट्राट्स्कीवादी दलको गद्दार बता दूँ तो अच्छा होगा। मैंने इन्कार कर दिया। वह चकरा सा गया। फिर उसने मेरी वक्तृताको पढ़कर उसपर मन्तव्य देनेका प्रस्ताव पेश किया। मैंने फिर इन्कार कर दिया। सभामें दो-तीन सौ बुद्धिजीवी थे, आधेके करीब कम्युनिस्ट। मेरे भीतर कुछ कह रहा था कि एक कम्युनिस्टके रूपमें मैं अपनी अन्तिम वक्तृता देने जा रहा हूँ। फिर भी मैं केवल स्पेनके बारेमें ही बोला। पार्टी अथवा रूसके सम्बन्धमें मैंने नुकताचीनी का एक शब्द भी नहीं कहा। पर मेरी बातोंमें तीन वाक्य ऐसे थे, जो कि आमलोगोंको तो साधारणसे लगेंगे, किन्तु जिनमें पार्टीके लिए युद्ध की चुनौती भरी थी। मैंने कहा :—

"प्रथमतः, कोई आन्दोलन, पार्टी अथवा व्यक्ति भूलचूकके ऊपर नहीं हो सकता। भूलें सबसे होती हैं।

"द्वितीयतः, शत्रुके साथ नरमी दिखाना उतनी ही बड़ी बेवकूफी है, जितनी कि उन मित्रोंके साथ शत्रुता करना जो एक दूसरे मार्गसे हमारे ही लक्ष्य की पूर्ति करनेमें लगे हों।

"तृतीयतः, हानिकारक सत्य लाभकारी मिथ्यासे सदैव श्रेयस्कर है।"

किस्सा खत्म हो गया। जब मेरी वक्तृता समाप्त हुई तो सभाके गैरकम्युनिस्ट लोगोंने तालियाँ बजाईं, किन्तु कम्युनिस्ट चुपचाप, हाथ बाँधे बैठे रहे। उनको पार्टी की ओरसे ऐसा करनेका आदेश मिला हो, ऐसा मैं नहीं कहता। किन्तु कम्युनिस्ट होनेके नाते वे तुरन्त समझ गए कि मैं पार्टीके मौलिक सिद्धान्तोंके विरुद्ध बोला हूँ। ऐसा ही असर एक नाजी सभामें यह कह देनेसे होता कि सब मनुष्य एक जैसे हैं, चाहे वे किसी भी जातिके हों अथवा चाहे जो धर्म मानते हों।

दो चार दिन पीछे मैंने पार्टीकी केन्द्रीय कमिटीके पास अपना त्यागपत्र भेज दिया।

× × ×

अब सोचता हूँ कि मेरी कहानी खत्म हो जानी चाहिए। किन्तु अभी भी मुझे रोगसे पूर्ण मुक्ति प्राप्त नहीं हुई थी। मैंने पार्टीसे इस्तीफा दिया था, कामिन्टर्नसे नाता तोड़ा था तथा स्टालिनसे विदा ली थी। किन्तु सोवियत् राष्ट्रके प्रति अभी मुझमें भक्ति बची थी। मैंने अपने त्यागपत्रमें इतना तो कहा कि रूसमें नौकरशाहीका बोलबाला है और व्यक्ति स्वाधीनता की हत्या मुझे पसन्द नहीं। किन्तु साथ ही यह भी माना कि समस्त दोष रहते हुए भी सोवियत् रूस एक किसान-मजदूर राष्ट्र है, जहाँ कि व्यक्तिगत सम्पत्तिके मिट जानेके कारण समाजवादका पूर्ण उदय

अवश्यम्भावी हो गया है। चाहे जो भी दोष हों, अब यह सोवियत् राष्ट्र ही इस दलित वंचित संसारमें मानवता की एकमात्र आशा है, इत्यादि इत्यादि।

अभी तक मेरा नशा गया नहीं था। मैं जैसे आकाससे गिरकर एक वृक्षकी शाखामें उलझा था। उस वृक्षकी दूसरी शाखाओंपर मेरे जैसे अनेकों और झूल रहे थे। वे अलग-अलग दृष्टिकोणसे सोवियत् राष्ट्रमें दोष बतलाते थे, किन्तु फिर भी कहते थे कि सोवियत् राष्ट्र ही मानवता की आशाका प्रतीक है। और उस त्रिशंकु अवस्थामें अड़े रहनेके लिए वे भरसक जोर मार रहे थे। मैं भी उस दिन तक उस अवस्थामें लटका रहा, जिस दिन कि मास्कोके हवाई अड्डे पर स्वस्तिक पताका फहराई गई और नाजी दूत रिबनट्रापके स्वागतमें रूसी फौजके बैन्डने नाज़ी जर्मनीका राष्ट्रगीत गाया। उस दिन पूरी तरह आँखें खुल गईं। मैंने धरतीपर पाँव टिका लिए। अब मुझे इस बातकी परवाह नहीं रही कि हिटलरके सगे-साथी कम्युनिस्ट मुझे क्रान्तिका शत्रु कहकर गाली देते हैं।

रूसको समाजवादी देश माननेवाली भ्रान्तिकी मैंने अपनी पुस्तक "योगी और कमीसार" में विवेचना की है। वह यहां नहीं दोहराऊंगा। यहां तो अपने जीवनका यह अध्याय इसलिए बताना चाहता था कि अभी भी हमारे वामपन्थी दलोंमें रूसके प्रति एक भ्रम बचा हुआ है। साधारणतया वामपन्थी लोग बुद्धिके कायर होते हैं। रूसकी भक्तिका नशा उन्होंने एकबार किया सो छोड़ नहीं पा रहे। कम्युनिज्मने आदर्शवादका जो चोरबाजार चलाया है, उसमें सबको अपने-अपने काम लायक स्वर्गका नाम और पता मिल जाता है। बस बोतलोंमें रंगीन पानी भर

कर हमारे वामपन्थी चिल्लाते फिरते हैं कि उनके पास ही असली शराब है। खरीदार जितना ही सरल हो उतना ही अधिक ठगा जाता है। शान्ति, गणतन्त्र, प्रगति इत्यादि नामोंकी आड़में किस प्रकार ज़हर बेचा जाता है, यह जाननेकी बात है।

मैं सात सालतक कम्युनिस्ट पार्टीकी सेवा करता रहा। बाइबलमें एक कहानी है। जैकबने राशेलको पानेके लिए सात वर्ष तक उसके पिताकी भेड़ें चराई थीं। उसके बाद उसका विवाह हुआ और अपनी नई दुलहिनके साथ उसने सुहाग रात भी एक अन्धेरे तम्बूमें बिता डाली। सुबह उसने लड़कीको देखा तो राशेलके स्थानमें बदसूरत बाँदी लीहको पाया। उस सदमेको जैकब जिन्दगी भर नहीं भूल पाया होगा, ऐसा मुझे लगता है।

मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। मैं सात साल तक देवी समझकर एक राक्षसीसे प्यार करता रहा। अब विश्वास नहीं होता कि मैंने ऐसी भूल की थी। किन्तु भूलका मलाल भी मनसे नहीं जाता। बाइबलकी कहानीमें तो जैकबने फिर सात साल सेवा करके असली राशेलको पा लिया था। उसका स्वप्न तो सत्य बन सका था। शायद तब उसे वे पन्द्रह वर्ष चन्द दिनसे लगे होंगे।

किन्तु मुझे·········
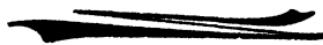
इगनेज़ियो सिलोने

जीवनी : इनका जन्म १ मई सन् १९०० में इटलीके एक पहाड़ी गाँवमें हुआ था। पिता एक छोटेसे जमींदार थे और माता कपड़ा बुननेका काम करती थीं। प्रथम महायुद्धमें, जब ये सतरह सालके थे, तो अपने जिलेके किसान संघके मन्त्री चुने गए। महायुद्धका जबरदस्त विरोध करनेके कारण इनको अदालत भी देखनी पड़ी। १९२१ में इटलीकी कम्युनिस्ट पार्टीके संगठनमें इनका विशेष हाथ था। ये रोम[1] में एक साप्ताहिक पत्रका सम्पादन करते थे और ट्रीस्टेसे एक दैनिक भी इन्हींके सम्पादनमें निकलता था। १९२१ में फासिज्म[2] के उदयके पश्चात् भी ये गुप्त रूपसे इटलीमें बने रहे और गैरकानूनी पत्र-पत्रिकाएँ छापते रहे। इटलीसे इन्हें भागना पड़ा तो किसी भी सरकारने इनको अपने देशमें टिकने नहीं दिया। हार कर ये १९३० में स्विट्ज़रलैण्ड पहुँचे और १९४४ में इटली लौट आने तक वहीं रहे। १९३० में इन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी छोड़ दी थी। दस साल बाद, १९४० में, ये इटलीकी सोशलिस्ट पार्टीकी विदेशी नीतिके सम्पादक बने और "तृतीय शक्ति"[3] का सिद्धान्त इन्होंने प्रतिपादित किया।

इनकी अनेक कृतियोंमें चार उपन्यास और दो नाटक अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

---

१ इटलाकी राजधानी। २ मुसोलिनीकी पार्टीका मतवाद।

३ इस सिद्धान्तके अनुसार पूंजीवाद और कम्युनिज्म दोनोंके बीचका समाजवादी रास्ता ही मानवताका कल्याण कर सकता है।

*

नवम्बरकी उस सांझको जब कि सरकारकी विशेष घोषणा द्वारा हमारी पार्टी गैरकानूनी बन गई, तो हममेंसे कई लोग पुलिसके फन्देसे बचकर निकल भागे। चित्रकारके छद्मवेषमें हमारे एक साथीने मिलैन[1] नगरके पास एक बंगला पहलेहीसे किराए पर ले रक्खा था। वहीं जाकर हमने शरण ली। मजदूरोंके मोहल्लोंमें गलियां सूनी पड़ी थीं, होटल बन्द हो गए थे, और घरों पर अन्धियारा छाया था। सरदीके दिन थे, बून्दा-बाँदी भी कुछ हुई थी। किन्तु सरकारी दमनने उस सांझकी उदासीको और भी गहरा बना दिया। पुलिस पुरी मुस्तैदीसे संदिग्ध मोहल्लों पर इस प्रकार धावा मार रही थी, मानो शत्रु के देश पर चढ़ाई की हो। गिरफ्तार होनेवालोंकी संख्या बड़ी थी और दिन-पर-दिन बढ़ती ही जा रही थी। पुलिसको कुछ लोगोंका तो सुराग़ अपने सूत्रोंसे मिल जाता था, कुछ लोग पुलिसके उन दलालोंने जो पार्टीमें घुस आए थे पकड़वा दिए और कुछ इसलिए फँस गए कि पहिलेसे गिरफ्तार लोगों में कई कमजोर साथी थे, जिन्होंने मारपीटकी धमकियोंसे डर कर सारा भेद खोल दिया।

एक मिलैनमें क्या, इटलीके समस्त शहरोंमें वैसा ही हो रहा था। पत्रोंको आदेश दिया गया था कि वे दमनके सम्बन्धमें कुछ न छापें। इसके विपरीत पत्रोंमें पढ़नेको मिलता था कि गणतन्त्र देशोंकी उदार-वादी पार्टियोंके अनेक प्रतिनिधि मुसोलिनीकी तानाशाहीके गुण गा रहे

---

1 इटलीका एक प्रमुख नगर।

हैं। फिर भी हमारे चार प्रमुख केन्द्रोंसे दमनकी जो रिपोर्ट पार्टीके हैड आफिसको मिली उससे हम समझ गए कि मुसोलिनी हमारा पता निशान तक मिटाने पर तुला हुआ है। हमारी पार्टीके पास गैरकानूनी रूपसे काम करनेके लिए एक संगठन था। किन्तु वह भी पुलिसकी चोटोंसे छिन्न-भिन्न हो गया। अनेक साथी अपने शहरोंमें दूसरे शहरोंमें शरणार्थी बननेके लिए आ खड़े हुए। उनके लिए बनावटी कागज-पत्र तैयार करनेका एक बड़ा काम उठ खड़ा हुआ, ताकि वे किसी और नाम और रूपकी आड़में नए सिरेसे अपना काम कर सकें।

हम कुछ लोग पहलेसे ही गुप्त रह कर काम कर रहे थे, इसलिए हमको यह सब हैरानी नहीं उठानी पड़ी। किन्तु इतना हम भी जानते थे कि किसी दिन भी कोई-न-कोई सूत्र पाकर पुलिस हमें पकड़ सकती है। उस सांझको मुझे भी सावधान कर दिया गया था कि अपने घर न लौटूं क्योंकि पुलिस वहाँ तक पहुँच चुकी थी। मेरे जैसे कई और थे। हम सब उस छद्मवेशी चित्रकारके बंगले पर आ मिले। एक आदमीको बाहर पहरे पर तैनात करके हम कुरसियोंमें ही रात बितानेके लिए पड़ रहे। घर छोटा था और वहाँ एक ही चारपाई थी। छद्मवेशी चित्रकार और उसकी पत्नीके अतिरिक्त वहाँ एक छद्मवेशी स्पेनिश भ्रमणकारी बना बैठा था, दूसरा दांतका इलाज करनेवाला, तीसरा मकान बनानेवाला राज और चौथी, एक जर्मन लड़की, छात्राका रूप धारण किए थीं। एक-दो सालसे हम एक-दूसरेको जानते थे। किन्तु पार्टीके गैरकानूनी संगठनोंमें एक साथ काम करनेके सिवाय हमारा विशेष सम्पर्क भी नहीं था। मित्र बननेकी फुरसत हम लोगोंको नहीं मिल सकी थी। हाँ

सरसरी तौर पर हम एक-दूसरेकी जात-पांत और खानदान इत्यादि जानते थे।

सहसा दंतचिकित्सक बड़बड़ाया—

"मैं सांझको थियेटरके पाससे गुजरा तो देखा कि अगले 'शो'का टिकट खरीदनेके लिए एक बहुत बड़ी भीड़ लाइनें लगाए खड़ी है। दो क्षण तक उस भीड़ को निहारनेके बाद मुझे पूरा विश्वास हो गया कि वे सब पागल लोग थे"

"पागल क्यों?" स्पेनिश भ्रमणकारीने पूछा, "क्या आप नाच-गानको पागलपन मानते हैं?"

"साधारण अवस्थामें तो नहीं मानता" दंतचिकित्सक बोले, "किन्तु ऐसे असाधारण दिनोंमें पागल लोग ही नाच-गान द्वारा जी बहलानेकी बात सोच सकते हैं"

"नाच-गान हमेशा दिल बहलानेके लिए नहीं होता" स्पेनिश भ्रमणकारीने कहा।

अबकी बार चित्रकार बोला। कहने लगा, "यदि संगीतके दीवाने इस समय हम लोगोंको देख पाएँ तो कहेंगे कि हम सब जरूर पागल हैं। वास्तवमें पागल कौन है, यह फैसला करना आसान नहीं। समस्त शास्त्रोंमें यह शास्त्र दुरूह है"

दन्तचिकित्सकको बातोंका यह रुख पसन्द नहीं आया। झल्लाकर बोला, "हमारी तरह जी-जान पर खेल जानेवालोंको इस तरह निष्पक्ष बातें नहीं करनी चाहिएँ"

"संघर्षकी बात मैं समझता हूं" चित्रकारने उत्तर दिया, "आप

अपने प्रतिपक्षीसे जम कर लड़िए। किन्तु अपनी खोपड़ी फोड़ लेनेसे कोई लाभ नहीं। खोपड़ीको दूसरे कामोंके लिए सलामत रखनेकी जरूरत है।"

"किन्तु हमारा संघर्ष तो आदर्शोंका संघर्ष है। आज खोपड़ीको कैसे बचाए रह सकते हैं?" स्पेनिश भ्रमणकारीने पूछा।

"अच्छा, मानता हूं कि मेरी खोपड़ी भी संघर्षमें लिप्त है। किन्तु अपनी आँखें मैं अलग रखना चाहता हूँ। अपनी आँखोंसे ही सब कुछ देखना मुझे भाता है" चित्रकारने उत्तर दिया।

"आप फिजूलकी बकवाद करते हैं" दन्तचिकित्सक गुर्राया, और बोला "आप काम-धाम तो कुछ करते नहीं, फिर न जाने क्यों यह गुप्त-जीवनकी विडम्बना झेलते हैं!"

कमरेमें एक बोझिल-सा सन्नाटा छा गया। चित्रकारने इस भद्दी बातका कुछ उत्तर नहीं दिया। खिड़कीमेंसे सड़क पर दौड़ती पुलिस और फौजकी तीन लारियां हम देख रहे थे। गृहिणीने खिड़कीके किवाड़ बन्द करके हमारे सामने काफीके प्याले रख दिए।

स्पेनिश भ्रमणकारीने मालिन्य मिटानेके लिए कहा, "हमारे युगमें सब रास्ते कम्युनिज्मकी ओर जाते हैं। किन्तु हम सब एक ही प्रकारके कम्युनिस्ट नहीं बन सकते"

"मैंने कम्युनिस्ट क्रान्तिपर अपनी जानकी बाज़ी लगाई है" चित्रकार कहने लगा "अपनी आँखों की बाजी इसलिए नहीं लगाई कि मैं देखना चाहता हूँ कि मेरे साथ क्या बीतती है। किन्तु जान की बाज़ी तो लग ही चुकी। स्कूल में मेरे साथ एक लड़की पढ़ती थी।

उसने गेरुआ पहिनकर स्वर्गके लिए प्राणोंकी बाज़ी लगाई है। आप यक़ीन रक्खें, मैं अपनी बाज़ी लौटाऊँगा नहीं। मैं आनका पक्का हूँ। किसीको सन्देह नहीं करना चाहिए"

"किन्तु कम्युनिस्ट क्रान्ति तो बाज़ी लगाने की बात नहीं। जो अवश्यम्भावी है उसपर भला क्या कोई बाज़ी लगाएगा?" दंतचिकित्सकने चिढ़कर कहा।

"मैं भी समझता हूँ, साहब, कि इस बाज़ीमें जीत खेलनेवालोंकी सामर्थ्य और समझदारी पर निर्भर करती है" चित्रकारने उत्तर दिया, "इसीलिए मैं अपने आपको जुआरी ही न मानकर खिलाड़ी भी कहता हूँ। मैं वह खिलाड़ी हूँ जिसका खेलके बाहर कोई अस्तित्व ही नहीं बच रहा है। बस बची हैं केवल मेरी आँखें"

"मेरी समझमें यह सब नहीं आता।" दन्तचिकित्सक बोला।

"सीधी-सी बात है। मैं आँखोंपर पट्टी बाँधनेको तैयार नहीं हूं। करता तो मैं भी वही काम हूं जो आप करते हैं। किन्तु आंखें खोल-कर" चित्रकारने समझाया।

स्पेनिश भ्रमणकारी कहने लगा "अच्छी बात है। आँखें खुली ही सही। पर इसका तो यह मतलब है कि जिस बातपर आपने बाज़ी लगाई है, उसमें दरअसल आपको दिलचस्पी नहीं। माफ कीजिए, क्या किसी अन्य परिस्थितिमें आप किसी अन्य बातपर बाज़ी नहीं लगा सकते थे? जैसे कि युद्ध, दक्षिणी ध्रुवकी यात्रा, कोढ़ियोंकी सेवा, स्त्रियोंका व्यापार अथवा जाली सिक्के बनाना, इत्यादि"

कारीने शंका उठाई "तो फिर यदि बार-बार हम याद कर लें कि हम कम्युनिस्ट क्यों हैं तो काहेका खतरा रह जाता है ?"

"रात लम्बी है" जर्मन लड़की कहने लगी "अपनी रहस्यमय कहानियां सुनानी चाहिएँ। काफी पीकर हम जागते रहेंगे"

और इस प्रकार हमने वह रात एक दूसरेको यह समझाते बिता डाली कि हममें हरेक कम्युनिस्ट क्यों बना। बहुत विस्तारपूर्वक तो हम नहीं कह पाए। किन्तु दिन निकलते-निकलते हम सब मित्र बन गए। हम सबने विदा लेते हुए कहा "यह सत्य है कि सारे रास्ते कम्युनिज्म की ओर जाते हैं"

अगले साल छद्मवेशी दन्तचिकित्सक गिरफ्तार हो गया। उस पर खूब मार पड़ी, किन्तु उसने अपने साथियोंसे द्रोह करनेसे इन्कार कर दिया और जेलमें ही मर गया। छद्मवेशी चित्रकार अपना राजनीतिक काम मुसोलिनीके पतन तक बराबर करता रहा और युद्धके उपरान्त राजनीति छोड़कर एकाकी जीवन बिताने लगा। जर्मन लड़कीके विषयमें उस दिनके बाद कुछ नहीं सुना।

मैंने बहुत बार उस रात की बातोंपर सोचा है। कुछ दिन पीछे मुझे यह जानने-समझने की धुन सवार हो गई कि मैं जो कुछ कर रहा हूं वह क्यों कर रहा हूं ? आरम्भमें मैं जो प्रेरणा पाकर कम्युनिस्ट बना था, क्या वह मेरे आजके कामोंसे युक्तिसंगत है—यह सोचते-सोचते मैं अपनी समस्त शान्ति गवां बैठा। मैंने जो कुछ भी लिखा है, वह मनके उसी बोझसे दबकर। लिख-लिखकर मैं अपना विश्लेषण करता रहा और अपने ऊपर चढ़े भूतसे मुक्ति पानेके लिए लिखना मेरे

लिए आवश्यक बन गया। कम्युनिज्मको तिलाञ्जलि देनेके उपरान्त मुझे लिखकर ही यह बताना पड़ा कि मैंने वैसा क्यों किया। क्योंकि मेरे आदर्श तो अब भी वही हैं। इसलिए लिखना मेरे लिए कभी भी एक आनन्दमय आत्मनिवेदन नहीं बन पाया। एक संघर्ष करनेके लिए ही मैंने अब तक लिखा है। मेरे आत्मनिवेदनमें जो त्रुटियां रह जाती हैं वे इसलिए नहीं कि मुझे साहित्य रचना नहीं आती, बल्कि इसलिए कि मेरे भीतर अब भी कुछ घाव हैं, जिनकी टीस मुझे परिमार्जित होनेकी इजाजत नहीं देती। सत्य बात कह देनेमें सफलता पानेके लिए इमान्दार होना ही काफी नहीं होता।

इटालियन कम्युनिस्ट पार्टीके जन्म-समारोहपर मैं अपने साथ सोशलिस्ट युवक संघको भी पार्टीमें खींच लाया। १९१७ से मैं इस संघका कार्यकर्त्ता था। महायुद्धके दिनोंसे ही गणतन्त्रवादी सोशलिस्टोंकी इतनी कड़ी समालोचना करते रहे थे कि हमारे कम्युनिस्ट बन जानेपर किसीको आश्चर्य नहीं हुआ।

उस रात जब मैंने अपने मित्रोंको समझाना चाहा कि सतरह साल की अवस्थामें स्कूलमें पढ़ते हुए ही क्यों मैंने उग्रवादी सोशलिस्टोंका पक्ष लिया, तो मुझे लौटकर अपनी किशोर अवस्थामें जाना पड़ा था। उसके परे मुझे अपने बचपन की वे घटनाएं भी याद करनी पड़ी थीं, जिनके कारण समाजकी ओर मेरा एक दृष्टिकोण बना था। वही दृष्टिकोण पीछे चलकर राजनीतिक रूप ले बैठा। वरना सतरह साल की उमरमें कोई एक क्रान्तिकारी दलमें शामिल होकर सरकारी दमनको अपने ऊपर नहीं बुलाता। ऐसे क्रान्तिकारी की प्रेरणा निश्चय ही गम्भीर होनी चाहिए।

मैंने इटलीके दक्षिणमें एक पहाड़ी प्रदेशमें अपना बचपन बिताया था। जब मेरे भीतर सोचने-समझने की शक्ति जागी, तो मैंने पारिवारिक जीवन और सामाजिक सम्बन्धोंके बीच एक घोर वैषम्य देखा। पारिवारिक जीवनमें सच्चाई, इमान्दारी और एक व्यवस्था पाई जाती थी। किन्तु सामाजिक सम्बन्धोंमें भरी थी अधिकतर घृणा, कुत्सा और धोखाधड़ी। दक्षिण इटली की दरिद्रता और दैन्यता की तो अनेक कहानियाँ हैं। कुछ कहानियां स्वयं मैंने भी कही हैं। किसी बड़ी घटनाके कारण मैं अस्थिर नहीं हुआ। जीवनकी छोटी-छोटी बातोंने ही मुझे हिला दिया। इन छोटी बातोंमें ही मैंने देखा कि वे लोग, जिनके बीच मैं जन्मा और पला, एक दोहरा जीवन बिताते हैं और किशोर होते-होते मेरा मानस एक व्यथासे भर गया।

पाँच वर्षका हूँगा, तब एक दिन माँके साथ गाँवके चौरस्तेसे गुजर रहा था। मैंने देखा कि गाँवके एक अमीरने झूठ-मूठ ही, सिर्फ तमाशा देखनेके लिये, अपना कुत्ता गिरजेसे आती हुई एक स्त्रीके पीछे लगा दिया। वह सिलाई करके जीविका कमाने वाली एक गरीब स्त्री थी। बड़ा भयानक काण्ड हो गया। बिचारी स्त्री बुरी तरह घायल होकर धरती पर गिर पड़ी और उसके कपड़ोंको फाड़कर कुत्तेने धज्जियां कर डालीं। गांवमें सबको क्रोध आया, किन्तु कोई कुछ भी नहीं बोला। न जाने क्योंकर उस गरीब औरतको उस अमीर पर मुकदमा चलानेकी हिम्मत हुई। पर नतीजा कुछ नहीं निकला। न्याय मिलनेकी बजाए उसका मज़ाक और बना। सबकी उसके साथ सहानुभूति थी, कइयों ने चोरी-चोरी उसकी सहायता भी की। किन्तु दुर्भागिनको एक भी

व्यक्ति ऐसा नहीं मिला, जो मजिस्ट्रेटके सामने उसकी गवाही देता और न किसी वकीलने उसका मुकदमा अपने हाथमें लिया। इसके विपरीत अपने आपको वामपन्थी कहनेवाला एक वकील ठीक समय पर उस अमीरकी ओरसे अदालतमें हाजिर हुआ और घूस खाकर कई गवाहोंने झूठ बोल दिया कि उस औरतने ही कुत्तेको भड़काया था। मजिस्ट्रेट एक बहुत ही भले और ईमान्दार व्यक्ति थे, किन्तु कानूनकी रू से उन्हें अमीरको छोड़ना पड़ा और औरतको मुकदमेका खर्च जुर्मानेमें देना पड़ा।

कई दिन बाद वे हमारे घर आए, तो बातों-बातोंमें बोले "मुझे अपनी अन्तरात्माके विरुद्ध ही ऐसा करना पड़ा। मैं धर्मको साक्षी बनाकर कहता हूँ कि मुझे बहुत अफसोस हुआ है। किन्तु कानूनने मेरे हाथ बाँध दिए। यदि मैंने अपनी आँखोंसे वह काण्ड देखा होता और एक साधारण नागरिककी हस्तीसे मैं भी उस गरीब औरतका पक्ष लेता, तो भी एक जजके नाते गवाहीके मूजिब मुझे फैसला कुत्तेके ही पक्षमें देना पड़ता। एक सच्चे जजको अपनापन दबाकर निष्पक्ष होना चाहिये"

"यह जजका पेशा बहुत बुरा है" माँने कहा "इससे अच्छा तो हम साधारण नागरिक बने अपने घरमें ही पड़े रहें" फिर वे मुझसे बोलीं "तुम बड़े होकर जो कुछ भी बनो, जज मत बनना, बेटा!"

मुझे इसी प्रकारकी कई और घटनाएँ याद हैं। मेरा कहनेका मतलब यह नहीं है कि हमारे समाजमें लोग सत्य और न्यायके पवित्र असूलोंमें श्रद्धा नहीं रखते थे अथवा उन असूलोंके प्रति जुगुप्सा दिखाते

थे। इसके विपरीत स्कूलमें, गिरजेमें और सार्वजनिक समारोहों पर उन असूलोंको लेकर बड़े-बड़े व्याख्यान होते थे। इतना तो हम बच्चे भी समझ सकते थे कि कहीं कुछ गड़बड़ अवश्य है और हम सब अपने आपको धोखा दे रहे हैं। किन्तु केवल व्यक्तिकी बेवकूफी और अज्ञान के कारण ही यह सब होता है, यह कहना भी कठिन था। इस दोहरे जीवनका कारण तो कुछ और ही था।

एक दिन हमारे मोहल्लेके पादरी और मेरी क्लासके लड़कोंमें एक दिलचस्प बहस छिड़ गई। पहिले दिन हम सबने पादरीके साथ जाकर कठपुतलीका खेल देखा था। खेलमें एक बच्चेकी कहानी थी, जिसके पीछे कि शैतान पड़ गया था। एक दृश्यमें बच्चा बनी हुई कठपुतली भयसे कांपने लगी और शैतानसे बच निकलनेके लिये बिस्तरमें छुप गई। कुछ क्षण पीछे शैतान बनी कठपुतली आकर उसे खोजने लगी। उसे न पाकर शैतान-कठपुतली बोली "वह जा कहाँ सकता है। मुझे उसकी गन्ध तो आ रही है। इन दर्शक लोगोंसे पूछकर पता लगाऊँगा" और हमारी ओर आकर उसने पूछा "मेरे प्यारे बच्चो! क्या तुमने एक बदमाश बच्चेको इधर छुपते देखा है? मुझे उसकी तलाश है"

"नहीं, नहीं, बिल्कुल नहीं" हम सबने चिल्लाकर कहा।

"तो फिर वह कहाँ है? मुझे तो कहीं भी दिखाई नहीं देता" शैतान-कठपुतलीने हठ किया।

"वह चला गया" हम फिर चिल्लाए "वह लिज़बन[1] चला गया"

---

१. पुर्तगालकी राजधानी।

हम जब थियेटरमें गए थे, तो किसीने नहीं सोचा था कि इस प्रकार शैतान-कठपुतली हमसे सवाल पूछेगी। इसीलिये हमने जो भी उत्तर दिए, वे बिना बिचारे ही, स्वभावतः ही दे डाले थे। मेरा विश्वास है कि संसारके किसी देशका कोई भी बच्चा वैसे ही उत्तर देता। किन्तु हमारे पादरी जो अत्यन्त सज्जन, सुसंस्कृत और धर्मप्राण व्यक्ति थे, हमारे उत्तर सुनकर प्रसन्न नहीं हुए। कुछ दुखीसे होकर वे बोले—"तुमने झूठ बोला है। अच्छे ध्येयसे बोला है, यह सच है। किन्तु झूठ तो झूठ ही होता है ना। झूठ कभी नहीं बोलना चाहिए"

"क्या शैतानके सामने भी नहीं ?"—हमने ताज्जुबमें आकर पूछा।

"नहीं। झूठ बोलना पाप है" उन्होंने उत्तर दिया।

"क्या मजिस्ट्रेटके सामने भी नहीं ?" एक और लड़केने पूछ लिया। पादरीने उसको खूब धमकाया और बोले "मैं यहाँ तुमको ईसाका धर्म समझाने आता हूं, बकझक करने नहीं। गिरजेके बाहर तुम क्या करते हो, इससे मेरा कोई मतलब नहीं" इसके बाद उन्होंने खूब उत्तेजित होकर हमें सत्य और मिथ्याके सिद्धान्त समझाए। किन्तु सिद्धान्तोंमें हमें अब कोई दिलचस्पी नहीं रह गई थी। हम एक ठोस बातका उत्तर चाहते थे। हमें शैतानको बच्चेका भेद बताना चाहिये था या नहीं। पादरी विचारे कहते रहे—"इस बातसे कोई मतलब नहीं। झूठ सदा झूठ है। पाप भी। पाप बड़ा हो, छोटा हो, मध्यम हो, साधारण अथवा तुच्छ भी हो, किन्तु पाप तो पाप रहता है। सत्यमें ही तुम्हारी श्रद्धा होनी चाहिये"

हमने कहा—"सत्य तो यह है कि एक तरफ बच्चा था और दूसरी

और शैतान। हम बच्चेकी सहायता करना चाहते थे। यह भी सत्य है"

"किन्तु तुमने झूठ जो बोल दिया है"—पादरी बोले—"अच्छे ध्येयको लेकर, मैं जानता हूँ। किन्तु फिर भी झूठ बोल दिया"

किस्सा खतम करनेके लिये मैंने एक और दृष्टान्त पेश कर दिया। मेरी बातमें धूर्तता थी और मेरी उम्रसे अधिक सूझ-बूझ भी। मैंने पूछा—"यदि बच्चेके स्थानमें एक पादरी होते तो हमें शैतानसे क्या कहना चाहिये था?"

कुछ शरमाएसे पादरी निरुत्तर बने रहे और बदतमीजीकी सजामें मुझे पाठ खतम होने तक घुटनों पर खड़ा होना पड़ा। पाठके उपरान्त उन्होंने पूछा—"क्या तुम्हें पश्चात्ताप हुआ है?"

"अवश्य"—मैंने कहा—"यदि शैतानने आपका पता पूछा तो अवश्य बता दूँगा"

गिरजेके भीतर क्लासमें ऐसा वाद-विवाद साधारणतया सम्भव नहीं था। हाँ हमारे परिवार और बन्धु-बान्धवोंके बीच स्वतन्त्र विवाद अवश्य होते रहते थे। इस अत्यन्त उत्कृष्ट विवादसे, किन्तु, हमारे सामाजिक जीवनकी पुरातन और जर्जर शैली पर जूं तक न रेंगी।

कुछ दिन पूर्व गणतन्त्रकी पद्धतिमें एक नई बातका समावेश हुआ था। चुनावमें गुप्त रूपसे वोट देनेका सबको अधिकार मिल गया। इसके परिणाम-स्वरूप कुछ महत्वकी घटनाएँ देखनेमें आयीं।

मेरी आयु सात सालकी थी, तब हमारे जिलेमें एक चुनाव हुआ। उस समय वहाँ कोई राजनीतिक दल नहीं बने थे, सबको चुनावमें बड़ी

दिलचस्पी थी। जनताने सुना कि चुनाव लड़ने वालोंमें एक सामन्त भी हैं। यह नहीं बताया गया कि सामन्तका नाम क्या है, फिर भी हम उस व्यक्तिको पहिचान गए। सौ साल पहले हमारे इलाकेमें जंगल साफ करके जो जमीन निकाली गई थी, उसीके वे मालिक बन बैठे थे। प्रायः आठ हजार परिवार उनकी जमीन पर काम करते थे। सामन्त उनका वोट मांगने निकले। उनके एजेण्ट उदारवादी भाषामें कहने लगे—"सामन्त साहब को वोट देनेके लिये किसी पर जोर नहीं दिया जा सकता। पर जो लोग उन्हें वोट नहीं देंगे, वे भी उनकी जमीन पर काम करनेके लिये जोर नहीं दे सकेंगे। स्वाधीनताका युग है। आप भी स्वाधीन हैं, सामन्त साहब भी स्वाधीन हैं" यह "उदारवादी" भाषा सुनकर किसान डर गए। हमारे इलाकेमें सामन्तसे सभी घृणा करते थे। किन्तु सामन्तको उनकी प्रजामें किसीने कभी देखा नहीं था। वे दूर कहीं शहरमें रहते थे। वे मानो एक दैत्य थे, जिसको गाली देकर लोग उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे, तो भी मनमें सुख मान लेते थे। किन्तु अब तो सामन्तके उस इलाकेमें आनेकी बात चलने लगी। लोगों को अब खुले आम गाली देनेका अवसर नहीं मिलेगा और गाँवकी गलियोंमें उस दैत्यको अभिन्दन जनाना पड़ेगा।

मेरे पिता यह सब स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं थे। वे कई भाइयोंमें सबसे छोटे एक खाते-पीते किसान थे। उनमें विद्रोहकी भावना भी सबसे अधिक थी। एक साँझको बड़े भाई उनको समझाने-बुझाने आ पहुँचे। मैंने भी उनकी बातें सुनीं। सबसे बड़े भाईने कहा—"सामन्तका खड़े होना है तो मज़ाक। इन सब कामोंके लिये तो वकील

इत्यादि स्पीचबाज़ लोग ही उपयुक्त होते हैं। लेकिन सामन्त जब खड़ा ही हो गया, तो हमें उनको वोट देना ही पड़ेगा"

मेरे पिताने उत्तर दिया—"यदि सामन्तका खड़ा होना मज़ाक है, तो फिर भला हम क्यों उसका समर्थन करें ?"

"तुम जानते हो कि हम उसके मातहत हैं"

"राजनीतिमें नहीं। राजनीतिमें हम स्वाधीन हैं"

"राजनीतिसे हमारा पेट नहीं भरता। पेट तो धरतीसे भरता है। धरती सामन्तकी है। हम उसके मातहत हो जाते हैं"

"उसके साथ दस्तावेज़में राजनीतिका कोई जिक्र ही नहीं। वहाँ तो आलू और चुकन्दरका ही ब्योरा है। वोट देनेकी हमें स्वाधीनता मिलनी चाहिए"

"सामन्तके गुमाश्तेको भी फिर स्वाधीनता रहेगी कि नए सालकी दस्तावेज़ हमें दे चाहे न दे। नहीं भाई, हमें उसका समर्थन करना ही पड़ेगा"

"मेरा तो इस प्रकार जबर्दस्ती वोट देनेको जी नहीं चाहता। मुझे ग्लानि होती है"

"बूथके भीतर जाकर चुपचाप जिसे चाहो वोट दे देना। लेकिन चुनावके हंगामेमें तुम्हें सामन्तके लिये बोलना होगा"

"आपकी बात मान तो लूँ, लेकिन मुझे शर्म आती है। सच मानिए, मुझे बहुत शर्म आती है"

अन्तमें यह समझौता हुआ कि चुनावकी गरमागर्मीमें मेरे पिता नष्पक्ष बने रहें।

सामन्तके चुनाव सम्बन्धी दौरेके बन्दोबस्तमें सरकारी कर्मचारी, पुलिस, पलटन और उनके गुमाश्ते, सब लोग शामिल हुए थे। एक इतवारको वे मोटरमें बैठकर बड़े-बड़े गाँवोंका चक्कर लगा गए। न कहीं रुके, न एक शब्द बोले। उस इलाकेमें मोटर देखना तो दूर, किसी ने उस दिन तक ऐसी किसी सवारीका नाम भी नहीं सुना था। किसानोंने उसको बिना घोड़ेकी गाड़ी कहकर पुकारा। उस यन्त्रके बारेमें बड़ी अजीब-अजीब बातें सारे इलाकेमें फैल गयीं। सारा गाँव उस सड़क पर इकट्ठा हुआ था, जिस परसे कि सामन्तके गुजरनेकी बात थी। सबने अपने बढ़िया कपड़े पहने थे और सबके मनमें उत्साह था। मोटर आई और रफ्तार कम किए बिना ही धूल उड़ाती हुई सपाटा भर गई। सामन्तके गुमाश्तोंने समझाया कि मोटर पेट्रोलके वाष्पसे चलती है और वह समस्त वाष्प निःशेष हुए बिना उसका रुकना सम्भव नहीं। घोड़ेकी तो लगाम खींचकर रोका जा सकता है, किन्तु मोटरमें तो लगाम नहीं जो जहाँ चाहें रोककर खड़े हो जाएँ।

दो दिन पीछे रोमसे एक अजीब बूढ़ा आया। आँखों पर चश्मा था, हाथमें एक काली छड़ी और एक छोटा सूटकेस। कोई उसे जानता नहीं था। उसने कहा कि वह आँखोंका डाक्टर है और सामन्तके विरुद्ध चुनाव लड़ना चाहता है। कुछ बच्चे और औरतें जिनको कि वोट देनेका अधिकार नहीं था, उसके पास जमा हो गए। उनमें मैं भी था। हमने बूढ़ेसे बोलनेके लिये कहा। वह बोला—"अपने माता-पिताको याद दिलाते रहो कि गुप्तरूपसे वोट देनेका उनको अधिकार है। और कुछ नहीं। मैं गरीब आदमी हूँ। आँखोंका इलाज करके पेट पालता हूं।

लेकिन आपमेंसे किसीकी आँखमें कुछ खराबी हो तो मुफ्त दवा दूँगा" हम उसको एक बूढ़ी कुँजड़ीके पास ले गए, जिसकी आँखें खराब थीं। डाक्टरने उसकी आँखें धोकर एक दवाकी शीशी उसे दे दी। फिर उसने एक बार कहा—"अपने माता-पितासे कहना कि उन्हें गुप्तरूपसे वोट देनेका अधिकार है" और चला गया।

सामन्तकी जो आवभगत सबने देखी थी, उससे सबको उसकी विजय पर पूर्ण विश्वास हो गया था और उसके कारिन्दोंने तो विजय-दिवस धूमधामसे मनानेकी तैयारी भी कर डाली थी। मेरे पिता अपने वायदेके मुताबिक निष्पक्ष रहे और वोट गिनने वालोंमें उनका नाम आया। और जब सबको मालूम हुआ कि गुप्त वोटका अधिकार पाकर बहुसंख्यक लोगोंने सामन्तके विरुद्ध और डाक्टरके पक्षमें वोट दिये हैं, तो सबको बहुत ताज्जुब हुआ। बड़ा शोर भी मचा अधिकारियोंने कहा कि कोई धोखा हुआ है। किन्तु धोखा देनेवाले इतने अधिक थे कि उनके विरुद्ध कोई कुछ नहीं कर सका।

जीवन फिर उसी प्रकार चलने लगा। किसीने सवाल नहीं उठाया कि जनमत कभी-कभी सत्ता पानेकी बजाए नित्य-प्रति क्यों नहीं सामाजिक जीवन पर अपनी छाप डाल सकता। यह कहना गलत होगा कि लोग भयके कारण उदासीन थे। हमारे इलाकेके लोग डरपोक तो कभी रहे नहीं। वे इटलीकी सबसे कड़ी जातिके लोग थे, जो जी तोड़ मेहनत करते हुए और हवा-पानीकी मार खाते-खाते पक चुके थे। वे लोग बराबर बलवे और मार-काट करते रहते थे। दलित, वंचित वे चुपचाप जुल्म सहते रहते, किन्तु जब उनके सब्रका प्याला भर जाता, तो अचानक ज्वालामुखीसे फट भी पड़ते थे।

हमारे गाँवमें उस समय पाँच हजार आदमी बसते थे और उनमें शान्ति कायम रखनेके लिये बीस पुलिस वाले और एक दारोगा तैनात थे। हमारे गाँवके बहुतसे नौजवान फौजमें भी थे। फौज और पुलिस में पटती नहीं थी। प्रथम महायुद्धके दिनोंमें फौजी तो मोर्चे पर चले गए और उनकी प्रेमिकाओंसे पुलिस वालोंने छेड़छाड़ करनी चाही। बात फैल गई। छुट्टी पर आए हुए तीन फौजियोंसे कुछ पुलिसवालों का झगड़ा हो गया और फौजवालोंको गिरफ्तार करके दारोगाने उनकी छुट्टी पूरी होनेके पूर्व ही मोर्चे पर भेजना चाहा। उन फौजियोंमेंसे एक मेरा दोस्त था। उसकी माँने रोते-रोते मुझे यह खबर सुनाई। मैंने गाँवके मुखिया, मजिस्ट्रेट तथा पादरीसे कुछ करनेकी अपील की। उन्होंने कहा कि मामला उनके बसके बाहर है। मैंने कहा कि यदि कुछ किया नहीं गया, तो बलवा हो जाएगा। दो बलवे पहले हो चुके थे। तीसरा अब खड़ा हो गया।

तीनों फौजियोंको पाँच बजेकी गाड़ीसे ले जानेकी बात थी। इसलिए साढ़े चार बजे ही चौकी पर धावा बोलनेकी तैयारी की गई। दुर्भाग्यसे बात बहुत फैल गई। हम तीन लड़कोंने एक बलवा करानेकी ठानी थी। एकने घण्टा-घर पर चढ़कर घण्टा बजाना शुरू कर दिया। इसको हमारे इलाकेमें आग लगने अथवा और किसी मुसीबतका संकेत माना जाता था। दो लड़के किसानोंको सब बात समझाने चल दिए। किसान लोग खेतोंमें काम छोड़कर गाँवकी ओर भागे आ रहे थे। कुछ मिनटमें ही एक उत्तेजित भीड़ चौकीके आगे जमा हो गई। पहले उन्होंने गालियाँ दीं, फिर पत्थर फेंके और अन्तमें गोली चला दी।

रातको देर तक चौकी पर धावा चलता रहा। क्रोधसे पागल अपने गाँव वालोंको पहिचानना मेरे लिए कठिन था। आखिर चौकीके दरवाजे खिड़कियाँ टूट गईं और अन्धेरेमें पुलिसके सिपाही भाग निकले। उन तीनों फौजियोंको हम भूल चुके थे। किसीको खबर दिए बिना ही वे भी अपने घर लौट गए।

चौकी पर हम चन्द नौजवानोंका रात भरके लिये कब्जा हो गया। सब बैठकर सोचने लगे कि और क्या करना चाहिये। मैंने कहा कि दिन निकलते ही सैकड़ों सशस्त्र पुलिस वाले आकर गांवको घेर लेंगे और एक रातमें हम जो कुछ करना चाहते हैं, वह किया नहीं जा सकता। एक रातमें तो हम समाजवाद स्थापित नहीं कर सकते थे। किसीने कहा कि जेल जानेसे पूर्व सो लेनेके लिये तो एक रात काफी है। हम सब थके थे। बात जँच गई और हम पड़ कर सो रहे।

इस प्रकारके हंगामे और उनके बाद होने वाला दमन, किसानोंके मनमें भरे अविश्वास और सन्देहको बढ़ा जाते थे। सरकारको वे शैतान की एजेन्सी मानते थे और कहते थे कि एक अच्छे इसाईको सरकारसे कोई सरोकार नहीं रखना चाहिये। सरकारका काम, उनकी दृष्टिमें, केवल लूटना-खसोटना और कुछ लोगोंकी अमीरी बनाए रखना था। चाहे जो कानून बना लो, चाहे जितना हंगामा कर लो, सरकार तो अपना काम बदलनेसे रही। केवल भगवान ही उसके पापका घड़ा भर जाने पर कोई राह निकाल सकते हैं।

१९१५ में एक बड़े भूकम्पने हमारे प्रान्तका एक बहुत बड़ा भू-भाग नष्ट कर दिया। तीस सेकेण्डमें पचास हजार मनुष्य मारे

गए। मैं देखना चाहता था कि हमारे गाँवके लोग इस सम्बन्धमें क्या विवेचना करते हैं। भूगर्भशास्त्रियोंके लम्बे-चौड़े व्याख्यानोंका हमारे लोगोंने मज़ाक उड़ा दिया। उनको आश्चर्य होता था कि जिस इलाकेमें इतने अन्याय होते रहते हैं और जहाँ अन्याइयोंको दण्ड नहीं मिलता, वहाँ और अधिक भूकम्प क्यों नहीं आते। भूकम्पमें गरीब और अमीर, पण्डित और मूर्ख, राजा और प्रजा एक साथ दब कर मरते हैं। हमारे लोगोंकी दृष्टिमें, मनुष्य और मनुष्यके बीच जो साम्यता कानून नहीं साध सकता, वह भूकम्प ला देता है। हमारी एक बूढ़ी भटियारिन सात दिन तक अपने घरके मलबेमें दब कर भी जीती रही थी। वह समझ ही नहीं सकी कि सबके मकान गिरे हैं। वह यही मान बैठी कि उसीका घर किसी कारीगरीके दोषके कारण अथवा किसीके जादू टोनेसे गिर पड़ा है। उसे बहुत सन्ताप हो रहा था और जब लोग उसे निकालने लगे तो उसने इन्कार कर दिया। ज्योंही उसे मालूम हुआ कि भूकम्प आकर और भी बहुतसे घर ढह गए हैं, तो उसकी जीवन-स्पृहा और फिरसे मकान बनानेकी आकांक्षा लौट आई।

भूकम्पके बाद जो कुछ हुआ वह हमारे लोगोंकी आँखोंमें अधिक भयानक था। सरकारकी ओरसे पुनर्निर्माणका काम शुरू हुआ। और उसमें जो-जो षडयन्त्र, धोखाधड़ी, चोरी, बेईमानी, गबन और घूसखोरी हुई वह बताई नहीं जा सकती। मेरे एक मित्रने जो कि सरकारी नौकरी से निकाला गया था, मुझे बड़े इञ्जीनियरोंकी कुछ कारस्तानियां बताईं। मैं कुछ ऊँचे और ईमान्दार अधिकारियोंके पास यह कहानी लेकर जा पहुँचा। मैंने उनसे उन बेईमान लोगोंके विरुद्ध कुछ करनेकी मांग की।

उन बड़े लोगोंने मेरी बातों पर सन्देह नहीं किया, बल्कि माना भी कि वह सब घोटाला सरकारी कामोंमें हो रहा है। लेकिन उन्होंने मुझे सलाह दी कि इन सब मामलोंमें टांग अड़ा कर मुझे बेवकूफ नहीं बनाना चाहिए। 'तुम जवान हो" वे कहने लगे "अपनी पढ़ाई-लिखाई पूरी करके तुम्हें कुछ करना है। फिजूलकी बातोंमें सिर खपा कर क्यों सिर बुराई बाँधते हो?"

मैंने उत्तर दिया, "हाँ, मैं भी तो यही कहता हूं कि इस मामलेमें मुझ जैसे नादान बालकको नहीं, बल्कि आप लोगों जैसे भारीभरकम आदमियोंको कदम उठाना चाहिए"

मैंने जैसे कोई सांप उनको दिखा दिया, इस प्रकार सहम कर वे बोले, "हम पागल थोड़े ही हैं। हमें दूसरोंकी बातोंसे क्या मतलब। हम अपना काम जानते हैं। बस"

उधरसे निराश होकर मैंने कुछ आदर प्राप्त पादरियोंसे अपनी बात कही। अपने कुछ साहसी रिश्तेदारोंको भी टोका। सबने वही बातें दोहराईं जो मैं सरकारी अफसरोंसे सुन चुका था। और सबने कुछ भी करनेसे इन्कार कर दिया।

तब मैंने विचार करना शुरू किया कि लड़कोंको जोड़ कर एक नया बलवा खड़ा करना क्या बुरा होगा। उन बेईमान इञ्जीनियरोंके दफ्तर जला कर राख क्यों न बना दिए जाएँ। मित्रने मुझे रोका। आगमें तो उन बदमाशोंकी बेईमानीके सबूत भी जल जाएँगे, उसने मुझे समझाया। वह मुझसे बड़ा और अधिक अनुभवी था। उसने सलाह दी कि समाचार-पत्रोंमें सब कुछ निकलवाना चाहिए। मैंने समाचार-पत्रका

नाम पूछा। उसने कहा कि केवल हमारा समाजवादी पत्र ही यह सब छाप सकता है। मैंने मेहनत करके अपने जीवनके पहले तीन लेख लिखे, जिनमें मैंने उन इञ्जीनियरोंका सारा कच्चा चिट्ठा लिख दिया। और समाजवादी-पत्रके पास सब लेख भेज दिए। उनमेंसे दो तो तुरन्त ही छप गए। पाठकोंमें काफी सनसनी फैली। किन्तु सरकारके कान पर जूँ तक न रेंगी। तीसरा लेख नहीं छपा और मुझे पता लगा कि एक प्रमुख समाजवादी नेताने सम्पादकको मना कर दिया है। तब मेरी समझमें आया कि बेईमानी और दगाबाजीका बाजार तो और भी दूर-दूर तक फैला है और समाजवादी भी उससे नहीं बच सके हैं। जो कुछ छप चुका था, उसीमें कई मुकदमे चलाने और जांच करनेके लिए काफी मसाला था। किन्तु हुआ कुछ भी नहीं। जिन इञ्जीनियरोंको मैंने चोर और डाकू कहा था, उन्होंने भी सफाई पेश करनेकी जरूरत नहीं समझी। कुछ दिन तक कानाफूसी होती रही और फिर बात पुरानी पड़ गई। सब भूल गए जैसे कुछ हुआ ही नहीं था।

मुझको सबने एक उदार किन्तु सनकी और अजीब लड़का ठहराया। हमारे इलाकेमें हजारों युवक प्रतिवर्ष स्कूल पास करके बेकार फिरते थे। सरकारी नौकरीके सिवाय और हमारे लिए कुछ भी करनेको नहीं था। उस नौकरीके लिए कोई विशेष विद्या बुद्धि नहीं चाहिए थी। बस सरकारकी फरमाबर्दारी काफी थी। किन्तु हमारे इलाकेके नौजवान तो स्वभावतः ही उपद्रव और विद्रोहकी भावना लेकर बड़े होते थे। सरकारी नौकरी उनके लिए एक प्रकारकी पराजय और आत्म-हत्याका प्रतीक थी। हमारी शिक्षा-प्रणालीमें भी चरित्र-निर्माणकी ओर कोई ध्यान नहीं

दिया जाता था। मैंने अधिकतर शिक्षा कैथोलिक स्कूल कालिजोंमें पाई थी। वहाँ हमको ग्रीक और लेटिन बहुत अच्छी पढ़ाई जाती थी, आचार व्यवहार भी सिखाया जाता था। किन्तु सामाजिक शिक्षा न-कुछके बराबर थी। हमको इतिहास पढ़ानेवाले स्वयं ही राष्ट्रवादी इतिहासका मज़ाक उड़ाते रहते थे। किन्तु साथ-ही-साथ वे हमें यह भी समझाते रहते थे कि परीक्षाओंमें हमको राष्ट्रवादी दृष्टिकोणसे ही लिखना चाहिए, जिससे हम अच्छी तरह पास होकर कुछ बनें और उनका नाम चढ़े। सरकारी परीक्षक भी हमारे परचोंमें बहुत विवादात्मक प्रश्न पूछते थे और हमसे कैथोलिक दृष्टिकोणके स्थानमें राष्ट्रवादी दृष्टिकोणसे ओत-प्रोत उत्तर पाकर एक व्यंगभरे स्वरमें हमारे उदारवादकी प्रशंसा करते थे। जिसको भी संस्कृतिसे कुछ प्रेम होता था, वह निश्चय ही यह मिथ्याचार देख कर कुढ़ने लगता था। किन्तु साधारण छात्र गम्भीर प्रश्नोंको इतना उलझा और विवादात्मक देख कर, केवल यही फिक्र करने लगता था कि किस प्रकार परीक्षाएँ पास करके सरकारी नौकरी पा जाए।

हमारे पड़ौसके गाँवमें एक डाक्टर बसते थे। वे कहा करते थे कि हमारे इलाकेमें जन्म लेनेवाले राहुकी दिशा लेकर आते हैं। उनको या तो विद्रोही बनना पड़ता है या सरकारी चापलूस। मध्यम मार्ग उनके लिए बन्द रहता है। वे स्वयं विद्रोही थे और अपने-आपको अराजक कहते थे। गरीबोंके पास जाकर वे टाल्स्टायकी अराजक बातों पर व्याख्यान दिया करते। सब जगह उसको लेकर चर्चा चला करती। अमीर उनसे नफरत करते थे, गरीब उनका मज़ाक उड़ाते थे और कुछ लोग जो उन्हें समझते थे, उन पर दया दिखाया करते। आखिरकार

उनका काम भी छुट गया और सचमुच ही वे भूखसे तड़प-तड़प कर मरे।

न जाने दूसरोंके प्रति अन्याय होता देख कर जागनेवाली विद्रोही भावनाको कहाँसे प्रेरणा मिलती है। न जाने क्यों भरपूर थाली पर खाने बैठ कर दूसरे लोगोंकी भुखमरी याद आते ही कुछ लोगोंके गलेमें रोटी अटक जाती है। न जाने क्यों कुछ लोग गरीबी और जेलका जीवन बितानेके लिए उद्यत हो जाते हैं, किन्तु अन्याय होता नहीं देख सकते। मेरे पास इन प्रश्नोंका उत्तर नहीं है। शायद किसीके पास भी नहीं हो। जिसने भी अपना अन्तर टटोल कर देखा है वह ही बता देगा कि इन प्रश्नोंका कोई उत्तर नहीं मिल पाता। फिर भी अपने बारेमें मैं इतना अवश्य कहूँगा कि जिस इलाकेमें मैंने जन्म लिया, उसके पानीका असर अवश्य मुझ पर पड़ा है। मैं देश-देशान्तर घूमा हूं और बहुत दिन मैंने अपने इलाकेके बाहर बिताए हैं, किन्तु उस पानीका असर मैं मिटा नहीं पाया।

जिस घरमें मैं जन्मा था, उसके चारों ओर तीस-चालीस मीलके वृत्त में हमारा इलाका बसा है। इतिहासमें हमारे इलाकेका नाम नहीं मिलेगा। हमारे इलाकेमें गिरजे और मठ ही देखने योग्य स्थान हैं और हमारे संत तथा पत्थर-तराश ही हमारी सच्ची संतान रहे हैं। जीवनकी कठिनाइयाँ अनेक होनेके कारण हम तकलीफ सहनेके आदी हो गए हैं और प्रभु ईसाका दुखव्रती सन्देश हमें बिल्कुल अपना लगता है। संशयकी ज्वालामें हम कभी नहीं जले। हम तो विश्वाससे ओतप्रोत, भगवानके स्वर्गके अवतरणकी राह देखते रहे हैं। यह स्वप्नशीलता ही हमारी एकमात्र

पूंजी रही है। राजनीतिक क्रांतिकी बात कभी हमारी समझमें नहीं आई।

इसी घोर एकाकीपनसे भाग कर मैंने शहरमें शरण ली थी। मैं धरती पर पाँव टिकाना चाहता था। पर मेरे अन्तरमें सुलगती विद्रोहकी भावना तथा नैतिक प्रेरणाके लिए एक रीतिमत, शास्त्रीय राजनीतिक सिद्धान्तको अपनाना कोई आसान बात नहीं थी। इसीलिए मैं नहीं कह सकता कि कम्युनिस्ट पार्टीमें दीक्षा लेना मेरे लिए एक फार्म पर हस्ताक्षर मात्र कर देनेकी बात थी। मैं तो पार्टीके मार्गसे अपने विद्रोहको सजीव रखना चाहता था, आत्मोत्सर्ग करके अपने विश्वासोंको रूप देना चाहता था।

उन दिनों अपने आपको सोशलिस्ट अथवा कम्युनिस्ट कह देना आफत मोल लेनेका दूसरा नाम था। परिवार और काम पानेकी आशा छोड़नी पड़ती थी। फाकामस्ती की तैयारी करनी पड़ती थी। फासिस्ट-वादके उदयके कारण जीवन और भी कठिन हो गया था। इन्हीं सब बातोंसे कम्युनिज्मके कुछ मौलिक सिद्धान्त साबित होते थे और पार्टीमें मेरा विश्वास बढ़ गया। कम्युनिस्टोंके षडयन्त्रकारी मनोभावके अनुरूप ही वातावरण और परिस्थितियाँ भी उन्हें मिल गईं। मुझे कई साल तक अपने देशमें ही विदेशी बनकर रहना पड़ा। पार्टीके सदस्यको अपना नाम बदलना पड़ता था और पुलिससे बचनेके लिए अपने परि-वार तथा बन्धु-बान्धवोंसे नाता तोड़कर दूर रहना पड़ता था। पार्टी ही हमारे लिए एकमात्र परिवार, पाठशाला एवं देवमन्दिर थी। पार्टीके बाहर जो संसार था, उसको ध्वंस करके एक नया संसार बनाने की तो

हमने कसम खाई ही थी। सेनामें अथवा धार्मिक संस्थाओंमें जिस प्रकार व्यक्ति अपनापन खोकर एक सामूहिक संस्थामें आत्मसात् हो जाता है, वही हमारे साथ भी हो रहा था। जितनी ही आफत हमपर आती थी, जितने ही बलिदान हमको करने पड़ते थे, उतनी ही हमारी श्रद्धा और भक्ति पार्टीके प्रति बढ़ती जाती थी। यह आदर्शवाद और आत्मोत्सर्ग की भावना समझकर ही कोई कम्युनिज्मका भेद जान सकता है। हमारे पूँजीवादी समाजमें जो भी प्राणशील व्यक्ति समाजकी कुरीतियां और अन्याय देखकर हिल उठते हैं, वे सारे कम्युनिस्ट पार्टीके आसामी हैं। कोई यदि चाहे कि उन व्यक्तियोंको भोग विलासका लालच देकर कम्युनिज्मसे छुटाया जा सकता है, तो निश्चय वह हार खाएगा। आदर्शवादका नशा कुछ और ही होता है।

कामिन्टर्नके भीतर चलनेवाली आरम्भिक कलहका मुझपर कोई असर नहीं पड़ा। देश-देश की जो पार्टियां लेनिन की २२ शर्त मान कर कामिन्टर्नमें शामिल हुई थीं, उनमें मतभेदके अनेक अंकुर थे। वे सब साम्राज्यवादी युद्धके कट्टर विरोधी थे और सुधारवादमें भी उनमें से किसीकी आस्था नहीं थी। किन्तु विप्लवका मार्ग सबने अपने-अपने देशके ऐतिहासिक विकासके अनुकूल ही खोजना चाहा। घोर दमन और सामाजिक वैषम्यके बीच पले रूसके बोल्शेविकों की मान्यताएं कुछ और थीं और पश्चिम यूरोपके मुक्त वातावरणमें रहनेवाले दलों की कुछ और। किन्तु रूस की पार्टीके अहंकार और निरंकुशता की भी सीमा नहीं थी। वे किसी भी प्रकारका मतभेद सहन करनेके लिए तैयार नहीं थे। इसलिए एकके बाद दूसरी अनेक कम्युनिस्ट पार्टियोंको कामिन्टर्न

छोड़नी पड़ी। किन्तु ये सब झगड़े जहाँ होते थे, वहाँके वातावरणसे मैं दूर था और इनका मुझपर कोई असर नहीं पड़ा। कामिन्टर्नमें बढ़ती हुई निरंकुशता और नौकरशाही देखकर बुरा तो मुझे भी लगता था, किन्तु उसके साथ सम्बन्ध विच्छेद न कर सकनेके कुछ कारण भी थे। एक तो मेरे जो साथी कामिन्टर्नके नामपर मारे गये थे अथवा जेलोंमें सड़ रहे थे, उनसे नाता तोड़नेके लिए मेरा मन नहीं माना। फिर इटलीमें सिवाय कम्युनिस्ट पार्टीके और कोई फासिस्टवादका विरोध करनेवाला नहीं था। मैंने यह भी देखा कि जो कम्युनिस्ट पार्टी छोड़कर चले गए, उनका किस प्रकार नैतिक अधःपतन हुआ। और यह आशा तो थी ही कि सोवियत् रूसके भीतर किसी घटनासे अथवा पश्चिमी यूरोपके कम्युनिस्टोंके असरसे कामिन्टर्नमें पुराना स्वास्थ्य किसी दिन अवश्य लौट आएगा !

१९२१ और १९२७ के बीच मैं बहुत बार मास्को गया और इटली की पार्टीके प्रतिनिधि की हैसियतसे कामिन्टर्न की कई सभाओंमें मैंने भाग लिया। मैंने यह देखा कि रूसके कम्युनिस्ट, यहाँ तक कि लेनिन और ट्राट्स्की जैसे महान् व्यक्ति भी, अपनेसे विरोधी बातोंके विषयमें इमान्दारी नहीं दिखाते थे। जो कोई भी उनसे मतभेद करनेका साहस करता था, उसीको वे गद्दार, अवसरवादी, दलाल इत्यादि कहकर गाली देने लग जाते थे। रूसके कम्युनिस्ट एक इमान्दार प्रतिपक्षी की बात समझ ही नहीं सकते। एक ताज्जुब की बात है। जो अपने आपको बुद्धिवादी और भौतिकवादी कहते हैं, वे ही झगड़ा होते ही नैतिक आचारकी दुहाई देने लगते हैं। इस पहेलीकी दूसरी तुलना हमको ईसाइ-

यतके इतिहासमें मिलती है जब कि अपनेसे मतभेद रखनेवाले धर्मप्राण व्यक्तियोंको भी मठाधीश लोग शैतानके चेले बताकर जला डालते थे।

१६२२ में जब मैं मास्कोसे लौट रहा था तो लेनिन की प्रसिद्ध साथिन अलेक्जान्डरा कोलोनताइसे मेरी बातें हुई। वह बोली—"यदि किसी दिन तुम अखबारमें खबर पढ़ो कि लेनिनने मुझपर क्रेमलिनसे चाँदीके बर्तन चुरानेका इलजाम लगाकर मुझे गिरफ्तार कर लिया है, तो तुम यही समझना कि मैं कृषि अथवा शिल्प सम्बन्धी किसी साधारण बातपर लेनिनसे बहस कर बैठी हूं"—श्रीमती कोलोन्ताईको पश्चिमी यूरोपमें रहकर यह मसखरेपन की आदत पड़ी थी और पश्चिमी यूरोपके लोगोंसे ही वह मज़ाक किया करती। किन्तु अन्य रूसी कम्युनिस्टोंको अपनी बात समझाना पश्चिमी यूरोपके लोगोंके लिए एक प्रकारसे असम्भव था। एक सरकारी प्रकाशनालय की अधिकारिणीको मैंने एकबार यह समझाना चाहा कि रूसमें लेखकोंको जिस निरुत्साह और दमनके वातावरणमें रहना पड़ता है, वह ठीक नहीं है। उसकी समझमें ही नहीं आया कि मैं कह क्या रहा हूँ। मैंने कुछ खुलासा करके कहा—

"स्वाधीनताका अर्थ है कि हम शंका उठा सकें, भूलें कर सकें, खोज और प्रयोग करें, किसी भी सत्ताकी हुक्मअदूली करनेकी छूट पा जाएं"

वह बेहद घबरा कर बोली—"किन्तु यह सब तो विप्लवविरोधी बातें हैं"—फिर कुछ आत्मसंयत होकर कहने लगी—"हमें खुशी है कि हमारे यहाँ आपकी सी स्वाधीनता नहीं है, बल्कि उसके बदलेमें कुछ अस्पताल बन गए हैं"

"स्वाधीनताका इस प्रकार सौदा नहीं किया जा सकता"—मैंने फिर समझाना चाहा "और अस्पताल तो और देशोंमें बने हैं, बनते ही रहते हैं"

वह ठहाका मारकर हँस पड़ी। बोली—"तुम भी मुझे क्या बेवकूफ बना रहे हो। भला अस्पताल और किसी देशमें कैसे हो सकते हैं"

बस, मेरी हिम्मत नहीं हुई कि आगे उसके साथ कुछ बहस करूँ।

फिर भी उन शुरूके दिनोंमें रूसके नौजवानोंका उत्साह देखते बनता था। वे विश्वास करते थे कि वे एक नए और सुखद संसारकी सृष्टि कर रहे हैं। उनको बादमें चलकर कितनी निराशा हुई होगी यह भी सोचनेकी बात है। उन्होंने देखा कि नए राज्यकी भीत उठ गई, नई आर्थिक व्यवस्थाका रूप भी निखर गया, विदेशी आक्रमण बन्द हो गए। किन्तु स्वाधीनता लौट आने की अपेक्षा एक निरंकुश तानाशाहीकी मनमानी बढ़ती ही गई और दमनका कुचक्र घोरसे घोरतर होता गया।

रूसी कम्युनिस्ट नवयुवक संघका प्रमुख, लाज़ार शाट्स्की, मेरा मित्र था। एक दिन वह कहने लगा—"मुझे अपने जन्मदिन पर बहुत अफ़-सोस होता है। मैं इतनी देरसे क्यों पैदा हुआ। कुछ पहले पैदा हुआ होता तो बड़ा होनेके कारण रूसकी १९०५ वाली अथवा १९२७ वाली क्रान्तिमें भाग ले पाता"

हम लेनिनकी क़ब्रके पास लाल चौकमें बैठे थे। मैंने कहा—"अफ़-सोस क्यों करते हो। रूसमें तो अभी भी क्रान्ति की आवश्यकता है"

"कैसी क्रान्ति? वह कब होगी?" वह पूछने लगा।

मैने लेनिनकी क़ब्रकी ओर उंगली उठाई। उस समय वह लकड़ी

की बनी थी। वहाँपर नित्यप्रति भूखे नंगे किसानोंकी एक लम्बी लाइन प्रदक्षिणा करती मिलती थी। मैंने कहा—"मेरा खयाल है तुम लेनिनसे प्यार करते हो। मैं भी लेनिनको जानता था और मेरे मानसमें उसकी याद ताज़ा है। तुम्हें मानना ही पड़ेगा कि लेनिनकी मृतदेहकी यह पूजा-अर्चना उसकी स्मृतिका अपमान है। और मास्को जैसी क्रान्तिकारी नगरी पर तो यह कलंकका टीका है। तुम एक पीपा तेल ले आओ। हम इस मृत देहको जलाकर इस अन्धविश्वासका अन्त कर देंगे। यही एक छोटी-मोटी क्रान्ति हो जाएगी"

मुझे आशा नहीं थी कि वह मेरी बात मानेगा। किन्तु मेरी बातको एक मज़ाक समझकर वह हंसेगा, ऐसा मैंने अवश्य सोचा था। किन्तु वह बिचारा तो मेरी बात सुनकर पीला पड़ गया और भयसे थरथर कांपने लगा। उसने मुझसे प्रार्थना की कि मैं इतनी बीभत्स बात फिर उससे कभी न कहूँ। और किसीसे भी नहीं। दस साल बाद जिनोवीवका सह-षडयन्त्रकारी ठहराकर शाट्स्कीके घरकी खानातलाशी हुई और वह पांच तल्लेके मकानसे कूद कर मर गया। मैंने लाल चौकमें अनेक बार जलूस और फौज पलटनकी परेड देखी है, किन्तु उन सबकी स्मृतियोंसे मेरे उस मित्रकी भावना तथा प्यारभरी भयभीत आवाजकी स्मृति आज भी मेरे हृदयमें अधिक शक्तिशाली है।

कामिन्टर्नका इतिहास लिखना बहुत दुरूह काम है और अभी वह कहानी पूरी भी नहीं हुई है। वहाँ मैंने जो-जो बातें सुनीं, उनमेंसे क्या लिखूँ, यह फैसला करना कठिन है। मुझे जो कुछ याद आता है वह शायद और लोगोंको अजीबसा लगे। ब्रिटेन की ट्रेड यूनियन की

केन्द्रीय समितिने अपनी शाखाओंको एक नोटिस दिया था, जिसके अनुसार यदि किसी शाखाने कम्युनिस्टों द्वारा भड़कायी हड़तालमें भाग लिया तो उसका बहिष्कार किया जाएगा। उस दिन कामिन्टर्न की एक सभामें इस बातपर चर्चा हो रही थी। ब्रिटेनकी कम्युनिस्ट पार्टीका प्रतिनिधि संशयमें पड़ा था। यदि कम्युनिस्टों द्वारा संचालित ट्रेड यूनियन हड़तालमें नहीं साथ देतीं तो वे ट्रेड यूनियन टूट जाएंगी। यदि साथ देती हैं तो बहिष्कार होनेके कारण मजदूर आन्दोलनपर उनका कोई असर नहीं रह जाएगा। रूसके प्रतिनिधि पियेट्निस्कीने सुझाव पेश किया कि ऊपरसे तो उन ट्रेड यूनियनोंको केन्द्रीय समितिकी बात मानकर फरमाबरदारीका दम भरना चाहिए, किन्तु हड़तालमें क्रियात्मक सहयोग देकर पार्टीका काम करना चाहिये। ब्रिटेनके प्रतिनिधिने घबराकर कहा कि यह तो झूठ बोलनेकी बात हुई। सब ठहाका मारकर हंसने लगे। वैसी मुक्त हंसी बहुत कम ही उन मनहूस दफ्तरोंमें सुननेको मिलती थी। सारे मास्कोंमें यह बात फैल गई और स्टालिन तथा अन्य रूसी अधिकारी उस अंग्रेजके भोलेपन पर पेट भरकर हँसे। वह बात मुझे हमेशा याद रही है। उस अंग्रेजके घबराए हुए शब्द—"यह झूठ बोलना ठीक नहीं"—मेरे कानोंमें गूँजते रहते हैं।

इटली की कम्युनिस्ट पार्टीके प्रतिनिधिकी हैसियतसे मैं बहुत बार रूस नहीं गया। मैं कामिन्टर्नके किसी विभागमें नहीं था। फिर भी दो-चार बार जाकर मैंने जो अधःपतन अपनी आँखोंसे देखा, वह किसी भी देखनेवाले की आँखोंसे छुपा नहीं रह सकता था। कामिन्टर्नके दो-चार लोगोंसे मेरा परिचय था। उनमें सर्वप्रथम एक फ्रांसीसी जैके

दोरियोका नाम मुझे याद आता है। वह प्रथम बार मुझे १९२१ में मास्कोमें मिला था। वह सीधासा, भावुक और दुर्बल नौजवान था। शायद इसीलिए उसको कामिन्टर्नमें लिया गया था। अन्यथा तो उससे अधिक शिक्षित, तीक्ष्णबुद्धि और मजबूत कम्युनिस्ट फ्रेंच पार्टीमें बहुत थे। कामिन्टर्नने उससे जो आशा की थी वह पूर्ण हुई। वह कामिन्टर्नके बड़े लोगोंमें गिना जाने लगा। किन्तु मैंने अपनी आँखोंसे देखा कि किस प्रकार उत्तरोत्तर उसका अधःपतन हुआ। अपनी विश्वासशीलता छोड़कर वह सब प्रकार की बेईमानी करने लगा और सब मामलोंपर उसका दृष्टिकोण प्रायः फासिस्ट हो चला। यदि उसके प्रति मैं अपनी घृणाको भुला सकूँ तो मैं उसकी जीवनी लिख सकता हूं। उस जीवनीका नाम होगा—"एक कम्युनिस्टका फासिस्टमें परिवर्तन"

एक दिन दोरियो मुझे मास्कोमें मिला। वह तभी चीनसे लौटकर आया था। उसने मुझे और कई अन्य मित्रोंको बताया कि किस प्रकार चीनमें कामिन्टर्नसे भारी भूलें हुई थीं। किन्तु अगले दिन कामिन्टर्नकी सभामें बोलते हुए वह ठीक उलटी बातें कहने लगा। बाहर निकलकर मुझसे मिला तो उसकी मुस्कराहटमें एक जुगुप्सा और आत्मसन्तोषका भाव था। कामिन्टर्नमें आगे चलकर जो परिवर्तन हुए, उनके कारण दोरियोंने कामिन्टर्न छोड़ दिया और लोगोंने फिर उसका असली रूप भी देखा। वह खुलेआम फासिस्ट बन गया। किन्तु दोरियो जैसे और अनेक लोग आज भी कामिन्टर्नमें हैं और कम्युनिस्ट पार्टियोंका नेतृत्व करते हैं। कामिन्टर्न की छठी कांग्रेसमें भाषण देते हुए इटलीके पामीरो सोगलियातीने[1] कामिन्टर्नके अधिकारियोंकी बेईमानियों की ओर संकेत

---

[1] आजकल भी आप इटलीकी कम्युनिस्ट पार्टीके कर्णधार हैं।

करते हुए जर्मन कवि गेटेके शब्द दोहराए थे। मरणासन्न जर्मन कविने कहा था—"प्रकाश चाहिए, और अधिक प्रकाश"—तोगलियातीको उस धृष्टताका फल भुगतना पड़ा। दो-चार साल तो वह अपनी बातपर अड़कर संघर्ष करता रहा और अपने आपको कम्युनिस्ट कहते हुए भी स्पष्ट-वादिता की ओर बढ़ने लगा, किन्तु अन्तमें उसे घुटने टिकाने पड़े और मुँह बन्द करना पड़ा।

कामिन्टर्नके भीतर विविध देशोंके लोग होनेसे जो मतभेद थे, सो तो थे ही। किन्तु रूसके भीतर होनेवाली समस्त घटनाएं भी बार-बार कामिन्टर्नमें फिसाद उठाती रहती थीं। लेनिनकी मृत्युके बाद यह अवश्यम्भावी था कि सोवियत् राष्ट्र की सत्ता कुछ गिने चुने लोगोंके हाथमें केन्द्रित हो जाए। कम्युनिस्ट पार्टीने रूसके भीतर और सब राज-नीतिक दलोंको मिटा दिया था और न रह गई थी लोक सभाएं जिनमें कि जनताके प्रतिनिधि स्वाधीन परामर्श एवं वादविवाद कर सकें। इस-लिए पार्टीके नेतृत्वका कुठाराघात सब ओर मैदान खाली देखकर कम्यु-निस्ट पार्टीपर ही बरसने लगा। पार्टीके भीतर जो कोई भी नेताओंसे थोड़ासा मतभेद रखता था, उसीकी शामत आने लगी। क्रान्ति अपने शत्रुओंको उदरस्थ करनेके बाद अपनी आगमें स्वयं जलने लगी। रूसके भाग्यमें शान्ति नहीं बदी थी। संघर्ष जारी रहा।

मई १६२७ में मैं तोगलियातीके साथ इटलीकी कम्युनिस्ट पार्टीकी ओरसे कामिन्टर्नकी एक विशेष सभामें भाग लेने गया। तोगलियाती उस समय पेरिससे इटलीकी पार्टीका संचालन कर रहे थे और मैं इटलीके भीतर रहकर पार्टीका खुफिया कार्यक्रम चलाता था। हम दोनों बर्लिनमें

मिले और साथ-साथ मास्को पहुंचे। कहनेके लिये तो कामिन्टर्नकी वह विशेष सभा इसलिए बुलाई गई थी कि आसन्न साम्राज्यवादी युद्धका सामना करनेके लिये कम्युनिस्टोंको क्या नीति अपनानी चाहिये, इस बातका निर्णय किया जाए। किन्तु वास्तवमें ट्राट्स्की और ज़िनोवीवका पत्ता काटनेके लिये ही वह एक षडयन्त्र था। पूरी सभाके सामने कार्यक्रम रखनेके पहले एक छोटा-सा गुट हमेशा सब कुछ तय कर लिया करता था। उस गुटमें कुछ बाहरकी पार्टियोंके नेता भी रहते थे। इस बार तोगलियातीको बुलाया गया था। तोगलियाती हठ करके मुझे भी ले गया। कामिन्टर्नके नियमके अनुसार इटलीकी पार्टीकी ओरसे केवल वे ही उस गुटकी मीटिंगमें भाग ले सकते थे। किन्तु तोगलियातीको आशंका थी कि न जाने वहाँ क्या-क्या सवाल उठें और उसने मुझे साथ ले जाना जरूरी समझा, क्योंकि पार्टीका असली काम तो इटलीके भीतर मेरी ही देख-रेखमें होता था। पहली बार मीटिंगमें पहुँचे तो मुझे ऐसा लगा जैसे हम देरसे आए हों। कामिन्टर्नके दफ्तरके छोटेसे कमरेमें कुछ लोग बैठे थे। जर्मनीके थेलमैन सभापति थे। उन्होंने सर्वप्रथम ट्राट्स्कीके विरुद्ध एक प्रस्तावका मसविदा सबके सामने रक्खा। ट्राट्स्की ने रूसी पार्टीको एक पत्र लिखा था। प्रस्तावमें उसी पत्रको लेकर उसकी भर्त्सना की गई थी। रूसी पार्टीकी ओरसे स्टालिन, रिकोव, बुखारिन एवं मेन्विल्स्की मीटिंगमें आए थे। थेलमैनने प्रस्ताव पढ़नेके बाद पूछा कि हम सब लोग उससे सहमत हैं या नहीं। फिनलैण्डके ओटोमर कुजीनेने कहा कि प्रस्ताव जितना स्पष्ट और कड़ा होना चाहिये, वैसा नहीं है। "हमको साफ शब्दोंमें कहना चाहिये कि ट्राट्स्कीने जो पत्र रूसी

कम्युनिस्ट पार्टीके पास भेजा है” कुजीनेने सलाह दी, “वह सरासर गद्दारीसे भरा है और उस आदमीका लिखा हुआ है, जिसका मजदूर आन्दोलनसे कोई सम्पर्क नहीं रह गया”—और किसीसे कुछ कहनेका अनुरोध थेलमैनने नहीं किया। मैं चुप न रह सका। तोगलियातीकी अनुमति लेकर मैंने कह दिया—“माफ कीजिये, हम देरसे आए हैं, इसलिये हमको मालूम नहीं कि उस पत्रमें क्या लिखा है, जिसकी भर्त्सना आप करना चाहते हैं”—थेलमैनने उत्तर दिया,—“वह पत्र तो हममेंसे किसीने भी नहीं देखा है”

मुझे अपने कानों पर विश्वास करना मुश्किल हो गया। मैंने फिर दोहराया—“शायद ट्राट्स्कीके पत्रमें ऐसी बातें लिखी हों, जिनकी भर्त्सना हमें करनी चाहिये। किन्तु पत्रको पढ़े बिना भला हम क्योंकर कुछ कह सकते हैं”

थेलमैन फिर बोले—“यहाँ पर मौजूद रूसी प्रतिनिधियोंको छोड़कर और कोई भी नहीं जानता कि उस पत्रमें क्या लिखा है”—मुझे विश्वास होने लगा कि अवश्य ही थेलमैनकी बातको हमें फ्रैंच भाषामें समझानेमें अनुवादकसे भूल हो रही है। इसलिये मैंने अनुवादकसे कहा—“यह असम्भव है कि थेलमैन ऐसा कह रहे हों। कृपया उनकी बातका शब्दशः अनुवाद दोहराइए”

अबकी बार स्टालिन बोले। वे कमरेके एक ओर चुपचाप खड़े थे। कमरेमें केवल वे ही एक व्यक्ति थे, जो शान्त और अनुत्तेजित दीख पड़ते थे। वे कहने लगे—“हमारी पार्टीने यह फैसला किया है कि ट्राट्स्कीके उस पत्रका अनुवाद करके कामिन्टर्नके अन्य प्रतिनिधियोंको

दिखाना उचित नहीं होगा, क्योंकि उस पत्रमें सोवियत् शासनकी नीति सम्बन्धी कुछ बातें भी हैं"

यहाँ यह कह देना चाहता हूँ कि आगे चलकर स्वयं ट्राट्स्कीने उस पत्रको विदेशमें जाकर प्रकाशित किया और कोई भी उसे पढ़कर देख सकता है कि उसमें सोवियत् शासनके सम्बन्धमें एक शब्द भी नहीं है। हाँ उसमें स्टालिन और कामिन्टर्नकी चीन सम्बन्धी नीतिकी कड़ी आलोचना अवश्य है। २५ अप्रेल १९२७ के दिन मास्को सोवियत् सभामें स्टालिनने च्यॉंग काई शेक[१] के गुण गाए थे और कुमिन्टाँग[२] पार्टीमें अपना पूर्ण विश्वास जताया था। एक सप्ताह बाद चीनके राष्ट्रवादी नेताने अपना असली रूप दिखाया। कम्युनिस्ट लोग कुमिन्टाँगसे निकाले गए, हजारों मजदूरोंकी शांघाई और वूहानमें हत्या हुई। शायद इसीलिये स्टालिन वह पत्र किसीको दिखाना नहीं चाहते थे।

थेलमैनने मुझसे पूछा कि क्या स्टालिनका उत्तर मेरे लिये सन्तोषप्रद है। मैंने उत्तर दिया—"मैं रूसकी कम्युनिस्ट पार्टीको अपने देश सम्बन्धी कोई भी कागज-पत्र गुप्त रखनेका पूर्ण अधिकार देता हूँ। किन्तु मेरी समझमें नहीं आता कि अन्य प्रतिनिधि किस प्रकार एक गुप्त बातकी भर्त्सना कर सकते हैं"—तोगलियाती मुझसे सहमत जान पड़े। किन्तु अन्य लोगोंको हम दोनों पर बहुत क्रोध आ रहा था। विशेषकर फिनलैण्ड, बलगारिया और हंगरीके प्रतिनिधि लाल-पीले हो गये।

---

१. चीनके राष्ट्रवादी नेता।

२. चीनकी राष्ट्रवादी पार्टी।

कुजीने लाल आँखें निकालकर बोला—"मुझे विश्वास नहीं होता कि सिलोने जैसे बूर्जुआ मनोवृत्तिके लोग भी क्रान्ति सेनाके सदस्य हो सकते हैं"—मुझे बूर्जुआ कहते समय उसके मुख पर व्यङ्ग, घृणा और जुगुप्साके भाव उमड़ आए।

अकेले स्टालिन अब भी शान्त रहे। बोले—"यदि एक भी प्रतिनिधि प्रस्तावका विरोध करता है, तो प्रस्ताव पेश नहीं होना चाहिये। शायद हमारे इटालियन साथी हमारी भीतरी बातोंसे परिचित नहीं हैं। मेरा मत है कि सभा कल तकके लिये स्थगित कर दी जाए और हममेंसे एक किसीको हमारी भीतरी बातें इटालियन बन्धुओंको समझानेका उत्तरदायित्व लेना चाहिये"

वह उत्तरदायित्व बलगारियाके वासिल कोलारोवने संभाला। उसने साँझको हमें चायका निमन्त्रण दिया। भूमिका बाँधे बिना वह मुस्कराकर बोला—"स्पष्ट बात होनी चाहिये। आप क्या समझते हैं कि मैंने वह पत्र पढ़ा है? नहीं, मैंने नहीं पढ़ा। और सच पूछिए तो मैं उसे पढ़ना भी नहीं चाहता। यहीं नहीं, यदि स्वयं ट्राट्स्की वह पत्र मेरे पास भेज दें, तो भी मैं नहीं पढ़ूंगा। बात पत्र पढ़ने-पढ़ानेकी है ही नहीं। मैं जानता हूं कि इटलीमें आप लोग बालकी खाल निकाला करते हैं। किन्तु यहाँ उस सबके लिये भला किसे फुर्सत है। सचाई यह है कि रूसकी पार्टीमें शक्ति-संचयके लिये दो दलोंमें घोर घमासान मचा हुआ है। आपको उनमेंसे एक दलको चुनना होगा। वह पत्र पढ़कर भला क्या होगा? चीनकी क्रान्तिके विषयमें सच क्या है, ठीक कौन था और ग़लत कौन—ये सब बातें भी व्यर्थ हैं। उन दो दलोंके बीच तो फैसला

होनेसे रहा। बस आपको निर्णय करना है कि उनमेंसे आप किसका साथ देंगे। मैंने तो निर्णय कर लिया है। जिधर बहुमत, उधर ही मैं भी। अल्पमत वाले लोग कुछ भी कहें, कितने ही पत्र लिखें, मेरा फैसला तो बदलता नहीं। इन सब फालतू बातोंमें मुझे कोई दिलचस्पी नहीं। हम सत्य और मिथ्याका निर्णय करने यहाँ नहीं आए"

रुककर कोलारोवने फिर हमारे प्यालोंमें चाय डाली। वह हमारी ओर इस प्रकार देख रहा था, जैसे स्कूल मास्टर बिगड़ैल छात्रोंकी ओर देखता है। मेरी ओर विशेष ध्यान देते हुए उसने पूछा—"मेरी बात समझमें आई या नहीं?"

"हाँ, बहुत अच्छी तरह"—मैंने कहा।

"तो आप मेरी बात मानते हैं"—वह बोला।

"नहीं"—मैंने उत्तर दिया।

"भला क्यों नहीं?"—उसने पूछा।

"तो क्या मैं आपको यह समझा दूं कि मैं फ़ासिज्मका विरोध क्यों करता हूँ?"—मैं बोला।

कोलारोवने क्रोधकी मुद्रा बनाई। तोगलियातीने किन्तु नर्मीके साथ परन्तु स्पष्ट रूपमें मेरा अनुमोदन करते हुए कहा—"यह बहुमत और अल्पमतका साथ देनेका सवाल नहीं है। सभी प्रश्नोंका एक राजनीतिक पक्ष होता है। वही हम जानना चाहते हैं"

कोलारोव मुस्कराकर हम पर दयाभाव दिखाते हुए बोला—"आप लोग अभी कच्ची उमरके हैं। आप जानते ही नहीं कि राजनीति किस चिड़ियाका नाम है"

अगले दिन फिर वही पुराना नाटक दोहराया गया। जिस कमरेमें हम दस-बारह प्रतिनिधि बैठे थे, वहाँ एक उत्तापका-सा वातावरण हो उठा था। स्टालिनने कोलारोवसे पूछा—"आपने इटालियन साथियोंको बात समझा दी है न?" कोलारोवने हामी भर दी। स्टालिन फिर कहने लगे—"यदि एक भी प्रतिनिधि प्रस्तावका विरोध करता है, तो हम कामिन्टर्नकी भरी सभामें उसे नहीं रखना चाहते। ट्राट्स्कीके विरुद्ध प्रस्ताव पर एकमत होना अत्यन्त आवश्यक है। क्या हमारे इटालियन साथी प्रस्तावका समर्थन करते हैं?"

मैंने तोगलियातीसे सलाह करके कहा—"प्रस्ताव पर अपनी राय जतानेसे पहले हम वह पत्र देख लेना उचित समझते हैं"—फ्रैंच और स्विस प्रतिनिधियोंने भी हमारा साथ दिया। स्टालिनने प्रस्ताव न पेश करनेका फैसला दे डाला। और हमारे सिर पर तूफान फट पड़ा। थेलमैनने कहा कि हमारा रुख देखकर समझा जा सकता है कि किस प्रकार इटलीमें हमारा फासिज्मके विरुद्ध संघर्ष सर्वथा गलत है और किस प्रकार हमारी गलतियोंके कारण ही फासिज्म इटलीमें जड़ जमाए बैठा है। उन्होंने प्रस्ताव किया कि इटलीकी पार्टीकी नीतिकी पूरी जाँच होनी चाहिए। तुरन्त हमारी छीछालेदर होने लगी और यह फैसला हुआ कि हमारी पार्टी बूर्जुआ मनोवृत्तिसे ओत-प्रोत है।

तोगलियातीने फैसला किया कि हमें अपने दृष्टिकोणका खुलासा एक पत्र द्वारा रूसी पार्टीके दफ्तरमें भेज देना चाहिए। पत्रमें हमने समझाया कि हम रूसकी पार्टीका नेतृत्व पूर्णतया स्वीकृत करते हुए यह कहना चाहते हैं कि नेतृत्वके विशेष उत्तरदायित्व भी होते हैं और नेताओंको

इस प्रकार अपने अधिकारोंका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। पत्र बुखारिनके पास पहुँचा। उसने हमको तुरन्त ही बुलाकर कहा कि यदि हम अपनी बिगड़ी हुई हालतको और बिगाड़ना नहीं चाहते, तो वह पत्र हमें तुरन्त लौटा लेना चाहिए।

मेरा दिल टूट गया। मेरे मनमें बहुत से प्रश्न उठने लगे। क्या हम इतना नीचे गिर गये हैं? क्या इसी दिन के लिए हमारे साथी जेलोंमें सड़कर मरे और मर रहे हैं? क्या इसीलिए हम अपने देशमें भी विदेशियोंसे बनकर एक गुप्त, अवारा और भयसे भरा जीवन व्यतीत कर रहे हैं? हतोत्साह होकर मेरी विचारशक्ति तो क्या शारीरिक शक्ति भी जवाब देने लगी।

मास्को छोड़नेसे पूर्व एक इटालियन मजदूर मेरे पास आया। फासिस्ट सरकारने उसको लम्बे कारावासका दण्ड दिया था और इटलीसे भागकर उसने मास्को में शरण ली थी। उसने मुझे बताया कि जिस कारखानेमें वह काम करता था, वहाँके मजदूरोंकी दशा अत्यन्त शोचनीय थी। वह कहने लगा—"सब प्रकारकी वस्तुओंका अभाव तो मुझे नहीं खलता, क्योंकि आखिर वह तो उत्पादन बढ़ने पर ही दूर हो सकता है, जो किसी अकेलेके बसकी बात नहीं। किन्तु मैनेजर लोग मनमानी करते हैं, मजदूरोंकी एक नहीं सुनी जाती और न उनकी कोई संस्था है, जो उनके अधिकारोंकी रक्षा कर सके। बल्कि पूंजीवादी देशोंमें मजदूरोंकी हालत कहीं अच्छी है। यहाँ मजदूर राज्यका जो शोर मचाया जाता है, वह थोथी बकवादके अतिरिक्त कुछ नहीं"

लौटते हुए बर्लिनके एक समाचार-पत्रमें मैंने पढ़ा कि कामिन्टर्नने ट्राट्स्कीके एक पत्रको लेकर उसकी खूब निन्दा की है। मैं जर्मन पार्टी

के दफ्तरमें थेलमैंनके पास जाकर बिगड़कर बोला कि यह सब झूठ है। उसने समझाया कि कामिन्टर्नकी धाराओंके अनुगत विशेष अवसरों पर प्रेसीडेन्टको कामिन्टर्न के नामपर प्रस्ताव घोषित करनेका हक है। मैं चुपचाप चला आया। बर्लिनमें कागज-पत्र तैयार होने तक मैं और भी कई दिन रुका। अखबारोंमें मैंने पढ़ा कि अमरीकन, हंगेरियन और चेक कम्युनिस्ट पार्टियोंने ट्राट्स्कीके पत्रकी कड़ी निन्दा की है। मैंने फिर थेलमैंनसे पूछा कि आखिरकार क्या वह पत्र सबको दिखा दिया गया। उसने कहा—"नहीं। किन्तु अमरीकन, हंगेरियन और चेक कम्युनिस्टों ने आपको दिखा दिया कि कम्युनिस्ट अनुशासनके क्या मायने होते हैं?" थेलमैंनने व्यंग किए बिना बड़ी गम्भीरतासे ये शब्द कहे थे। मुझे आभास हुआ कि हम किस बीहड़ में जा पहुँचे हैं।

मेरा स्वास्थ्य खराब था, इसलिए मुझे एक स्विस अस्पतालमें जाना पड़ा और समस्त राजनीतिक कार्यवाही बन्द करनी पड़ी। एक दिन हस्पतालके पास एक गाँवमें तोगलियातीसे मेरी मुलाकात हुई। उसने मुझे अपने रुखकी बात बहुत स्पष्ट भाषामें समझाई। कहने लगा—"मैं मानता हूँ कि कामिन्टर्नकी हालत इस वक्त सन्तोषजनक नहीं है। मुझे भी अच्छा नहीं लगता। किन्तु हमारे सद्भावसे ही कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। इतिहासकी अपनी धारा है। मजदूर-क्रान्ति अपना रूप ले रही है। यदि जो कुछ हो रहा है, वह हमें अच्छा नहीं लगता, तो कसूर हमारा ही है। इसके सिवाय चारा भी क्या है। जो कम्युनिस्ट कामिन्टर्नसे विद्रोह कर बैठे, उनका अन्त भी हमने देख लिया। समाज-वादी गणतन्त्रकी हालत भी हम देख ही रहे हैं, कितनी गन्दी है"

मेरा उत्तर इतना तर्कबद्ध नहीं था। तोगालियातीकी दलीलें राजनीतिक थीं। लेकिन मेरे भीतर जो तूफान उठा था, वह तो राजनीतिके परे जा चुका था। इतिहासके सामने सिर ही झुकाना ठहरा, तो हमने कम्युनिस्ट बनकर विद्रोह ही क्यों किया था। इतिहासके अमानुषिक सत्यको झुठलानेके लिए ही तो हम मैदानमें उतरे थे। मेरी हालत उस आदमी-जैसी थी, जिसके सिरपर कोई भारी चोट पड़ी हो; किन्तु फिर भी जो यह समझे बिना कि क्या हुआ है, चलता-फिरता और बातें करता रहे। कई साल तक हृदय-मन्थन चलता रहा, तब कहीं सत्यका साक्षात्कार हुआ। अब भी मैं उस साक्षात्कारको स्पष्टतर बनानेकी चेष्टा करता रहता हूं। यदि मैंने पुस्तकें लिखी हैं, तो अपने-आप अच्छी तरह सत्यका साक्षात्कार करनेके लिए और औरोंको करानेके लिए। अब भी मेरी खोजका अन्त नहीं आया, यह मैं भली-भाँति जानता हूँ। जिस दिन मैंने कम्युनिस्ट पार्टी छोड़ी, वह दिन मेरे जीवनमें अत्यन्त खेदका दिन था। मानो मैंने अपनी बीती हुई जवानीपर आँसू बहाए हों। मेरे इलाकेमें शोक देर तक मनानेकी परम्परा है। जो कम्युनिस्ट पार्टीका गुप्त षडयन्त्र चला चुका हो, उसके लिए वह गहन अनुभूति भुलाना अतीव दुष्कर काम है। वह अनुभूति जीवन-भर पीछा नहीं छोड़ती। जो कम्युनिस्ट पार्टी छोड़े हुए लोगोंको जानते हैं, वे मेरी बात समझ जाएँगे। वे एक अलग जातके लोग होते हैं, जैसे फौजसे निकले हुए अफसर अथवा पदच्युत पादरी। ऐसे लोगोंकी संख्या आज बहुत बड़ी है। एक दिन मज़ाकमें मैंने तोगलियातीसे कहा भी था कि अन्तिम लड़ाई कम्युनिस्टों और विगत-कम्युनिस्टोंके बीच ठनेगी।

पार्टी छोड़नेके बाद मैंने उन दलोंमें भरती होनेसे इन्कार कर दिया, जिनमें कि अधिकतर विगत-कम्युनिस्ट आज पाए जाते हैं। इस बातका मुझे अफसोस भी नहीं है। इन छोटे-छोटे दलोंकी कहानी मैं जानता हूँ। इनमें कम्युनिस्ट पार्टीके सारे दुर्गुण बचे रहते हैं। वही कट्टरता, वही केन्द्रीयकरण, वही थोथी बातें। पर कम्युनिस्ट पार्टीको अपनी मजदूर संस्थाओंसे जो बल और प्रकाश मिलता रहता है, वह इन दलोंके पास नहीं रहता। कम्युनिज्मका पूर्ण विरोध करनेके नामपर बहुत सारे विगत-कम्युनिस्ट तो अपनी प्रथम प्रेरणासे बहुत दूर जाकर फासिस्ट तक हो गए हैं।

कम्युनिस्ट पार्टीसे अलग होनेका कारण एक हद तक कुछ परिस्थि-तियाँ थीं। किन्तु चिन्तनने मेरी प्रेरणाको और भी गहन बना डाला है और आज मैं यह नहीं कह सकता कि कुछ परिस्थितियाँ लेकर ही मैं पार्टीसे अलग हुआ। समाजवादमें मेरा विश्वास आज पहलेकी अपेक्षा कहीं दृढ़तर है। आज मैं लौटकर पुनः वह प्रेरणा पा गया हूं, जिसके कारण मैंने विद्रोह किया था। मैं भाग्य जैसी चीज़ नहीं मानता। मैं चाहता हूँ कि हमारी नैतिक धारणाएँ, हमारे व्यक्तिगत स्वार्थ और परि-वार इत्यादिके परे, समस्त मानवताको अपना केन्द्र बनाकर चलें। सारे मानव-समाजमें एक भ्रातृ-भावके लिए मैं तड़पता हूँ। और मैं मानता हूँ कि आदमी सबके ऊपर है। आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियाँ, जो आज उसका गला दबाती हैं, उसकी दास बनेंगी, तभी मानवका कल्याण होगा। साल-पर-साल बीतते गए हैं और मुझमें मानवकी श्रेष्ठता के प्रति एक श्रद्धाका भाव तीव्रतर होता रहा है। आदमीके भीतर जो

रिचर्ड राइट

जीवनी : अमेरिकाके संयुक्तराष्ट्रके मिसीसिपी प्रान्तकी एक जमींदारीमें चार सितम्बर सन् १६०८ को इनका जन्म हुआ था। पिता जमींदारी पर मजदूरी करनेवाले दरिद्र नीग्रो[1] थे। माता धोबिनका काम करती थीं। पिताके घर-त्याग करके चले जाने पर माताने ही इनकी देख-रेख की। किन्तु उनको लकवा मार गया और दादीकी छत्रछायामें ये स्कूलमें भर्ती हुए। पन्द्रह सालकी आयुमें ये घर छोड़ कर मेम्फिस नगरमें काम पर चले गए और वहीं इन्होंने एक प्रसिद्ध लेखककी एक पुस्तक पढ़ कर स्वयं लेखक बननेका बीड़ा उठाया। डेढ़ सौ डालर लेकर ये शिकागो जा पहुँचे और कुछ-कुछ काम करके निर्वाह करने लगे। मन्दीने इनको बेकार बना डाला। उन्हीं दिनों इन्होंने कम्युनिस्ट पार्टीमें नाम लिखाया था। इनकी लिखी कई पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हैं।

---

१ अमेरिकाकी काली जाति।

कुछ श्वेतांग लड़कोंने एक रातको मुझे शिकागोके एक साधारण होटलमें जाकर संसारकी परिस्थिति पर वाद-विवाद करनेका निमन्त्रण दिया। शिकागोके डाकघरमें काम करते समय उन लड़कोंसे मेरा परिचय हुआ था। हम प्रायः दस लोग इकट्ठे होकर खाते-पीते और बात करते रहे। मुझे यह जान कर आश्चर्य हुआ कि उन लड़कोंमेंसे अधिकांश कम्युनिस्ट पार्टीके सदस्य बन चुके थे। मैंने नीग्रो कम्युनिस्टोंकी बेवकूफियां बता कर उन्हें हिलाना चाहा। किन्तु उन लोगोंने मुझे समझाया कि वे बेवकूफियाँ नहीं, हथकण्डे थे और मुझे उनकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। मैं घपलेमें पड़ गया।

एक और रातको एक यहूदी लड़के सोलने बताया कि उसकी एक कहानी 'एनविल' नामकी पत्रिकामें स्वीकृत हो गयी है। पत्रिकाके सम्पादक जैक कानराय थे। हमको ताजुब्ब हुआ। सोलने यह भी कहा कि वह एक क्रान्तिकारी कला-केन्द्रका सदस्य बन चुका है। उस केन्द्रका नाम था जान रीड क्लब, जिसमें भरती होनेके लिए सोलने हम सबसे भी अनुरोध किया।

"वे लोग तुम्हें अच्छे लगेंगे"—सोल बोला।

"किन्तु मैं किसी संस्थाके चक्करमें नहीं पड़ना चाहता"—मैंने कहा।

"देख लो। वे तुम्हारे लेखन कार्यमें तुम्हारी सहायता कर सकते हैं" —सोलने सुझाया।

"मुझे कोई नहीं बता सकता कि मैं क्या और कैसे लिखूं"—मैं गुर्राया

"ओहो, चल कर देख तो लो। तुम्हारा बिगड़ता क्या है?"—उसने जोर दिया।

मुझे ऐसा लगता था कि कम्युनिस्टोंको नीग्रो लोगोंसे सच्ची हमदर्दी नहीं है। मैं अत्यन्त संशयग्रस्त था। किसी श्वेतांगके मुँहसे नीग्रो जातिकी बुराई मैं सुन सकता था, किन्तु कोई श्वेतांग जब कहने लगता कि वह नीग्रो लोगोंका आदर करता है, तो उस पर मुझे सन्देह होने लगता। एक रातको मैं पढ़ते-पढ़ते थक गया तो एक दर्शकके भावसे जान रीड क्लब जा पहुंचा। जगह खोजनेमें कष्ट नहीं उठाना पड़ा। एक अन्धेरा, डरावना सा जीना चढ़ कर जाना पड़ता था। ऐसी गन्दी जगहमें क्या कामकी बात हो सकती है, मैं यही नहीं समझ पा रहा था। बोर्ड पढ़ कर मैंने दरवाजा खोला तो देखता रह गया। कागज और बुझी हुई सिगरेट चारों ओर फैले थे। दीवारोंके सहारे कुछ बैञ्च पड़े थे और दीवारों पर कुछ गहरे रंगोंमें झण्डे लिए हुए मजदूरोंके चित्र बने थे। उनके मुख हुँकारसे खुले थे और उनके पाँवके नीचे बिछे थे अनेक शहर। किसीने "हल्लो" कहा और मैंने मुड़ कर एक श्वेतांग व्यक्तिको देखा। मैंने कहा—"मेरा एक मित्र इस क्लबका सदस्य है। उसीने बुलाया था मुझे। उसका नाम है सोल।"

"आपका हम स्वागत करते हैं"—वह बोला—"आज वाद-विवाद नहीं हो रहा। एक सम्पादकीय सभा चल रही है। क्या आप चित्र आंकते हैं?"—वह आदमी कुछ भूरा-सा था और उसके मुख पर मोंछे थीं।

"नहीं! मैं तो कुछ लिखनेकी चेष्टा करता हूँ"—मैंने उत्तर दिया।

"तब तो हमारी पत्रिका 'वाममार्गी मोरचा' की सम्पादकीय सभामें भाग लीजिए"—उसने सलाह दी।

"किन्तु सम्पादन इत्यादि मैं कुछ नहीं जानता"—मैंने कहा।

"सीख तो सकते हैं आप"—वह बोला।

मैं सन्देहके भावसे उसे घूर कर बोला—"मैं फिजूलमें टांग अड़ाना नहीं चाहता"

"मेरा नाम ग्रीन है"—उसने कहा। मैंने भी उसे अपना नाम बता दिया और उससे हाथ मिलाया। वह एक आलमारीमेंसे एक गड्डर पत्रिकाएँ निकाल कर ले आया। बोला—"जनता नामक पत्रिकाके कुछ पुराने अंक है। क्या कभी आपने यह पत्रिका पढ़ी है?"

मैंने सिर हिलाया तो वह कहने लगा—"अमेरिकाके श्रेष्ठतम लेखक इसमें अपने लेख देते हैं"—एक और पत्रिका 'अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य' की प्रतियाँ देते हुए वह बोला—"यह देखिए जीद[1] और गोर्की[2] के लेख....

मैंने पढ़नेका वायदा किया। तब एक दफ्तरमें ले जाकर उसने कुछ लोगोंसे मेरा परिचय कराया। उन नव परिचितोंमें एक यहूदी लड़का था जो आगे चल कर राष्ट्रका एक विख्यात चित्रकार बना। एक और लड़का बड़ा होकर प्रसिद्ध संगीतज्ञ हुआ। तीसरा लड़का अपनी पार्टीका बहुत सफल उपन्यासकार बना। और चौथा लड़का वह यहूदी था, जिसने नाजी जर्मनी द्वारा चेकोस्लोवाकियाकी हत्याके सम्बन्धमें एक प्रख्यात छायाचित्र बनाया। उस दिन उन लोगोंसे मिला, जिनके साथ कि बहुत वर्षों तक मेरा सम्पर्क रहा है और जो मेरे जीवनमें निकटतम सहचर रहे हैं। मैं एक कोनेमें बैठ कर उनकी सम्पादकीय मन्त्रणा सुनता रहा। मनमें सन्देह था कि नीग्रो होनेके कारण ही तो कहीं वे लोग मेरा सम्मान

---

१ नोबल पुरस्कृत फ्रैंच लेखक।

२ रूसके प्रसिद्ध लेखक।

नहीं कर रहे हैं। मैंने इरादा किया कि मुझे सतर्क रह कर ही उनके साथ बर्तना होगा। उन्होंने मुझे अपनी पत्रिकामें कुछ लिखनेके लिए कहा। मैंने चेष्टा करनेका वायदा किया। मीटिंग समाप्त होने पर कई लड़कियोंसे भी मैं मिला। एक तो किसी विज्ञापन संस्थामें काम करनेवाली आयरिश लड़की थी। दूसरी समाज-सेवा करती थी। तीसरी स्कूलकी अध्यापिका और चौथी एक प्रमुख प्रोफेसरकी पत्नी थी। इस स्तरके लोगोंके घरोंमें मैं चाकरका काम कर चुका था, इसलिए मुझे उनसे दुराव अनुभव हुआ। मैं उनके दिलकी बात जानना चाहता था, किन्तु उनके व्यवहारमें मुझे अनुकम्पा इत्यादिका कोई लेश नहीं मिला।

घर लौटा तो इन अजीब श्वेतांग लोगों पर विचार करता रहा। ये नीग्रो लोगोंको क्या समझते हैं? मैंने बिस्तरमें पड़ कर वे पत्रिकाएं पढ़ीं और मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि दलित वंचित लोगोंके जीवनकी सच्ची क़हानी कहनेवाले लोग भी आखिर दुनियाँमें हैं। जब मैं रोटीको तरसता था, तो मेरे मनमें प्रश्न उठा करता कि क्या संसारके दलित वंचित भी कभी विचार, भावना और कर्मकी एकता प्राप्त करेंगे। अब मुझे पता लगा कि संसारके षष्ठांश भागमें तो वह एकता विजय पा चुकी है। वह क्रान्तिकी वाणी पत्रिकाओंके पन्नों परसे उछल-उछल कर मेरे ऊपर भरपूर चोट मारने लगी।

कम्युनिज्मके अर्थशास्त्र, ट्रेडयूनियन संगठन अथवा गुप्त कार्यवाहीकी रोमान्स इत्यादिने मुझे आकृष्ट नहीं किया। जिस बातका मुझ पर असर हुआ वह थी यह देखना कि संसारके अन्य देशोंके मजदूरोंकी अनुभूतियाँ भी हमारे जैसी हैं, और इन बिखरे लोगोंको एक सूत्रमें बाँधना सम्भव

है। मुझे ऐसा लगा कि क्रान्तिकी इस धारामें बह कर ही नीग्रो जाति किसी किनारे पर पहुँच सकती है, नीग्रो जातिकी अनुभूतिका कोई महत्व हो सकता है। उन पत्रिकाओंमें दलित वंचितोंके लिए अपनी अनुभूतियोंके आदान-प्रदानका सन्देश था। सुधारवादी तोतारटन्त मैंने उनमें नहीं देखी। वहाँ यह नहीं कहा गया था—"हमारे जैसे बन जाओ तो शायद हम तुमको पसन्द कर सकें"—वहाँ लिखा था—"तुम जो कुछ हो वही परिचय देनेका साहस यदि तुम जुटा पाए तो तुम देखोगे कि तुम अकेले नहीं हो"—यह तो जीवनका सन्देश था, जीवनमें विश्वास रखनेकी प्रेरणा थी।

देर रात तक मैं पढ़ता रहा। भोरमें मैंने उठ कर टाइपराइटर पर कागज चढ़ाया। जीवनमें सर्वप्रथम मुझे विश्वास हुआ कि मेरी बात सुननेवाले लोग भी हैं। मैंने एक तड़फड़ाती हुई, ग्राम्य और अतुकान्त कविता लिख डाली। खेलते, काम करते, लड़ते और मरते नीग्रो लोगोंकी कल्पनाको मैंने भाषाबद्ध कर डाला। इसी समय किसीने द्वार खटखटाया। माँ पुकार रही थी—"रिचर्ड, तुम बीमार हो क्या?"

"नहीं माँ, पढ़ रहा हूँ"

माँ ने द्वार खोला और मेरे तकिए पर पत्रिकाओंका ढेर देख कर ठिठक गई। पूछने लगी—"इन तमाम कागज पत्रों पर तुम रुपया तो नहीं बरबाद कर रहे हो?"

"नहीं। किसीने मुझे दिए हैं"

वह लंगड़ाती हुई मेरे बिस्तर तक आई और एक प्रति उठाकर उसमें मई दिवसके एक कार्टूनको देखने लगी। चश्मा ठीक करके बहुत

देर तक वह देखती रही। फिर घबराकर बोली—"हे भगवान, यह सब क्या है ?"

"क्या बात है, माँ ?"

"यह सब क्या है ? इस आदमीको क्या हुआ है ?"—पत्रिका पर छपे चित्रको मुझे दिखाती हुई वह पूछने लगी।

मैंने कम्युनिस्ट कलाकार द्वारा आँका हुआ वह कार्टून ध्यानसे देखा। चीथड़े पहने हुए एक मजदूर लाल झण्डा लिए खड़ा था। उसकी आँखें निकली हुई थीं। मुँह खुलकर समस्त चेहरे पर छा गया था। दाँत दीख पड़ते थे और गर्दनके स्नायु फूलकर रस्सीके समान लगते थे। उसके पीछे-पीछे आदमियों, औरतों, और बच्चोंकी एक भीड़ चल रही थी, जिनके हाथोंमें डंडे, पत्थर और चिमटे इत्यादि थे।

"ये लोग क्या करना चाहते हैं ?"—माँने पूछा।

"मुझे नहीं मालूम"—मैंने बचना चाहा।

"क्या ये कम्युनिस्ट पत्र हैं ?"

"हाँ"

"तो क्या वे लोगोंसे ऐसे काम कराना चाहते हैं ?"

मुझसे उत्तर नहीं बन पड़ा। माँके मुखपर ग्लानि उमड़ रही थी। वह नेक औरत थी। सूली पर चढ़ा प्रभु ईसा उसका इष्टदेव था। मैं उसे क्योंकर कह देता कि कम्युनिस्ट पार्टी चाहती है कि वह गलियोंमें जाकर गाए और नारे लगाए।

"कम्युनिस्ट लोगोंको क्या समझते हैं ?"—माँने पूछा।

"नहां माँ, ऐसी भयानक बात कम्युनिस्ट नहीं सोचते। यह तो कार्टून है"—मैं हकलाया।

"तो फिर क्या चाहते हैं वे ?"

"यह कार्टून तो केवल कल्पना है"

"तो वे कहते क्यों नहीं कि उन्हें क्या चाहिये ?"

"शायद वे खुद नहीं जानते"

"तो यह सब खुराफात क्यों छापते हैं ?"

"शायद उनको अभी लोगोंसे अपील करनेका ठीक तरीका नहीं मालूम"—मैंने कहा। मुझे ताज्जुब हो रहा था कि जब माँ ही वह सब नहीं समझ पाई तो और कौन समझ सकेगा।

"यह कार्टून देखकर कोई भी पागल हो सकता है"—पत्रिकाको फेंकती हुई वह बोली। लौटते-लौटते मुड़कर पूछने लगी—"तुम तो इन लोगोंके फेरमें नहीं पड़े हो, बेटा ?"

"मैं तो सिर्फ पढ़ रहा हूँ, माँ"—मैंने झूठ बोल दिया।

माँ तो चली गई, किन्तु मुझे खेद होने लगा कि माँके सवालोंका मैं ठीक उत्तर नहीं दे सका। मैंने फिर उस कार्टूनको देखा और अबकी बार ऐसा लगा कि वह जनताकी उत्तेजना प्रतिबिम्बित नहीं करता। मैंने फिर पत्रिकाको पढ़ा। लिखनेवालोंने यही सोचकर लिखा था कि पढ़नेवालोंको उनकी बातें जीत लेंगी, पढ़नेवाले पार्टीमें भर्ती हो जाएँगे। लिखनेवालोंके पास एक आदर्श था, एक प्रोग्राम भी। किन्तु उनको जनता तक पहुँचानेकी भाषा अभी उनके पास नहीं थी। उनके लिये यह भाषा मैं गढ़ सकता था। मुझे ऐसा लगा कि कम्युनिस्टोंने लोगोंके जीवनसे समस्त गहराई और जटिलता निकालकर उसे नीरस बना डाला है। केवल अमूर्त मानवकी कल्पना ही वे कर पाए हैं। मैंने हाड़मांस

के मानवकी बात कहनेका इरादा किया। मैं जीवनमें सार्थकता और इसे लौटाना चाहता था। मैं कम्युनिस्टोंको समझाना चाहता था कि जनता क्या सोचती है, और जनताको बताना चाहता था कि कम्युनिस्ट जनताकी एकताके लिये क्या-क्या बलिदान कर सकते हैं?

"वामपन्थी मोरचा" के सम्पादकने मेरी दो कविताएँ खुद ले लीं, दो जैक कानरायके पास और एक "नई ज़नता" के सम्पादकके पास भेज दी। मेरे मनमें अभी भी संशय था कि छपेंगी या नहीं।

"आप इन्हें अच्छी नहीं समझते तो छोड़ दीजिए"—मैंने कहा।

"बहुत अच्छी हैं"—वह बोला।

"पार्टीमें आकृष्ट करनेके लिये तो मेरी कविताएँ नहीं छप रही हैं?"—मैंने पूछा।

"नहीं। तुम्हारी कविताएँ ग्राम्य हैं, किन्तु अच्छी हैं। हम सभी तो तुम्हारी तरह नए हैं। हम नीग्रो जातिकी बातें कहते रहते हैं, लेकिन नीग्रो लोगोंसे हमारा कोई सम्पर्क ही नहीं है। हमें आपके लेख जरूर चाहियें"—सम्पादकने उत्तर दिया।

मैं क्लबकी कई सभाओंमें शामिल हुआ और उनकी बातचीतका गाम्भीर्य मैंने देखा। क्लबने एक माँग उठाई कि बेकार कलाकारोंके लिये सरकार कामका प्रबन्ध करे। कला-कृतियोंकी प्रदर्शनियाँ भी क्लबने आयोजित कीं। "वामपन्थी मोरचा" के लिये चन्दा इकट्ठा किया और बीसियों वक्ताओंको मजदूरोंकी सभाओंमें भेजा। क्लबके सब सदस्य उत्साही, मिलनसार, व्यग्र एवं आत्मोत्सर्गकी भावनासे भरे थे। मुझे उनपर विश्वास हो गया और मैंने नीग्रो जातिमें कम्युनिस्टोंका असली

परिचय देनेका काम सिर पर उठा लिया। नीग्रो कम्युनिस्टोंकी जीवनियाँ लिखना प्रथम काम था। किन्तु अपनी महत्वाकांक्षाका भेद मैंने किसी को दिया नहीं। मैं खुद नहीं जानता था कि कहाँ तक मैं सफल हूँगा।

कुछ दिन बाद मुझे पता लगा कि क्लबके दो गुटोंमें खूब संघर्ष चल रहा है। खूब गरमा-गरम बहस होने लगी। मैंने देखा कि चित्रकारों का एक छोटा-सा गुट क्लब पर प्रभुत्व जमाए हुए है। "वामपन्थी मोरचा" के लेखकोंका गुट उनके नेतृत्वके विरुद्ध था। मैंने भी इन्हीं का साथ दिया। फिर एक अजीब घटना हुई। लेखकोंने क्लबके नेतृत्व में अविश्वासका प्रस्ताव रक्खा। एक विशेष सभा बुलाई गई और एक नया मन्त्री चुननेकी बात उठी। उम्मीदवारोंमें मेरा नाम भी दिया गया। मैंने इन्कार किया और कहा कि मुझे तो क्लबके ध्येय और आदर्शोंका ही ठीक ज्ञान नहीं है। रात भर विवाद होता रहा। सुबह निर्वाचन हुआ और मैं चुना गया। बादमें मुझे पता चला कि क्लबके चित्रकार नेताओंको हटानेके लिये ही लेखक गुटने यह चाल चली थी। मुझे पूछे बिना ही उन्होंने पार्टीके सन्मुख एक नीग्रोका सवाल पेश कर दिया। पार्टीके लिये एक नीग्रोको अस्वीकार करना कठिन था, क्योंकि नीग्रो जाति अल्पमत जातियोंमें सबसे बड़ी थी और नीग्रो लोगोंके लिए समानाधिकार प्राप्त करना पार्टीके मुख्य उद्देश्योंमेंसे एक था।

क्लबका प्रधान बनते ही सब कुछ मेरी समझमें आने लगा। कम्युनिस्टोंने क्लबमें एक अलग गुट बना रक्खा था। वे क्लबके बाहर मन्त्रणा करके क्लबकी नीतिके विषयमें पहले फैसला कर लेते थे और क्लबमें उनकी दलीलोंका उत्तर देना गैर-कम्युनिस्टोंके लिए कठिन था,

इसलिये सब वोट उन्हींको मिलते थे। झगड़ेका कारण यह था कि पार्टी के अधिकारी क्लबसे बहुतसे ऐसे काम कराना चाहते थे, जो क्लबके गैर-कम्युनिस्ट सदस्योंको पसन्द नहीं थे। रुपया, वक्ताओं और पोस्टर बनाने वालोंकी जो मांग पार्टी क्लबके पास भेजती थी, उनके बोझसे क्लब दिवालिया होता जाता था। "वामपन्थी मोरचा" का प्रकाशन कठिन होने लगा। पैसा नहीं रहा। बहुतसे नए लेखक तो उस पत्रिका में लिखनेके लोभसे ही क्लबके सदस्य बने थे। इसलिये जब कम्युनिस्ट सदस्योंने पत्रिकाको बन्द करनेका प्रस्ताव पेश किया, तो लेखकोंने नामंजूर कर दिया। पार्टी बहुत नाराज हुई। मैंने पार्टीको समझाना चाहा कि उनकी नीति क्लबके प्रति उदार होनी चाहिये। बड़ी चिल्ल-पों मची और कड़वाहट बढ़ गई। फिर फैसला हो गया। मुझसे कहा गया कि यदि मैं क्लबका मन्त्री रहना चाहता हूँ, तो मुझे पार्टीका मेम्बर बनना होगा। मैंने कहा कि पार्टीको ऐसी नीति अपनानी चाहिये, जिससे लेखकों और कलाकारोंको प्रोत्साहन मिले। मेरी नीति पार्टीने स्वीकार कर ली और और मैंने पार्टीमें नाम लिखवा लिया।

एक रातको हमारी सभामें एक यहूदी नवयुवक आया और कामरेड यंगके नामसे अपना परिचय दिया। कहने लगा कि वह डेट्रायट प्रान्त की कम्युनिस्ट पार्टीका सदस्य है, वहांकी जान रीड क्लबका मेम्बर भी और अब शिकागोमें रहना चाहता है। वह नाटा-सा, मिलनसार, काले बालों वाला पढ़ा-लिखा नौजवान था। मैंने उसका स्वागत किया। किन्तु उसका व्यक्तित्व मेरे लिये कुछ जटिल था। जब भी मैं उससे कोई प्रश्न पूछता, तो वह बहका-बहका-सा उत्तर देता। मैंने पार्टीके दफ्तरमें उसके

बारेमें जाँचके लिये लिख दिया और उसको क्लबका मेम्बर बना लिया। मुझे आदमी ठीक लगा। लेखक लोग कुछ तो सनकी हुआ ही करते हैं, मैंने सोचा। सभाके बाद यंगने कहा कि उसके पास रुपया-पैसा नहीं है, इसलिये वह क्लबके कमरेमें ही रातें बितायेगा। मैंने इजाजत दे दी। वह हमारी क्लबका एक उत्साही सदस्य निकला। सब उसकी तारीफ करने लगे। उसके चित्र मेरी समझमें कम आए। किन्तु हमारे चित्र-कारोंने खूब पसन्द किए। पार्टीसे उसके बारेमें कोई रिपोर्ट नहीं मिली, तो भी उसका उत्साह और काम देखकर मैंने उस बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया।

एक रातको यंगने सभामें बोलनेकी इजाजत मांगी। हमारा सबसे होनहार नौजवान चित्रकार स्वान था। यंगने शुरूसे ही उसके ऊपर एक अत्यन्त उग्र राजनीतिक आक्षेप किया। हम अवाक् रह गए। यंगने कहा कि स्वान गद्दार है, अवसरवादी है, पुलिसका दलाल और ट्राट्स्की का अनुयायी है। क्लबके लोग समझे कि पार्टीका मेम्बर होनेकी हैसियत से यंग पार्टीका ही मत प्रगट कर रहा है। मैं चकरा गया। मैंने प्रस्ताव किया कि यंगके लगाए तमाम इलजाम क्लबकी केन्द्रीय समितिके पास पुष्टिके लिये भेजे जाएँ। स्वानने भी आक्रोश दिखाया। बोला कि सब लोगोंके सामने उसपर आरोप लगाए गए हैं और सब लोगोंके सामने ही वह उत्तर देगा। हम मान गए कि स्वानको बोलनेका अवसर दिया जाए। उसने यंगके आरोपोंका खण्डन किया। लेकिन अधिकतर सदस्य घपलेमें पड़ गए कि किसका विश्वास किया जाए। हम सब स्वान पर विश्वास करते थे और उसके विरुद्ध वे सब बातें सुनना नहीं चाहते

थे। किन्तु पार्टीको नाराज करनेकी भी हिम्मत हममें नहीं थी। खूब ठनकर चोंच बाजी हुई। कुछ लोग जो चुपचाप सब सुनते रहे थे, खड़े होकर बोले कि स्वानके विरुद्ध मूर्खतापूर्ण आरोप वापिस ले लिये जाने चाहियें। मैंने फिर जोर दिया कि मामला क्लबकी केन्द्रीय कमिटिके पास जाना उचित है। किन्तु मेरा प्रस्ताव पास नहीं हो सका। सबको भय लग रहा था कि केन्द्रीय समितिमें अधिक सदस्य कम्युनिस्ट होनेके कारण यंगके लगाए हुए आरोपोंकी पुष्टि हो जाएगी।

बादमें कुछ लोगोंने मुझसे पूछा कि क्या यंगके आरापोंमें मेरा कुछ हाथ है। मुझे बहुत दुःख हुआ और लाजके मारे मैंने यंगसे सम्पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद कर लिए। उस नाटकको समाप्त करनेके लिए मैंने यंगसे पूछा कि स्वानके विरुद्ध वे आक्षेप लगानेका उत्तरदायित्व उसे किसने दिया।

"मुझे क्लबसे गद्दारोंको निकालनेका काम दिया गया है"—यंगने कहा।

"किन्तु स्वान तो गद्दार नहीं है?" मैंने कहा।

"एक शोधनकी सख्त जरूरत है"—कहते हुए उसकी आँखें लाल हो गई और मुख पर शिराएं फूल उठीं।

मुझे उसका विप्लवी उत्साह स्वीकार करना पड़ा, किन्तु उसकी उत्तेजनामें कुछ अति दीख पड़ी। मामला और भी बिगड़ने लगा। कुछ सदस्योंने कहा कि यदि स्वानपर लगाए हुए आरोप वापिस नहीं लिए गए, तो वे सब क्लबसे त्यागपत्र दे देंगे। मैं पागल हो उठा। मैंने पार्टीको लिखा कि स्वानको दण्ड देनेका भार यंगको क्यों सौंपा गया? पार्टीने उत्तर दिया कि उनको कुछ मालूम नहीं। तो फिर किस्सा क्या है, मैंने सोचा। यंग चाहता क्या है? मैंने क्लबकी सभामें प्रार्थना की कि

एक बार मुझे सारी बात पार्टीके पास रखने की इजाजत दी जाए। बहुत नोंक-झोंकके बाद मेरी प्रार्थना मान ली गई।

एक रातको हम दस जने पार्टीके एक लीडरके आफिसमें यंगके आरोप दोबारा सुननेके लिए एकत्र हुए। पार्टी लीडर कुछ तटस्थ सा रहा। उसे मज़ाक-सा लग रहा था। यंगने एक कागजोंका पुलिन्दा खोलकर खोलकर जो आरोप लगाए वे पिछले आरोपोंसे भी गुरुतर थे। मैं यंग की ओर एकटक देखता रह गया। मुझे लगा कि वह भयानक भूल कर रहा है। किन्तु वह तो पार्टीका प्रतिनिधि बना बैठा था, इसलिए मैं क्या कहूं यह मेरी समझमें नहीं आया।

यंगने पढ़ना समाप्त किया तो लीडर बोले—"क्या ये आरोप मैं भी पढ़ सकता हूँ ?"

"जरूर"—यंगने एक कापी उन्हें देते हुए कहा—"यह कापी आप रख सकते हैं। मेरे पास दस हैं"

"इतनी कापियाँ क्यों बनाईं ?"—लीडरने पूछा।

"कोई चोरी करले तो मैं क्या करूँ ?"—यंगने उत्तर दिया।

"यदि इस आदमीके आरोप माने गए"—खान बोला—"तो मैं खुलेआम क्लबसे त्यागपत्र दे दूंगा और क्लबकी भद्द उड़ाऊंगा"

"देखा आपने"—यंग चिल्लाया—"यह आदमी पुलिससे मिला हुआ है"

मेरी कमर टूट चुकी थी। सभा समाप्त हुई। लीडरने आश्वासन दिया कि पार्टी विचार करके फैसला देगी। मुझे विश्वास था कि कुछ घुटाला हो रहा है, लेकिन बात मेरी पकड़में नहीं आई। एक दिन मैं

यंगसे लम्बी बात करनेके लिए दोपहरमें क्लबमें पहुंचा। किन्तु वह वहाँ नहीं था। अगले दिन भी वह दिखाई नहीं दिया। एक सप्ताह तक मैं यंगकी तलाश करता रहा। क्लबके लोग पूछताछ करने लगे और जब मैंने बताया कि मुझे खुद नहीं मालूम तो उनको विश्वास नहीं हुआ। मैं सोच रहा था कि या तो वह बीमार पड़ गया या पुलिसने उसे पकड़ लिया। एक दिन मैं और ग्रिम क्लबमें जाकर उसका बिस्तर खोल बैठे। जो कुछ देखा उससे मेरी उलझन और बढ़ गई। जन्मपत्री की तरह एक लम्बी कागज के पिण्डे पर मार्क्सवादी दृष्टिसे मानव जातिका इतिहास चित्रित किया गया था। प्रथम पृष्ठपर लिखा था—"मानव की आर्थिक उन्नतिकी चित्रगाथा"

"यह तो बड़ी दूरकी सोची यारने"—मैंने कहा।

"बहुत मेहनती जान पड़ता है"—ग्रिम बोला।

हाथसे लिखे हुए कई लम्बे-चौड़े लेख भी मिले। कुछ राजनीतिक थे, कुछ कला सम्बन्धी। आखिर एक चिट्ठी मिली जिसपर डेट्रायटका एक पता लिखा था। मैंने पत्र लिखकर पूछताछ की। कई दिन पीछे एक उत्तर मिला। लिखा था—

"महाशय,

आपके पत्रके उत्तरमें हम आपको बतलाना चाहते हैं कि मिस्टर यंग हमारे अस्पतालके एक रोगी हैं जो कुछ दिनके लिए भाग निकले थे। वे फिर पकड़े गए और आजकल हमारे यहाँ उनके मानस की चिकित्सा चल रही है"

मुझपर मानो बिजली गिरी हो। इतना भयानक सत्य ! फिर भला हमारी क्लब क्या हुई, जिसमें एक पागल आकर इतने दिन काम करता रहे और कोई उसे पहिचान भी न पाए। क्या हम सभी लोग तो पागल नहीं थे ? मैंने प्रस्ताव पेश किया कि स्वानके विरुद्ध समस्त आरोप वापिस ले लिए जाएं। वैसा ही हुआ। मैंने स्वयं स्वानसे माफी माँगी। मेरी आँखें खुल चुकी थीं।

हमारी क्लबके कम्युनिस्ट गुटने मुझसे अनुरोध किया कि अपने पार्टी-सैलसे अपना सारा समय क्लबमें लगानेकी इजाजत माँग लूँ। बस, मैं अपने सैलको अपनी लेखन, संगठन तथा वक्तृता सम्बन्धी कार्यवाहीसे सूचित करता रहूँ। मैंने अनुरोध मान लिया। सैल पार्टीकी निम्नतम शाखाका नाम है और प्रत्येक कम्युनिस्टको एक-न-एक सैलका सदस्य बनना पड़ता है। सैलकी सभाएं रातमें होती हैं और पुलिसके भयसे गुप्त रक्खी जाती हैं। मैं जब पहलीबार सैलकी मीटिंगमें पहुंचा तो उसके नीग्रो कार्यकर्त्ताने मेरा परिचय देकर मुस्कराते हुए कहा—"आइए, साथी। हमें खुशी है कि एक लेखक हमारा सदस्य बन गया।"

"मैं ऐसा कुछ लेखक तो हूं नहीं"—मैंने कह दिया।

मीटिंग शुरू हुई। प्रायः बीस नीग्रो बैठे थे। बोलनेकी मेरी बारी आई तो मैंने ब्यौरेवार अपनी सारी बातें कह सुनाईं। सुन कर सब चुप रहे। मैंने इधर-उधर देखा। सब सिर झुकाए बैठे थे। केवल एक स्त्रीके होठों पर मैंने मुस्कराहटकी एक रेखा देखी। वह सिर उठा कर कार्यकर्त्ताको ताकने लगी। कार्यकर्त्ताने भी हँसी दबा ली। किन्तु स्त्रीने संयम खो दिया और खिलखिला कर हँसने लगी। मैं सन्नाटेमें आ

गया। समझमें नहीं आया कि मैंने क्या बेवकूफी की है। मैंने पूछा—"क्या बात है"—सब हँसने लगे और कार्यकर्त्ता जो एक पेंसिलसे खेल रहे थे, सिर उठा कर बोले—"कुछ नहीं, साथी। हमें खुशी है कि आज एक लेखक हमारे बीच आया"

लोगोंका हँसना जारी रहा। समझमें नहीं आया कैसे लोग थे। मैंने तो एक गम्भीर रिपोर्ट सुनाई थी और ये हँस रहे थे। मैं कुछ खिसिया कर बोला—"मुझसे जैसा बना, किया है। लेखकका काम, मैं मानता हूं, कोई विशेष महत्व नहीं रखता। किन्तु धीरे-धीरे मैं कुछ अच्छा काम कर सकूंगा।"

"हमें विश्वास है, साथी"—कार्यकर्त्ताने उत्तर दिया। उसकी आवाजमें बड़प्पनकी गन्ध थी। श्वेतांग लोग भी इतना बड़प्पन नीग्रो के प्रति नहीं दिखाया करते। मुझे क्रोध आ गया। मेरा ख्याल था कि मैं इन लोगोंको जानता हूँ। किन्तु शायद मेरा भ्रम था। मैं इनसे विवाद करना चाहता था, किन्तु मनने सलाह दी कि पहले कुछ और लोगोंसे पूछ-ताछ करना ठीक होगा। पूछताछ करने पर मुझे पता चला कि ये काले कम्युनिस्ट मुझे अजीब जानवर समझते थे। इनके निकट मैं एक बुद्धिवादी था। मुझे ताज्जुब हुआ। मैं तो स्कूलमें भी ठीकसे नहीं पढ़ा था। मैं तो स्वयं नहीं जानता था कि बुद्धिवादी किसे कहते हैं। सैलमें जानेसे पहले सोचा था कि शायद लोग मेरी राजनीतिक सूझ-बूझको कच्चा मानकर मुझे लेनेसे इन्कार कर दें। शायद ये लोग मेरे बारेमें कुछ खोज-खबर लेकर ही फैसला करें। किन्तु ये तो खाली खीसें निकाल रहे थे और मुझे बताया गया कि मेरे पालिश किये बूटों,

साफ कमीज तथा टाईको लेकर काले कम्युनिस्टोंमें काफी टीका-टिप्पणी हुई थी। किन्तु सबसे ज्यादा बुरा लगा उनको मेरे बोलनेका परिष्कृत ढंग। कहने लगे—"किताबकी तरह बोलता है"—और सबने मुझे बुर्जुआ कहकर हाथ झाड़ दिए।

पार्टीका काम करते हुए एक नीग्रो कम्युनिस्ट रौससे मेरा परिचय हुआ। उसके ऊपर दङ्गा करवानेका मुक़दमा चल रहा था। दक्षिणके कृषि-प्रधान प्रान्तमें जन्म लेकर वह बड़ा होने पर उत्तरकी ओर चला आया था। शहरमें आते समय ग्रामीणके मनमें अनेक आशाएँ होती हैं, किन्तु शहरकी अनवरत अवहेलना सहते-सहते वह उखड़ा-उखड़ा-सा हो जाता है। रौस भी ऐसा ही था। दो समाज-व्यवस्थाओं और दो संस्कृतियोंके सन्धिस्थलमें रहनेवाले व्यक्तिके गुण और दुर्गुण दोनों ही उसमें विद्यमान थे। मैंने सोचा कि यदि उसकी कहानी सुन पाऊँ, तो कुछ जान पड़े कि देहातसे आनेवालोंको शहरमें क्या-क्या कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं और मनमें कैसा-कैसा लगता है। शायद इस प्रकार उसकी कहानी दूसरोंके लिए कुछ अधिक उपादेय हो जाए। रौससे मैंने बात चलाई। वह बात मान गया। उसने मुझे घरपर निमन्त्रित किया और अपनी यहूदी पत्नी, किशोर लड़के और मित्रोंसे मेरा परिचय कराया। मैं घण्टों तक उसे अपनी बात समझाता रहा और कहता रहा कि वह जो कुछ मुझे बताना न चाहे सो बतानेकी जरूरत नहीं है। मैंने कहा—"मैं तो सिर्फ तुम्हारी वे बातें जानना चाहता हूं, जिनके कारण तुम कम्युनिस्ट बने"

पार्टीमें खबर फैल गई कि मैं रौस की जीवनी लिख रहा हूं और

अजीब घटनाएं घटने लगीं। एक रातको एक नीग्रो कम्युनिस्ट मुझे घरसे गलीमें बुला ले गए। कुछ खास बात करनी थी। उसने मेरे विषयमें जो भविष्यवाणी की, वह सुनकर मैं डर गया। गम्भीर होकर वह बोला—"बुद्धिवादी लोग बहुत दिन तक पार्टीमें टिकते नहीं, राइट"

"किन्तु मैं तो बुद्धिवादी नहीं हूं"—मैंने विरोध किया—"मैं तो गलीमें झाड़ू लगाकर अपना पेट पालता हूँ"—उन दिनों तेरह डालर प्रति सप्ताह पर मैं सड़क साफ करनेका काम किया करता था।

"उससे क्या आता जाता है"—वह बोला—"हमारे पास तो कितने ही बुद्धिवादियोंका कच्चा चिट्ठा रक्खा है। हिसाब लगाकर देखा गया है कि उनमें तेरह प्रतिशतसे अधिक पार्टीमें नहीं ठहर पाए"

"अच्छा मुझे जो चाहो कह लो। किन्तु बुद्धिवादी लोग पार्टी छोड़कर क्यों चले जाते हैं भला ?"—मैंने पूछा।

"अधिकतर तो बस पार्टी छोड़ देते हैं"

"तो चिन्ता मत करो। मैं पार्टी छोड़कर जानेवाला नहीं"

"कुछ को पार्टीसे निकालना भी पड़ा है"—उसने मुझे चेताया।

"क्यों ?"

"साधारणतया वे पार्टीकी नीतिका विरोध करते रहते हैं"

"किन्तु मैं तो पार्टीकी किसी बातका विरोध नहीं करता"

"फिर भी आपको क्रान्तिके प्रति अपने विश्वासका प्रमाण देना होगा"

"सो कैसे ?"

"पार्टी लोगों की परीक्षा लेना जानती है"

"कैसी परीक्षा है वह ? कहिए ना"

"पुलिसको देखकर आपको कैसा लगता है ?"

"कुछ भी नहीं। कभी उस ओर ध्यान ही नहीं दिया"

"आप इवान्जको जानते हैं"—एक कट्टर नीग्रो कम्युनिस्टका नाम लेते हुए उसने पूछा।

"हाँ देखा है। मिला भी हूँ"

"आपने यह भी देखा कि उसे चोट लगी है ?"

"हाँ उसके सिर पर पट्टी बंधी थी"

"वह चोट एक जलूस निकालते समय पुलिसने उसे मारी थी। क्रान्तिके प्रति विश्वासका यह पक्का सबूत है"

"तो क्या आप कहना चाहते हैं कि अपनेको क्रान्तिकारी साबित करनेके लिए मैं पुलिससे अपनी हड्डी पसली तुड़वा लूँ !"

"मैं कहता कुछ नहीं। मैं तो बात समझा रहा हूँ"

"अच्छा, मान लो कि पुलिसका डण्डा मेरे सिरपर पड़ कर मेरे दिमाग़को चोट पहुंचा देता है और मैं बेकार हो जाता हूं। क्या फिर मैं कुछ लिख पाऊंगा ? उससे भला क्या साबित हुआ ?"

वह सिर हिलाने लगा—"सोवियत् यूनियनको इसीलिए बहुत सारे बुद्धिवादियोंको गोलीसे उड़ाना पड़ता है"

"हे भगवान ! आप जानते हैं आप क्या कह रहे हैं ? आप रूसमें नहीं हैं, बल्कि शिकागोके एक फ़ुटपाथ पर खड़े हैं। आप तो पागलों जैसी बात करते हैं"

"आपने ट्राटस्कीका नाम तो सुना है ?"—उसने पूछा

"हां"

"उसका क्या हशर हुआ, यह भी आप जानते हैं ?"

"सोवियत् भूमिसे उसे निकाल दिया गया"

"भला क्यों ?"

मुझे ट्राट्स्की वाले झगड़ेका कोई ठीक ज्ञान नहीं था, इसलिए कुछ हकलाकर मैंने कहा—"मेरा ख़याल है कि उसने पार्टीके फैसलेके खिलाफ पार्टीके भीतर गुटबन्दी करनेकी कोशिश की थी"

"नहीं, उसे क्रान्ति-विरोधी कामोंके लिए निकाला गया था"—उसने कुछ बिगड़कर कहा। मुझे पीछे पता चला कि ट्राट्स्कीके गुनाहको मैंने पार्टीकी भाषामें, पार्टी द्वारा प्रत्याशित क्रोधके साथ नहीं बखाना था, इसीलिए मित्र चिढ़ गया था।

"ठीक है। मैंने ट्राट्स्कीको कभी पढ़ा नहीं। अल्पमतोंके विषयमें उसकी क्या राय है ?"—मैंने पूछा

"मुझे क्या मालूम। मैं ट्राट्स्की थोड़े ही पढ़ता हूं।"

"अच्छा, यदि आप मुझे ट्राट्स्की पढ़ते देखें तो क्या कहेंगे ?"

"साथी, आप बौखला गए हैं"—वह घबड़ाकर बोला। बात खत्म हो गई। किन्तु उस दिन अन्तिम बार मैंने यह वाक्य—"आप बौखला गए हैं"—सुना हो, ऐसी बात नहीं थी। बहुत बार मुझसे यही कहा गया। मुझे कभी ऐसा नहीं लगता था कि मेरे विचार गलत हैं। मैंने कभी ट्राट्स्की की कोई पुस्तक नहीं पढ़ी थी। बल्कि मैं तो स्टालिन की पुस्तकोंसे ही प्रभावित हुआ था। सोवियत् भूमिमें पिछड़ी जातियोंको किस प्रकार उन्नतिकी ओर ले जाया गया था, यह मेरे लिए सबसे महत्व

की बात थी। किस प्रकार रूसी भाषाविद् सोवियत् देशके कोने-कोनेमें जाकर ग्राम्य भाषाओंका अध्ययन करते थे और लोगोंको अपनी भाषाओंमें ही समाचारपत्र, सामाजिक प्रतिष्ठान और सरकार चलानेकी प्रेरणा देते थे, यह सब पढ़ सुनकर मैं तो मुग्ध हो चुका था। मैंने यह भी पढ़ा था कि रूसमें किस प्रकार पिछड़ी जातियोंको अपनी संस्कृतिसे प्रेम करना और अपनी परम्परापर अभिमान करना सिखाया जाता है। और मैंने देखा था कि अमेरिकामें किस प्रकार नीग्रो जातिका दमन होता है। तो फिर मुझे वह चेतावनी देनेकी क्या जरूरत थी? मुझ पर यह सन्देह क्यों किया जा रहा था? मैं तो केवल नीग्रो जातिके पार्थिव और आध्यात्मिक विध्वंस की कहानी कहना चाहता था। मेरी जाति इतनी पुरातन है जितने कि ये पहाड़ और समुद्र। उनके दर्द की कहानीको, और दलित वंचितोंकी कहानीसे जोड़ देनेमें क्या बुराई हो सकती है, यह मेरी समझमें नहीं आया।

पार्टीके कामने मेरे लेखन-कार्यमें भी दखल देना शुरू कर दिया। क्लबने वामपन्थी लेखकों की एक सभा बुलानेका फैसला किया। मैंने समर्थन किया और कहा कि विभिन्न व्यवसायोंके विषयमें विवेचना होनी चाहिए। किन्तु मेरी बात नहीं मानी गई। फैसला हुआ कि सभा राजनीतिक प्रश्नोंपर विचार करेगी। मैंने पूछना चाहा कि हम अपने लेखकोंसे पुस्तकें लिखाना चाहते हैं या राजनीति कराना। उत्तर मिला दोनों काम। लेखक दो-चार घण्टा रोज काम करें और बाकी समयमें जलसे जलूस निकालें। सभाके संयोजक एक कम्युनिस्ट नेता बने। इस प्रश्न पर विवाद हुआ कि पार्टी क्लबसे क्या आशा करती है। नेताने कहा

कि राजनीतिक संगठनसे लेकर उपन्यास लिखने तक सभी काम लेखकोंको करने चाहिएँ। मैंने कहा कि एक ही आदमी दोनों काम नहीं कर सकता। नेताने कहा कि दोनों ही काम करने चाहिए। नेता की बात ही मानी गई और जिस 'वामपन्थी-मोरचा' पत्रिकाको बनानेके लिए इतना परिश्रम किया था, उसे बन्द करनेका फैसला हुआ।

मैं समझ गया कि क्लबके अन्तिम दिन आ गए हैं। मैंने खड़ा होकर क्लबको तोड़ देनेका प्रस्ताव पेश किया। नेता बिगड़ पड़े और मुझे पराजयवादी कहकर मेरी कड़ी आलोचना की। चीन, भारत, जर्मनी और जापान इत्यादिके विषयमें ढेरके ढेर प्रस्ताव पास करके सभा विसर्जित हुई। किन्तु लेखन कार्य सम्बन्धी एक भी बातपर विचार नहीं हुआ। सभामें मैंने जो कुछ कहा था वह मेरे ऊपर सन्देहका एक नया कारण बन गया। ऊपर बता चुका हूं कि सन्देह मुझपर पहले ही किया जाता था। अब पार्टीको यक़ीन हो गया कि पार्टीमें कोई भयानक शत्रु घुस आया है। कानाफूसी होने लगी कि मैं गुप्तरूपसे पार्टीके भीतर एक गुटबन्दी कर रहा हूं। मैं जानता था इन आरोपोंका उत्तर देना व्यर्थ है। किन्तु किसी कम्युनिस्टसे मिलना मेरे लिए अब एक दुखद बात बन गई। न जाने वह मेरे बारेमें क्या सोचता हो ?

सभाके उपरान्त जान रीड क्लबकी राष्ट्रीय कांग्रेस बुलानेका फैसला हुआ। १६३४ की गर्मीके दिन थे। राष्ट्रके कोने-कोनेसे वामपन्थी लेखक एकत्र हुए। किन्तु कांग्रेसकी दो-चार बैठकोंमें बैठकर ही अधिकतर लेखक बुरी तरह चकरा गए। एक असन्तोषकी भावना फैलने लगी। अधिकतर लेखक युवक और उत्साही थे और श्रेष्ठतम

लिख डालनेकी क्षमता उनमें थी। किन्तु वे समझ ही नहीं पाए कि कांग्रेस उनसे क्या कराना चाहती है और कांग्रेस किसी फैसले पर नहीं पहुँची। कांग्रेसके आखिरी दिनोंमें मैंने एक समितिकी बैठकमें भाग लिया। हम दस जने एक होटलके कमरेमें एकत्र हुए थे। क्लबकी राष्ट्रीय समितिके मुखियोंने क्लबके विरुद्ध वही शिकायतें कीं, जो मैं करता रहता था। मुझे आशा होने लगी कि अब क्लबमें नए जीवनका संचार होगा। किन्तु जब देशके एक बड़े कम्युनिस्टने खड़ा होकर फैसला दे डाला कि सब क्लब तोड़ देने चाहियें, तो मैं सन्नाटेमें आ गया। मैंने पूछा कि ऐसा क्यों? उन्होंने कहा कि क्लब पार्टीकी नई नीतिमें सहायक नहीं होगी। मैंने समझाया कि क्लबका पुनर्गठन करके उसको अधिक विशद बनाया जा सकता है। उन्होंने उत्तर दिया कि एक बहुत बड़ी संस्थाकी आवश्यकता है, जिसमें देशके समस्त लेखक भाग ले सकें और वह संस्था नई होनी चाहिए। मुझे यह भी बताया गया कि पार्टीकी नई नीति ही जीवनका सच्चा संदेश है और उस सन्देशमें क्लबके लिये कोई स्थान नहीं। मैंने पूछा कि जिन नौजवान लेखकोंको पार्टीने क्लबका सदस्य बननेका आदेश दिया था, किन्तु जिनके लिये नई संस्थामें कोई स्थान नहीं, उनका क्या होगा? मुझे कोई उत्तर नहीं मिला। मुझे बहुत बुरा लगा। पार्टी अपनी नीतिको तेजीसे बदलनेके लिये एक बनी-बनाई संस्थाको तोड़ रही थी और नए लोगोंको लेकर, नई नीतिके साथ, एक नई संस्थाका गठन करना चाहती थी।

बहुमत मेरे विरुद्ध था। मैंने एक और भी नई बात देखी। जो लोग मेरेसे सहमत थे, वे भी मेरा समर्थन करनेके लिये तैयार नहीं हुए।

मुझे मालूम हुआ कि जब किसी कम्युनिस्टको पार्टीकी नीति बता दी जाती है, तो उसका अपना मत चाहे कुछ भी हो और चाहे वह मानता हो कि उस नीतिसे पार्टीको हानि पहुँचेगी, तो भी नतमस्तक होकर पार्टीका अनुसरण करना उसका कर्तव्य होता है। मैंने पार्टीका विरोध किया, इसका कारण मेरा व्यक्तिगत साहस था, यह मैं नहीं कहता। मुझे और कोई रास्ता ही नहीं सूझा। मैं दक्षिण प्रान्तोंमें जन्मा-पला था, जहाँ कि घृणाका तीव्र वातावरण था। फिर भी मेरी समझमें नहीं आया कि एक आदमी अपना मुँह कैसे बन्द कर ले। मैं तो दक्षिण छोड़कर उत्तरमें इसीलिये मारा-मारा फिरता था कि खुले आम अपने मनकी कह सकूँ। और अब यहाँ भी मेरे मुँह पर ताला लगाया जा रहा था। कांग्रेस समाप्त होनेसे पहले यह फैसला हुआ कि अगले साल, यानी १९३५ के ग्रीष्मकालमें अमेरिकन लेखकोंकी एक और कांग्रेसका आयोजन हो। मुझे यह अच्छा नहीं लगा और मैंने चुप रहना चाहा। मुझे लग रहा था कि जो कहानियाँ मैंने लिखी हैं, वे इस नई नीतिके कारण शायद स्वीकार न की जा सकेंगी। मनमें प्रश्न उठा कि क्या उनको फाड़कर फेंक दूँ और नई लिख डालूं। अन्तरात्माने गवाही नहीं दी। मेरी कहानियाँ तो मेरा जीवन-दर्शन थीं, मेरे प्राण, मेरी साधना, मेरा सर्वस्व। उन सबको भला पार्टीके कहने से कैसे नए साँचेमें ढाल लेता?

१९३५ का बसन्त आया और लेखकोंकी काँग्रेसकी तैयारियाँ बड़े जोरसे होने लगीं। किसी अज्ञात करणवश, शायद मुझे "बचाने" के लिए, मुझे भी कांग्रेसका एक डेलीगेट चुना गया। मैंने अपनी नौकरीसे

कुछ दिनकी छुट्टी ली और जिस किस तरह कई और डेलीगेटोंके साथ न्यूयार्क जा पहुँचा। हम सांझके समय पहुँचे थे। कांग्रेसकी पहली बैठक कारनेगी हालमें होनेकी बात थी। मैंने न्यूयार्ककी जान रीड क्लब के लोगोंसे ठहरनेके लिये स्थान मांगा। वे सब श्वेतांग थे और मेरी मांग पर असुविधा महसूस करने लगे। उनमें आपसमें काना-फूसी होने लगी। मैं बैठा हुआ सब देख रहा था। मैं तो यह भूल ही गया था कि मैं नीग्रो हूँ। सारे रास्ते मैं नए लेखकोंकी समस्याओं पर विचार करता हुआ न्यूयार्क पहुँचा था। अब अपने रंगके बारेमें ये उलझनें देखकर मेरा मन बैठ गया। एक श्वेतांग कामरेड आकर बोले—"एक मिनटमें हम आपके ठहरनेका प्रबन्ध किए देते हैं"

"किन्तु क्या पहलेसे कोई प्रबन्ध नहीं किया गया था?"—मैंने पूछा।

"सो तो किया था। किन्तु वे लोग आपको ठहराएँगे कि नहीं, ठीकसे नहीं कहा जा सकता। आप तो सब समझते हैं"

"हाँ, मैं समझता तो हूँ"—मैंने ओंठ काटकर उत्तर दिया।

"बस एक सेकेण्ड ठहरिए। अभी बन्दोबस्त किए देता हूँ"—मेरी कोहनी छूकर वह बोला।

"आप चिन्ता मत कीजिये"—मैंने क्रोधको दबाकर कहा।

"ओ हो। यह भी क्या कहते हैं। एक मुश्किल तो है, किन्तु अभी कुछ करता हूँ"—उसने सिर हिलाते हुए उत्तर दिया।

"किन्तु मुश्किल तो इसमें कुछ नहीं होनी चाहिये।"—मुझसे कहे बिना न रहा गया।

"नहीं, नहीं, मेरा कहनेका यह मतलब नहीं था......"

मैं लाज और क्रोधसे गड़ा जा रहा था। चारों ओर लोग खड़े मेरी भद्द देख रहे थे। मैं लाल हो उठा। कुछ मिनट पीछे वह श्वेतांग बन्धु लौटा। उसकी आँखें लाल थीं, पसीना छूट रहा था।

"कुछ बन्दोबस्त हो गया क्या?"—मैंने पूछा।

"नहीं, नहीं। अभी नहीं। एक मिनट रुकिए। मैं अपने एक परिचितको फोन करके पूछता हूँ। एक दुअन्नी हो तो दीजिये"—वह हाँफता हुआ बोला।

"छोड़िये आप। मैं कुछ इन्तजाम कर लूँगा। किन्तु कुछ समय के लिये यह सूटकेस यहाँ छोड़ना चाहता हूँ"—मैंने कहा। मेरे घुटने जवाब दे चुके थे।

"आप क्या विश्वास करते हैं कि आप स्थान ढूँढ़ निकालेंगे?"—वह कुछ आशाका भाव लेकर बोला।

"क्यों नहीं?"—मैंने उत्तर दिया। उसे विश्वास नहीं हो पाया। वह मेरी सहायता करना चाहता था, किन्तु उसकी समझमें नहीं आ रहा था कि कैसे करे? उसने मेरा सूटकेस एक आलमारीमें बन्द कर दिया और मैं बाहर सड़क पर निकल आया। फुटपाथ पर खड़े-खड़े सोचने लगा कि सोऊँगा कहाँ। मेरी चमड़ी काली थी, जेबमें प्रायः कुछ नहीं था। वामपन्थी साहित्य रचनामें मेरी सारी दिलचस्पी हवा हो गई। मैं नहाना चाहता था, लेकिन कहीं इन्तजाम नहीं कर सका। फिर कारनेगी हालमें सभामें जा पहुँचा। वे दिल दहला देनेवाली वक्तृताएँ सुनकर मेरी समझमें नहीं आ रहा था कि मैं वहाँ क्यों चला आया। मैं

फिर बाहर फुटपाथ पर खड़ा होकर लोगोंके चेहरे देखने लगा। शिकागो की क्लबके एक सदस्यसे भेंट हो गई। उसने पूछा—"तुम्हारे ठहरनेका कुछ इन्तजाम हुआ क्या?"

"नहीं। किसी होटलमें जाकर देखूँगा। लेकिन होटलवालोंसे अपना रंग क्योंकर छुपाऊँगा?"

वह चला गया और दो मिनटमें एक बड़ी, मोटी श्वेतांग स्त्रीके साथ लौटा। हमारा परिचय कराया उसने।

"मेरे घर आप रात बिता सकते हैं"—वह बोली।

मैं उसके मकान तक उसके साथ गया। उसने अपने पतिसे मेरा परिचय करा दिया और मैंने दोनोंको धन्यवाद देकर रसोई घरमें अपना बिस्तर लगा लिया। भोरमें उठकर मैंने कपड़े पहने, उनको जगाकर विदा मांगी और बाहर एक बैंच पर जा बैठा। जेबसे कागज-पेंसिल निकालकर मैंने अपनी वक्तृताका मसविदा तैयार करना चाहा। किन्तु मेरा जी नहीं लगा। रह-रहकर मन कह रहा था—"क्या इस अभागे देशमें एक नीग्रो भी अपने आपको आदमी कह सकता है?"

उस दिन मैं कांग्रेसकी सभामें बैठा रहा, किन्तु कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। उस रातको मैं हारलेम[1] में पहुँचा और काले आदमियों के बीच घूमने लगा। रास्ते वालोंसे पूछा तो मुझे बताया गया कि हारलेममें भी नीग्रो लोगोंके लिये कोई होटल नहीं था। मैं स्तम्भित रह गया। इधर-उधर भटकने लगा। एक बड़ेसे साफ होटल पर नजर पड़ी। उसमेंसे काले आदमी आ-जा रहे थे। श्वेतांग कोई नहीं दीख

---

१. न्यूयार्कका वह हिस्सा जिसमें नीग्रो लोगों की बस्ती है।

पड़ा। मनमें विश्वास लेकर मैं भीतर चला गया। किन्तु दफ्तरकी मेज पर एक श्वेतांग क्लर्कको बैठा देखकर मुझे ठिठकना पड़ा। मैंने उससे कहा—"एक कमरा चाहिये"

"यहाँ नहीं"—उसने उत्तर दिया।

"किन्तु यह तो हारलेम है"

"तो क्या बात है? यह होटल केवल श्वेतांग लोगोंके लिए है"

"तो काले आदमियोंके लिए कौन सा होटल है?"

"वाइ० एम० सी० ए० में जाकर पूछ देखिए"

आध घण्टा पीछे मैं वाइ० एम० सी० ए० में पहुँच गया जहां कि कट्टर नीग्रो नौजवानोंसे मेरी भेंट हुई। मुझे एक कमरा मिल गया और नहा-खा कर बारह घण्टे तक मैंने लम्बी तानी। जागा तो कांग्रेसमें जानेको जी ही नहीं चाहा। मन कहने लगा—"मेरा रास्ता उधर नहीं है। मैं अकेला हूँ। रास्ता फिरसे खोजना होगा"

फिर भी कपड़े पहन कर सभामें जा बैठा। आज क्लबके बारेमें अन्तिम फैसला होनेकी बात थी। न्यूयार्कके एक कम्युनिस्ट लेखकने क्लबका इतिहास बताया और क्लबको भंग करनेकी मांग की। विवाद शुरू हुआ। मैंने खड़े होकर यह बताया कि नौजवान लेखकोंके जीवनमें क्लबका क्या स्थान रहा है और क्लबको बनाए रखनेकी अपील की। किसीने मेरी बात पर ताली नहीं बजाई। विवाद बन्द हुआ। वोट लिया गया। सारी सभाने हाथ उठा कर क्लब तोड़नेका समर्थन किया। विरोध करनेवालोंमें मेरा हाथ अकेला था। मैं जानता था कि मुझ पर पार्टीके साथ विरोध करनेका आरोप लगाया जाएगा, किन्तु उसके लिए मैं तैयार था।

क्लब टूट जाने पर पार्टीसे भी मेरा सम्बन्ध टूट सा गया। मैंने सैलकी सभाओंमें जाना भी छोड़ दिया। मैं नए अनुशासनमें बँधनेसे घबराता था। मुझसे कम्युनिस्ट लोग घबराते थे, क्योंकि पार्टीको मुझ पर सन्देह था। कभी-कभी कोई साहसी बन्धु घर पर आकर मुझे बता जाता था कि किस प्रकार पार्टीके भीतर लोग एक दूसरे पर आरोप लगाते रहते हैं। यह सुन कर मुझे बहुत ताज्जुब हुआ कि बडी नील-सनने मुझ पर पार्टीमें प्रतिक्रिया फैलानेका दोष लगाया है। बडी नीलसन अमेरिकाके नीग्रो लोगोंको कम्युनिज्मकी ओर ले जाने वालोंमें सर्वप्रथम था। उसने क्रेमलिनकी सभाओंमें वक्तृताएँ दी थी। स्टालिनने स्वयं उसकी वक्तृताएँ सुनी थीं। मैंने पूछा—"बडी नीलसन मुझे ऐसा क्यों समझता है ?"

"वह कहता है कि तुम एक पतित बुर्जुआ हो"

"इसका क्या मतलब ?"

"यही कि तुम अपने विचारोंसे पार्टीमें गंदगी पैदा करते हो"

"किस प्रकार ?"

मुझे उत्तर नहीं मिला। मैंने फैसला किया कि पार्टी मुझे छोड़ देनी चाहिए। मेरे ऊपर आरोप तीव्रतर होते जा रहे थे और मेरे चुप रहनेके कारण बडी नीलसनकी ज़बान और भी तेज़ चलने लगी। मुझे हरामी बुद्धिवादी, ट्राट्स्कीका चेला इत्यादि कहा गया। मुझे नेताओंके विरुद्ध विद्रोही ठहराया गया और कहा गया कि मैं अपने आपको सदा सही माननेके कारण संघर्षके लिए किसी कामका नहीं रह गया। सारे दिन और आधी रात तक लगातार काम करनेके कारण मैं बीमार पड़

गया। एक दिन किसीने द्वार खटखटाया। मांने किवाड़ खोले तो एड ग्रीन भीतर चला आया। वह मुझे पार्टीका घोर शत्रु मानता था। उसे देखकर मेरा पारा चढ़ गया। कर्कश स्वरमें मैंने कहा—"क्या चाहिए? देखते नहीं कि मैं बीमार पड़ा हूं?"

"पार्टीका संदेश आपके लिए लाया हूँ"—उसने उत्तर दिया।

मैंने उसे नमस्कार नहीं किया था। न ही उसने करनेकी जरूरत समझी थी। न वह हँसा[१] था, न मैं। मेरे सूने कमरेको वह निहारने लगा। मैंने ताना मारा—"यह तो एक हरामी बुद्धिवादीका घर है" "किन्तु उसने पलक भी नहीं झपकी। घूरता रहा। मुझसे उसका खड़ा रहना नहीं देखा गया। सौजन्यतावश उसे बैठनेके लिए मुझे कहना ही पड़ा। वह कुछ सिटपिटाकर फौजके अफसरकी तरह बोला—"मुझे जल्दी है"

"तो कहिए क्या बात है?"

"आप बडी नीलसनको तो जानते हैं?"

मुझे संदेह होने लगा। शायद वह कोई झांसा देना चाहता था। इसलिए मैंने अपनी ओरसे कुछ भी नही कहा। उधरकी सुनना चाहता था पहले। मैंने पूछा—"हाँ, तो बडी नीलसनके बारेमें क्या कह रहे थे आप?"

"वह आपसे मिलना चाहता है"

"क्या काम है?"—मैंने संदिग्ध भावसे पूछा।

"पार्टीके कामके बारेमें आपसे बातें करना है"

---

१ अमेरिकामें एक दूसरेको देखकर मुस्कराना स्नेहका चिन्ह है।

"नहीं। तुम लिखना जानते हो। मैंने जो लुई[1] के सम्बन्धमें तुम्हारा लेख पढ़ा है। अच्छा है। खेल-कूदको पहले-पहले राजनीतिक दृष्टिसे देख कर लिखा गया है।"

मैं चुप रहा। मेरा खयाल था कि नीलसन कोई विचारवान आदमी होगा। खयाल बदलना पड़ा। तो क्या वह कोई क्रियाशील व्यक्ति है, मैं सोचने लगा। वैसा भी नहीं लग रहा था।

"मैंने सुना है कि तुम रौसके मित्र हो"—उसने पूछा।

मैंने उत्तर देनेसे पहले सोचा। वह सीधी बात न करके चाल चल रहा था। मुझे मालूम था कि रौस पर नेताओंका विरोध करनेका आरोप लगा कर उसे पार्टीसे निकाला जा रहा है। यह जो कामिन्टर्नका सदस्य मुझसे रौसके साथ मेरे सम्बन्धके बारेमें पूछना चाहता था वह केवल पार्टीके प्रति मेरा रुख जाननेके लिए। मैंने स्पष्ट कह दिया—"रौस कोई खास मेरा ही दोस्त हो, सो बात तो नहीं है। हाँ, उसे मैं जानता हूँ। बहुत अच्छी तरह ही जानता हूँ"

"अगर दोस्त नहीं है तो अच्छी तरह कैसे जानते हो"—अपने प्रश्नकी कठोरताको अपनी हँसीसे पिघलानेकी चेष्टा करता हुआ वह पूछ बैठा।

"मैंने उसकी जीवनी लिखी है। और उसके बारेमें जो कुछ सब लोग जानते हैं, उतना ही मैं जानता हूं"

"वह सब मैंने सुना है। राइट, नहीं, नहीं, तुम्हें डिक कह कर पुकारूं तो अच्छा रहेगा?"

"जरूर। हाँ, तो बोलिए"

---

१ विख्यात नीग्रो घूँसेबाज।

"देखो, डिक, रौस जातिवादी है"—कह कर वह रुका जिससे कि मैं उस भारी भरकम आरोपको अच्छी तरह समझ लूँ। उस आरोपका मतलब था कि रौस नीग्रो जातिके लिए खूब कस कर लड़नेवालोंमें गिना जाता था—"हम कम्युनिस्ट नीग्रो लोगोंकी जातिवादिताको बढ़ावा नहीं देना चाहते"–उसके स्वरमें हँसी, आरोप और धमकी एक साथ मिली थीं।

"आपका क्या मतलब है ?"

"यही कि रौसको हम बहुत आगे नहीं बढ़ा सकते"—उसने साफ साफ कह दिया।

"हमारी बातें ही जुदा हैं। रौसके विषयमें मेरे लिखनेसे आप इस-लिए घबराते हैं कि रौस आपका राजनीतिक प्रतिपक्षी है। किन्तु मुझे रौसकी राजनीतिमें तिल भर भी दिलचस्पी नहीं हैं। मैं तो एक नीग्रो चरित्रके विशेष गुणका समावेश उसमें देख कर उसकी ओर आकृष्ट हुआ हूँ। उसके जीवनकी एक घटना पर लिखी हुई एक कहानी तो मैं प्रका-शनके लिए दे भी चुका"

"क्या घटना थी वह"—नीलसनने चमक कर पूछा

"जब वह तेरह बरसका था तो एक मुसीबतमें पड़ गया था"

"ओ। मैं समझा कोई राजनीतिक घटना थी"—उसने ठण्डा पड़ कर कहा।

"मैं आपको आपकी भूल जताना चाहता हूं। मैं अपने लेखों द्वारा आपसे राड़ नहीं करना चाहता। मुझमें राजनीकिक महत्वाकांक्षा है ही नहीं। मैं तो निग्रो जीवनको चित्रित करना चाहता हूँ"

"रौसके बारेमें लिखना समाप्त कर चुके ?"

"नहीं। मैंने और लिखनेका विचार छोड़ दिया। पार्टीके लोग मुझपर शुबा करने लगे हैं और मुझसे कतराने लगे हैं। इसीलिए"

वह हंसा। फिर बोला—"डिक, देखो हमारे पास लोग कम हैं और वक्त बड़ा नाजुक आ गया है"

"पार्टीके लिए तो वक्त हमेशा ही नाजुक रहता है"—मैंने कह दिया

"तुम तो अविश्वासी हो, डिक। क्या नहीं हो ?"—हंसी रोककर मुझे घूरते हुए उसने पूछा।

"नहीं। लेकिन सच कहता हूं। प्रत्येक सप्ताह, प्रत्येक मास कोई न कोई घमासान खड़ा ही रहता है"

"तुम भी अजीब आदमी हो"—वह फिर हंसकर, खांसता हुआ बोला—"हमारे सामने एक काम है। नया काम। फासिज्मका खतरा ही अब सबके लिए एकमात्र खतरा है"

"मैं मानता हूं"

"फासिस्टोंको पीटना ही होगा। तुम्हारे बारेमें बातें हुई हैं और हम तुम्हारी योग्यता जानते हैं। हम चाहते हैं कि तुम हमारे साथ काम करो। हमें अपनी सँकरी गली छोड़कर राजमार्ग पर निकलना है। हम चाहते हैं कि हमारी आवाज धर्मप्राण लोगोंमें, छात्रोंमें, क्लबोंमें, व्यवसायी और मध्यवित्त लोगोंमें, सब जगह पहुँच जाए"

"मुझे जो गालियां दी गई हैं, क्या वही राजमार्ग पर जानेका रास्ता है"—मैंने धीरेसे छेड़ा

"वह सब भूल जाओ"—उसने यह नहीं कहा कि मुझे गालियाँ नहीं

दी गई। इसका मतलब था कि उसकी बात मैं नहीं मानूँ तो गालियाँ फिर मुझपर पड़ने लगेंगी। मैंने कहा—"मुझे नहीं मालूम कि नया काम कहाँ तक निभा सकूँगा।"

"हम तुम्हें एक बड़ा काम देना चाहते हैं"

"बोलिए, मैं क्या करूँ?"

"महंगाईके विरोधमें एक समितिका गठन करना चाहते हैं"

"महंगाई!"—मैंने विस्मित होकर कहा"—इस मामलेमें मैं क्या जानता हूं भला?"

"कोई बड़ी बात नहीं। तुम सीख जाओगे"

मैं एक उपन्यास पर जुटा हुआ था और ये हजरत मुझसे नून, तेलका हिसाब करवाना चाहते थे। मनमें कहा कि क्या यह लेखकके रूपमें मेरा कोई महत्व नहीं समझता।

"नीलसन भैया"—मैंने कहा—"जिस लेखकने कोई अच्छी चीज़ नहीं लिखी वह किसी कामका नहीं होता। मैं भी उसी कोटिका लेखक हूं। लेकिन मेरा मन कहता है कि किसी दिन जरूर कुछ लिख पाऊँगा। मैं आपसे कोई विशेष मेहरबानी नहीं चाहता। एक पुस्तक लिख रहा हूं जो छः महीनेमें पूरी हो जाएगी। मुझे मालूम हो जाएगा कि मेरा मन झूठ कहता है या सच। फिर मैं आपके पास सेवाके लिए हाजिर हो जाऊंगा"

"डिक, तुम्हें जनता तक पहुँचना चाहिए"—मक्खीकी तरह मेरी बात उड़ाता हुआ वह बोला

"आपने मेरा काम देखा है। क्या आप नहीं समझ सकते कि उस दिशामें कुछ कर दिखानेका अवसर मुझे मिलना चाहिए।

"पार्टीको तुम्हारी इन सब साधोंसे कोई मतलब नहीं"

"तो शायद पार्टीमें मेरा स्थान नहीं"—मैं भी अकड़ पड़ा।

"नहीं नहीं, ऐसा क्यों कहते हो। तुम तो बहुत स्पष्टवक्ता हो" —मुझे घूरता हुआ वह बोला।

"मैं मनकी बात कहनेको तड़प उठा हूं। इसलिए आपसे ही शुरूआत कर दी। पार्टीने मुझे तंग कर मारा है और सचमुच मेरा जी भर गया है"

उसने हंसते-हंसते एक सिगरेट जलाई। फिर सिर हिलाता हुआ कहने लगा—"डिक, तुम्हारे साथ बीमारी यह है कि तुम श्वेतांग लेखकोंमें बहुत उठे-बैठे हो। उन्हीं की तरह तुम बातें भी करने लगे हो। लेकिन तुम्हें अपने लोगोंसे परिचय बढ़ाना चाहिए"

"मेरा विचार है कि मैं अपने लोगोंको जानता हूं। मैं अपने इलाकेके तीन चौथाई घरोंमें आता-जाता हूं"—मुझे ऐसा लगने लगा कि उससे बातें करना फिजूल है।

"लेकिन उनके साथ तुम्हें काम भी तो करना चाहिए"—वह बोला।

"मैं तो रौसके साथ काम कर ही रहा था। पार्टीने ही मुझपर गुप्तचर होनेका शक करके मेरा काम छुड़ा दिया"

"डिक, पार्टीने फैसला किया है कि तुम्हें यह काम करना ही होगा" —वह अचानक गम्भीर होकर बोला

मैं चुप हो गया। उसकी बातका अर्थ मैं जानता था। पार्टीका

फैसला एक कम्युनिस्टके लिए आखिरी फैसला होता है, और उस फैसले को न मानना पार्टीके साथ द्रोह माना जाता है क्योंकि इससे पार्टीकी क्रियाशीलतामें बाधा आती है। सिद्धान्ततः तो यह कठोर अनुशासन मैं मानता था। मैं जानता था कि मजदूर एक क्रियात्मक एकताके बिना कभी भी राजनीतिक सत्ता नहीं हथिया सकते। सदियोंके दलित, वंचित आपसमें विभक्त, निराश, प्रथभ्रष्ट मजदूरोंके मन मुर्दा थे और कम्युनिस्ट पार्टीका कठोर अनुशासन ही उनमें जान डालनेका एक तरीका जान पड़ता था। नीलसनने साफ-साफ मुझसे पूछा था कि मैं कम्युनिस्ट हूं या नहीं। मैं कम्युनिस्ट रहना तो चाहता था, किन्तु मेरे कम्युनिज्मका ध्येय था लोगोंके दुःख सुखको जानकर उनके दिलोंको हिलाना। यह सब नीलसनको कैसे समझाता। वह खांसकर मेरी बात उड़ा देता। मैंने कहा—"अच्छा, मैं उस समितिका गठन करके फिर किसी दूसरेको सौंप दूंगा"

"तो तुम यह सब करना नहीं चाहते ?"

"नहीं"—मैंने जोर देकर कहा

"तो फिर यहाँ नीग्रो इलाकेमें क्या करना चाहते हो ?"

"मैं नीग्रो कलाकारोंका संगठन बनाना चाहता हूं"

"पार्टी अब उसकी जरूरत नहीं समझती"

मैं समझ गया कि वह सारा काम मुझसे ही कराना चाहता है। मैं उठ खड़ा हुआ। मैं हमेशाके लिए विदा लेना चाहता था, किन्तु मन अभी तैयार नहीं हो पाया था। मैं बाहर चला आया। मुझे अपने ऊपर क्रोध आ रहा था, नीलसन और पार्टीपर भी। पार्टीके फैसलेका विरोध मैंने नहीं किया था। किन्तु उसे पूर्णतया स्वीकार भी नहीं किया

मैंने इन्कार कर दिया तो खुलकर ठनेगी। स्मिथने अचानक पूछा—"राइट, तुम्हें स्विट्ज़रलेण्ड जाना कैसा लगेगा ?"

"अच्छा लगेगा। किन्तु अभी यहां काम है"

"वह छोड़ो। यह दूसरा काम ज्यादा जरूरी है"—नीलसनने वकालत की।

"स्विट्जरलैण्डमें मैं क्या करूँगा ?"

"नौजवान डेलीगेट बनाकर तुम्हें एक नवयुवक सभामें भेजेंगे। वहाँ से सोवियत् भूमि जा सकते हो"—स्मिथने समझाया।

"मेरी इच्छा तो बहुत है, लेकिन कामसे फुर्सत जो नहीं मिलेगी। जो कुछ मैं लिख रहा हूं, वह छोड़ा नहीं जा सकता"—मैंने कहा।

हम तीनों चुपचाप एक दूसरेको देखते हुए सिगरेट पीने लगे। स्मिथसे मैंने पूछा—"नीलसनने मेरे मनकी बात तो आपको बताई होगी"—स्मिथने उत्तर नहीं दिया। मुझे देर तक घूरता रहा। फिर अचानक गुर्रा उठा—"राइट, तुम काठके उल्लू हो"

मैं उठकर खड़ा हो गया। स्मिथने मुँह फेर लिया। मुझे तनिक और क्रोध आया होता तो उसकी नाक तोड़ डालता। नीलसन हँसने लगा।

"यह सब कहना क्या जरूरी था ?"—मैंने क्रोधसे काँपकर पूछा। मुझे याद आया कि बचपनमें जब भी किसीने मुझे गाली दी थी, तो मैंने जी तोड़कर मार-पीट की थी। किन्तु अब मैं आदमी था और अपने क्रोध पर काबू पाना ही मेरा धर्म था। मैंने अपना हैट उठाया और बाहर निकल गया।

"आखिरी सलाम"—मैं कहता आया।

सैलकी अगली सभामें मैंने बोलनेकी इजाजत मांगी। नीलसन वहां था, इवान्ज और ग्रीन भी। मैंने कहा—

"बन्धुओ, पिछले दो सालसे मैं आप लोगोंके साथ काम करता आया हूँ। फिर भी मैं देखता हूं कि पार्टीमें मेरी स्थिति दिन पर दिन कठिन होती जा रही है। यह सब कैसे हुआ सो एक लम्बी कहानी है, जो यहाँ सुनानेसे कोई लाभ नहीं। लेकिन मुझे अपनी उलझनका किनारा मिल गया है। मैं चाहता हूं कि पार्टीकी सदस्यावलिसे मेरा नाम काट दिया जाए। पार्टीके आदर्शोंसे मेरा कोई मतभेद नहीं। किन्तु पार्टीके फैसले मानना मेरे लिये और सम्भव नहीं रह गया। मैं उन संस्थाओंका सदस्य बना रहूंगा, जहाँ कि पार्टीका प्रभाव है और वहाँ पार्टीके प्रोग्रामको निभानेकी चेष्टा करूँगा। मैं बातको जिस मनोभावसे कह रहा हूँ, उसी मनोभावसे आप उसे सुनेंगे, यह आशा मुझे है। शायद भविष्यमें फिर कभी पार्टीके नेताओंसे मिलकर मैं बता सकूं कि मैं क्या-क्या कर सकता हूं"

मैंने बोलना बन्द किया तो चारों ओर सन्नाटा छाया था। सभाका नीग्रो मन्त्री घबड़ाकर नीलसन, इवान्ज और ग्रीनकी ओर ताकने लगा।

"क्या साथी राइटकी बात पर कोई बहस करना चाहते हैं?"—आखिर मन्त्रीने पूछा।

"मेरा प्रस्ताव है कि बहस स्थगित की जाए"—नीलसनने कहा। सबने उसका समर्थन किया। मैं जानेके लिये उठ खड़ा हुआ। "मैं अब जाता हूं"—कहकर मैंने इजाजत चाही। किसीने मुँह न खोला।

मैं अन्धेरी रातमें घरकी ओर बढ़ा तो मेरे सिर परसे मानो एक बोझ सा उतर गया था। और मैंने बोझेको एक भद्र भावसे ही उतारकर पटका था। मैंने गाली-गलौज नहीं की। शिकायत नहीं की, उलाहने नहीं दिए, किसी पर आक्षेप नहीं किया। अपना कोई विश्वास नहीं छोड़ा।

अगली रातको दो नीग्रो कम्युनिस्ट मेरे घर आए। उन्होंने ऐसा भाव बनाए रक्खा जैसे उनको पहली रातकी घटना मालूम ही न हो। मैंने धैर्य-पूर्वक उनको सब कुछ बता दिया। उन्होंने अपने आनेका आशय समझाते हुए कहा—"नीलसन तो और ही किस्सा बताता फिरता है"

"क्या कहता है ?"

"कहता है कि पार्टीके भीतर ट्राट्स्कीवादी एक दल खड़ा करके तुम पार्टीमेंसे और मेम्बरोंको तोड़ना चाहते हो"

"क्या ?"—मैंने चमकर पूछा—"किन्तु यह सत्य नहीं है। मैंने पार्टीसे नाम कटानेकी बात कही थी। किसी झगड़ेके लिये मैं तैयार नहीं हूं"—मैं सोचने लगा कि इसका मतलब क्या हो सकता है ? फिर मैं बोला—"मेरी समझमें अब मुझे पार्टीसे सम्बन्ध तोड़ डालना चाहिए। नीलसनने अपनी चाल नहीं बदली तो मैं त्यागपत्र दे दूंगा"

"तुम त्याग पत्र नहीं दे सकते"—वे बोले।

"क्या मतलब ?"—मैंने पूछा।

"कम्युनिस्ट पार्टीसे कोई त्याग पत्र नहीं दे सकता"

मैं उनकी तरफ देखकर हँसने लगा। बोला—"तुम्हारा दिमाग ठिकाने नहीं है"

"नीलसन तुमको पार्टीसे निकालनेका ऐलान करेगा। त्यागपत्रकी बात वह उठने ही नहीं देगा। त्याग पत्रका मतलब होगा कि लोगोंको पार्टीमें कोई गड़बड़ दीखने लगे। नीलसन इसको इजाजत नहीं दे सकता"

मैं क्रोधसे तमतमा उठा। क्या पार्टी इतनी भीरु और आत्म-विश्वासहीन है कि मेरी बात पर विश्वास नहीं कर सकती! इन सब हथकण्डोंका क्या मतलब? फिर अचानक सब कुछ मेरी समझमें आ गया। ये सब तो जारशाहीके दिनोंमें गुप्त षडयन्त्रकारियोंके हथकण्डे थे। मैंने पार्टीका फैसला नहीं माना इसलिये पार्टी मुझ पर कालिख पोतना चाहती थी। किन्तु अमेरिकामें इसकी क्या जरूरत थी। यहाँ तो वातावरण ही दूसरा था। पार्टी क्या छायालोकमें रहती थी? मैंने बन्धुओंसे कहा—

"नीलसनसे कह देना कि यदि वह झगड़ा बढ़ाना चाहता है, तो मैं भी तैयार हूं। अगर वह चुप रहे तो अच्छा होगा। किन्तु यदि खुलकर लड़ना चाहता है, तो पागल है। और क्या कहूँ?"

मुझे नहीं मालूम कि मेरा पैगाम नीलसन तक पहुँचा या नहीं। किन्तु मेरे खिलाफ खुले आम कुछ नहीं कहा गया। हाँ पार्टीके भीतर बवण्डर उठ खड़ा हुआ। मुझे गद्दार, विश्वासहीन, आदर्श भ्रष्ट और न जाने क्या-क्या कहा गया। मेरे साथी मुझे जानते थे, मेरे परिवार तथा बन्धु-बान्धवोंको जानते थे। मेरा घोर दारिद्र्य भी उनसे छिपा नहीं था। किन्तु मेरे व्यक्तिवादसे वे सदा घबराते रहे थे। और व्यक्तिवाद तो मेरी नस-नसमें समाया था।

इसी समय मेरी नौकरी बदल गई। फेडरल नीग्रो थियेटरमें मुझे प्रचारकका काम मिला। कई बार मुझे पार्टीके भीतर चलनेवाली कतरब्योंत जाननेकी बड़ी इच्छा होती थी। किन्तु जो कुछ भी सुन पाता था, उसमें एक दूसरे पर आरोप और लाञ्छन लगानेके सिवाय कुछ नहीं मिलता था। थियेटरमें जो नाटक खेले जाते थे, वे सब श्वेतांग लेखकोंके लिखे होते थे। थियेटरकी डाइरेक्टर एक श्वेतांग महिला थी। वह किसी भी नाटकको लेकर उसमें नीग्रो पात्र और भूमिकाका समावेश कर देती थी और बस वही नाटक नीग्रो जीवनका प्रतिबिम्ब बताकर जनताके सामने रक्खा जाता था। चालीसके करीब नीग्रो अभिनेता और अभिनेत्रियाँ थियेटरमें काम करते थे। प्रायः सभी ऊबेसे रहते थे। मुझे सब ओर बड़ी व्यर्थता-सी दीख पड़ी। यहाँ एक अवसर था कि नीग्रो जीवनका यथार्थ प्रदर्शन किया जा सके, किन्तु किसीने उस ओर ध्यान ही नहीं दिया था। मैंने अच्छी तरहसे सोच समझकर अपने श्वेतांग मित्रोंसे बात चलाई। वे थियेटरके मामलोंमें कुछ हाथ रखते थे। मैंने प्रस्ताव किया कि उस श्वेतांग महिलाकी जगह कोई ऐसा डाइरेक्टर होना चाहिये, जो नीग्रो जीवनको जानता हो। उन्होंने कुछ न कुछ करनेका वायदा किया। एक महीनेके भीतर ही वह श्वेतांग महिला वहाँसे हटाई गई और हमारा थियेटर एक दूसरे स्थान पर ले जाया गया। मेरी सिफारिश पर एक प्रतिभाशाली यहूदी, चार्ल्स डि शीमको डाइरेक्टर बना दिया गया। उससे बातें करके मैंने अपने मनकी कह डाली।

अब मैं खुश था। आखिर मैं एक ऐसी स्थितिमें था, जहाँसे कि

मैं सुझाव पेश कर सकता था और मेरी बातों पर ध्यान दिया जाता था। मैंने इरादा किया कि एक अच्छा नीग्रो थियेटर बनानेकी पूरी चेष्टा होनी चाहिये। मैंने काम करनेवालोंकी एक सभा बुलाकर डि शीमका परिचय सबसे कराया। डि शीम भी कुछ बोले और सबने उनका स्वागत किया। इसके बाद पाल ग्रीनका एकाँकी नाटक सबको दिया गया और सबके पार्ट नियुक्त हुए। मैं बैठकर रिहर्सल देखने लगा। किन्तु कुछ गड़बड़-सी दीख पड़ी। नीग्रो अभिनेता अभिनेत्रियाँ पहले तो हकलाए, फिर चुप हो गए। डि शीम कुछ घबरा-से गए। एक अभिनेता उठकर बोला—"डि शीम महाशय, हमारा खयाल है कि यह नाटक अश्लील है। अमेरिकाकी जनताके सामने हम ऐसा नाटक प्रस्तुत करना नहीं चाहते। हमें विश्वास नहीं होता कि नीग्रो जातिका जीवन कहीं ऐसा है, जैसा कि इस नाटकमें दिखाया गया है। हम तो ऐसा नाटक खेलना चाहते हैं जिससे जनता हमें चाहने लगे"

"तो कैसा नाटक चाहिए ?"—डि शीमने पूछा।

वे कुछ नहीं बोले। कुछ जानते ही नहीं थे। मैंने दफ्तरमें जाकर उन सबका पुराना रिकार्ड देखा। बेचारे सदासे सस्ते नाटक खेलते रहे थे। एक अच्छा नाटक सामने देख कर वे घबरा गए। सोचने लगे कि यदि जनताने उस नाटकको पसन्द नहीं किया तो उनकी बदनामी होगी। किन्तु जनता क्या चाहती है और क्या पसन्द करती है, यह वे जानते ही नहीं थे। एक बार तो मुझे विश्वास होने लगा कि नीग्रो लोगोंके बारे में श्वेतांग लोग जो कहते हैं, वह ठीक है। नीग्रो लोग बच्चे हैं जो कभी बड़े नहीं होंगे। डि शीमने सबसे कह

दिया कि वे जो नाटक चाहें वही खेलनेका बन्दोबस्त किया जाएगा। किन्तु सब भीगी बिल्ली-से बैठे रहे। उन्हें अपने मनकी इच्छाएँ जतानेकी भी आदत नहीं थी।

कई दिन पश्चात् मुझे मालूम हुआ कि सबने मिलकर एक आवेदन-पत्र लिखा है जिसमें डि शीमके निकाले जानेकी माँग की गई है। मैं सन्नाटेमें आ गया। मुझसे भी उस आवेदन-पत्र पर हस्ताक्षर करनेके लिए कहा गया। मैंने इन्कार कर दिया। मैंने पूछा—"क्या आप अपने दोस्तोंको नहीं पहिचानते ?"

सब चुप रहे। मैंने डि शीमको बुला भेजा और सलाह की कि क्या किया जाए। डि शीमने पूछा—

"बोलिए—मैं क्या करूँ ?"

"इनसे दिल खोलकर बातें कीजिए। कह दीजिए कि आवेदन-पत्र देकर आपको निकाल देना इनका अधिकार है"

डि शीमने सभा बुलाकर कह दिया—"आप लोगोंको मेरे विरुद्ध आवेदन-पत्र देनेका पूरा अधिकार है, किन्तु मैं स्वयं चाहता हूं कि बातचीत करके ही ग़लतफ़हमी दूर कर ली जाए तो अच्छा होगा।" एक नीग्रोने खड़े होकर पूछा—"आपको किसने कहा कि हम आवेदन-पत्र दे रहे हैं ?"

डि शीमने मेरी ओर देखकर दो-चार टूटे-फूटे वाक्य कहे। एक नीग्रो लड़की चिल्लाई—"हमारे थियेटरमें एक भेदिया लगा है"

सभाके उपरान्त कुछ नीग्रो मेरे आफिसमें घुस आए और जेबसे छुरियाँ निकाल कर मेरी ओर हिलाते हुए बोले—"इसके पहले कि हम

तुम्हारी आंतें निकाल बाहर करें, तुम यह काम छोड़ कर चले जाओ"—मैंने अपने श्वेतांग मित्रोंको फोन कर दिया। मैं बोला—"मुझे तुरन्त दूसरे काम पर भेज दो, नहीं तो मेरी हत्या होनेमें देर नहीं"

चौबीस घण्टेके भीतर मैंने और डि शीमने एक दूसरेसे विदा ली और दोनों उस थियेटरको सलाम करके बाहर निकल आए। मुझे एक दूसरे थियेटरमें भेज दिया गया और मैंने कसम खा ली कि अपने विचार लिख भले ही डालूँ, किसीके सन्मुख रक्खूँगा नहीं।

एक सांझको कई नीग्रो कम्युनिस्ट मेरे पास आकर बोले कि बहुत जरूरी और गुप्त बातें मुझसे करनी हैं। मैंने अपने कमरेका दरवाजा बन्द करके उनको बैठाया। वे बोले—"डिक, पार्टी तुम्हे रविवारको एक मीटिंगमें बुलाएगी"

"क्यों? मैं तो अब मेम्बर भी नहीं हूँ"—मैंने कहा।

"कोई बात नहीं। वे चाहते हैं कि तुम मीटिंगमें आओ"

"लेकिन सड़क पर तो कम्युनिस्ट मुझसे मुँह फेर कर चले जाते हैं। मीटिंगमें मेरा क्या करेंगे?"

वे कुछ सिटपिटाए। शायद बताना नहीं चाहते थे। मैंने कहा—"अगर बात नहीं बताओगे तो मैं मीटिंगमें नहीं आ सकता"

कुछ कानाफूसी करनेके बाद उन्होंने मुझे बतानेका फैसला किया। कहने लगे—"डिक, रौस पर पार्टी मुकदमा चलाएगी"

"किस लिए?"

उन्होंने मुझे आरोपोंकी एक लम्बी लिस्ट सुना डाली। रौससे अनेक कसूर हुए थे। मैंने पूछा—

"तो इन सबसे मेरा क्या मतलब ?"

"तुम आओगे तो समझ जाओगे"—मुझे सन्देह होने लगा। शायद वहाँ बुलाकर वह मुझपर मुकदमा चलाना चाहते हों, ताकि मुझपर कालिख पोत सकें। मैंने कहा—"मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ। तुम लोग मुझपर ही मुकदमा चला बैठे तो ?"

उन्होंने कसम खाई कि ऐसा नहीं होगा। पार्टी तो रौसका मुकदमा मुझे दिखाकर यह बताना चाहती थी कि "मजदूरोंके शत्रुओं" का क्या हशर होता है। बातें होती रहीं और एक नई घटना देखनेका लालच मुझपर सवार हो गया। मैं मुकदमा देखना चाहता था, किन्तु यह नहीं चाहता था कि मेरे ऊपर मुकदमा चलने लगे। मैंने कहा—

"नीलसनने मुझपर जो आरोप लगाए हैं, वे मिथ्या हैं। मैं यदि मुकदमेमें आता हूं तो वे सच्चे तो नहीं हो जाएंगे ?"

"नहीं, नहीं। तुम आओ तो"

"बहुत अच्छा। लेकिन एक खयाल रहे। यदि मेरे साथ धोखा हुआ तो लड़ूंगा। कान खोल कर सुन लीजिए। नीलसन पर मेरा विश्वास नहीं है। मैं राजनीतिज्ञ नहीं हूं और जो आदमी दिन-रात जालसाज़ी करता रहता है, उसकी चालें पहलेसे समझना भी मेरे बसकी बात नहीं है"

अगले रविवारको दोपहर बाद रौसका मुकदमा चला। सभा-भवनमें, द्वार पर और गलीमें साथी पहरा दे रहे थे। मैं पहुँचा तो तुरन्त भीतर ले जाया गया। मैं उत्तेजित-सा था। ऐसी सभाओंका एक नियम होता है कि भीतर जानेके उपरान्त सभा समाप्त हुए बिना आप बाहर

नहीं आ सकते। डर रहता था कि आप पुलिसके पास जाकर सभा पर धावा न करवा दें। अभियुक्त रौस हालके दूसरे सिरे पर एक मेज़के सहारे बैठा था। उसका मुख सूखा था। मुझे दुःख हुआ। किन्तु मुझे ऐसा भी लगा कि रौसको मज़ा आ रहा है। उसके सूने जीवनमें यह एक दिलचस्प घटना थी।

मैं सोचने लगा कि कम्युनिस्ट बुद्धिवादियोंसे क्यों घृणा करते हैं ?

रूसी क्रान्तिका जो इतिहास मैंने पढ़ा था उसी पर मेरी आँखें गईं। पुराने रूसमें करोड़ों दरिद्र, निरक्षर लोग थे, जिनका मुट्ठीभर शिक्षित और अभिमानी रईस लोग शोषण करते थे। रूसके कम्युनिस्टोंने शिक्षित वर्गका वही रूप देखा था। इसी लिए उनको बुद्धिवादियोंसे घृणा है। वे यह नहीं देख पाए कि पश्चिमके देशोंमें गरीब लोग भी शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। यहाँ एक नीग्रो भी, यदि उसको पढ़ाई-लिखाईसे प्यार हो तो, शोषण और दारिद्रयके बीच रहता हुआ पढ़-लिख कर संसारको समझनेकी क्षमता प्राप्त कर सकता है। किन्तु कम्युनिस्टोंने तो इन सब बातोंको समझनेकी जरूरत ही नहीं समझी।

मुकदमा एक शान्तभावसे शुरू हुआ। जैसे किसीने मुर्गी चुराई हो और पड़ौसी लोग उसपर विचार करने बैठे हों। कोई भी बोलना चाहने पर बोल सकता था। बोलनेकी पूर्ण स्वाधीनता थी। फिर भी मैंने देखा कि सभाकी बातचीत एक बन्धे हुए दायरेके बाहर नहीं निकल सकी। कम्युनिस्ट पार्टीकी केन्द्रीय समितिके एक सदस्यने उठकर संसारकी वर्त्तमान परिस्थितिका चित्रण किया। उसने जर्मनी, जापान और इटलीमें फासिज्मके आक्रमणोंकी कहानी खूब बढ़ा-चढ़ा कर सुनाई।

रौसके अपराधोंको साबित करनेके लिए यह भूमिका जरूरी थी। सबको यह समझना जरूरी था कि दलित वंचित मानवता किस भयानक बीहड़से गुजर रही है। और जनताके दुःख सन्तापके बारेमें कम्युनिस्ट पार्टीके पास तथ्योंकी कमी नहीं होती। उन्हें झूठ बोलनेकी कभी आवश्यकता नहीं पड़ती।

दूसरे वक्ताने सोवियत् राष्ट्रका महत्व समझाया। किस प्रकार मजदूरोंका एकमात्र देश शत्रुओंसे घिरा था, किस प्रकार सोवियत् राष्ट्र अपने शिल्पोद्योग बढ़ानेकी जी तोड़ कोशिश कर रहा था और किस प्रकार सोवियत् सरकार मजदूर संसारको एकताके सूत्रमें बाँधकर शान्तिका पथ-प्रदर्शन कर रही थी। यह सब भी बहुत हद तक सच था। किन्तु अभी तक अभियुक्तके विषयमें एक शब्द भी नहीं कहा गया। और लोगोंकी तरह बैठा वह भी सब कुछ सुन रहा था। अभी समय नहीं आया था कि इस संसारव्यापी संघर्षमें उसके पापोंका निर्णय किया जा सके। निर्णयके पूर्व एक कसौटीकी जरूरत थी, जिससे कि किसी पार्टी-मेम्बरके गुनाहोंका हिसाब लगाया जा सके।

आखिरकार एक वक्ताने शिकागोके नीग्रो लोगोंके दुःख-दर्दकी कहानी शुरू की और बताया कि उन नीग्रो लोगोंका संसार-व्यापी मजदूर आन्दोलनसे क्या सम्बन्ध है। अगले वक्ताने उस आन्दोलनमें शिकागो की कम्युनिस्ट पार्टीका स्थान और महत्व बताया और हालमें जितने लोग बैठे थे, सबको विश्वास होने लगा कि संसारमें जो घोर नैतिक संग्राम चल रहा है, उसमें व्यक्तिगत रूपसे उनका भी हाथ है। तीन घण्टे तक ये वक्तृताएं चल चुकी थीं और सबके हृदयमें धरती पर मानवके जीवनकी

एक नई झाँकी उतर चुकी थी। सांझ होते-होते रौस पर लगाए हुए आरोपोंका जिक्र होने लगा। ये आरोप पार्टीके लीडरोंने नहीं लगाए बल्कि उन लोगोंने जो रौसके निकटतम बन्धु थे और जो उसे अच्छी तरह जानते थे। आरोप बहुत भारी थे। रौसका कचूमर निकलने लगा। जो नैतिक दबाव उस पर पड़ रहा था, उसके नीचे दबकर वह त्राहि-त्राहि कर उठा। उसके विरुद्ध आरोप लगानेके लिए किसी पर जोर नहीं दिया गया। सबने अपने आप ही कह डाला कि किस दिन उनकी रौससे क्या-क्या बातें हुई थीं। रौसकी "काली करतूतों" का घड़ा धीरे-धीरे भरने लगा।

फिर रौस अपना बचाव करनेके लिये खड़ा हुआ। मैंने सुना था कि वह कुछ गवाह पेश करेगा। किन्तु उसने किसीका नाम नहीं लिया। खड़ा होकर वह काँपने लगा। उसने बोलना चाहा, किन्तु शब्द मुँहसे नहीं निकल पाए। हालमें मौतका सन्नाटा छाया था। रौसके रोम-रोम से "पाप" की गन्ध आने लगी। उसके हाथ काँप रहे थे और मेजका सहारा लेकर ही वह खड़ा रह सका। उसने एक मन्द, भीत स्वरमें कहा—"साथियों, मुझ पर जो आरोप लगाए गए हैं, सब सच हैं"

और उसका स्वर सुबकियोंमें डूब गया। किसीने उसे प्रेरणा नहीं दी थी। न उसे मारा-पीटा अथवा धमकाया गया था। यदि वह चाहता तो हालके बाहर जा सकता था और जीवन भर किसी कम्युनिस्टका मुँह देखनेकी उसे जरूरत नहीं थी। किन्तु यह सब उसने नहीं किया, करना नहीं चाहा। पार्टीके साथ उसके प्राणोंका गठबन्धन हो चुका था और मरते दम तक उसका पिण्ड छूटना कठिन था। वह कहता रहा कि किस

प्रकार उसने गुनाह किए और किस प्रकार वह पश्चात्ताप करना चाहता है ।

मैं बैठा हुआ उन लोगोंके बारेमें सोचने लगा, जिन्होंने मास्कोके मुकदमों[1] पर सन्देह किया था। यदि उन्होंने यह दृश्य देखा होता तो शायद उनका सन्देह दूर हो जाता। रौसने कोई नशा नहीं किया था। वह जागृत अवस्थामें ही था। कम्युनिस्ट पार्टीके भयके कारण उसने वे सब गुनाह अपने सिर नहीं लिए थे। दण्डका विधान भी स्वयं उसीने किया था। कम्युनिस्टोंने तो केवल उसके साथ बातें करके उसको एक नई दृष्टि प्रदान की थी, जिससे कि वह अपने गुनाहोंको देख सके। फिर वे चुपचाप बैठ कर उसके पापोंकी कहानी सुनते रहे थे। वह उन्हींमेंका एक था, उसका रंग और जाति चाहे जो हो। उसका हृदय उनके हृदयोंसे मिलकर धड़कता था। ऐसी अवस्थामें उसके गुनाह यदि उसको उन साथियोंसे बिलगाना चाहें तो उसके लिए एक ही रास्ता था। उसे प्रेरणा मिली कि अपने गुनाह क़बूल कर ले और क्षमाकी प्रार्थना करे।

मुझे एक दृष्टिसे तो यह दृश्य अच्छा लगा। किन्तु उसके भीतर भरे अज्ञान और अन्धेपनको देखकर मैं सिहर उठा। उनके जीवनमें इतनी क्षुद्रता थी, इतना संकुचित था उनका जीवन और उन्होंने दुःख-

---

१. मास्कोके मुकदमोंमें सब अभियुक्तोंने स्वयं अपने गुनाह स्वीकार किए थे। उनके विरुद्ध कोई गवाही इत्यादिकी जरूरत नहीं समझी गई। इन मुकदमोंमें ही लेनिनके समस्त साथियोंको स्टालिनने मौतके घाट उतारा था।

दर्द इतने दिन तक झेला था कि उनके लिए शत्रु और मित्रको पहिचानना एक प्रकारसे असम्भव हो गया था। मुझे वे सब शत्रु मान बैठे थे। यदि उनके हाथमें राज्यसत्ता होती, तो मुझे गद्दार कहकर वे फांसी भी दे देते। उनको पूर्ण विश्वास था कि वे सच्चे रास्ते पर थे और मैं गुमराह। और वहाँ बैठनेको मेरा जी नहीं चाहा। मैं बाहरके मुक्त वातावरणमें जाकर वह सब भुला देना चाहता था। उठकर मैं द्वारके पास पहुंचा। एक साथीने सिर हिलाकर कहा—"आप अभी नहीं जा सकते"

"लेकिन मैं जा रहा हूँ"—क्रोधसे चिल्लाकर मैंने उत्तर दिया। हम एक दूसरेको घूरते हुए खड़े हो गए। एक और साथी भागकर आया। मैं आगे बढ़ा। पहले वाला साथी दूसरेका संकेत पाकर रास्तेसे हट गया। वे हंगामा नहीं चाहते थे। मैं भी नहीं चाहता था। उन्होंने मेरा रास्ता छोड़ दिया। शिकागोकी अन्धेरी गलियाँ पार करके घर जाते-जाते मेरा मन शोकसे भर गया। मैं फिर एकबारगी अकेला रह गया था। मुझे उनके धिक्कारसे इतनी चोट नहीं पहुँची थी कि मैं आँसू बहाता। बचपनमें ही मैंने यह सीख लिया था कि अज्ञान से चोट खाना उचित नहीं होता। बिस्तरमें पड़े-पड़े मैंने अपने आपसे कहा—"मैं उन्हींका हमदर्द हूं। वे मुझे दूतकारें, तो भी"

फैडरल एक्सपैरीमैण्टल थियेटरसे फैडरल लेखक परिषदमें मेरी बदली हो गई। इस प्रतिष्ठानमें अधिकतर लेखक कम्युनिस्ट थे। वे मुझ जैसे "गद्दार" से एक शब्द भी बोलना पाप समझते थे। मैं उनके साथ एक आफिसमें काम करता था, एक रेस्तरांमें चाय पीता था, एक लिफ्टमें उतरता चढ़ता था, किन्तु उनमेंसे किसीने भी किसी

दिन आँख उठाकर नहीं देखा, न कभी एक शब्द मुझसे कहा। एक महीना काम करनेके बाद मुझे निबन्ध विभागका भार सौंपा गया और मेरी मुसीबत आ गई। एक दिन परिषदके प्रधानने मुझे बुलाकर पूछा—"राइट, तुम किसकी सिफारिशसे इस काम पर आए थे?"

"मालूम नहीं। किन्तु, क्यों?"

"तो तुरन्त तुम्हें पता लगाना चाहिए"

"क्या बात है?"

"कुछ लोग अयोग्य बताकर तुम्हे यहाँसे हटाना चाहते हैं"

उसने कई आदमियोंके नाम लिए जो कल तक मेरे साथी थे। मैं समझ गया कि बात कहाँ तक पहुंच चुकी है। वे मेरी रोटी छीनने पर तुले थे।

"आप उनकी शिकायतोंका क्या जवाब देना चाहते हैं"—मैंने पूछा

"कुछ भी नहीं"—वह हँसकर बोला—"मैं समझता हूँ कि क़िस्सा क्या हैं। मैं उन्हें सफल नहीं होने दूंगा। मैं नहीं चाहता कि तुम इस कामसे भी हाथ धो बैठो"

मैं उसे धन्यवाद देकर चलने लगा। लेकिन उसके शब्दोंने एक शंका मेरे मनमें उठा दी थी। उलट कर मैंने पूछा—

"इस कामसे भी! आपने क्या कहा?"

"तो क्या तुम पुरानी कहानी नहीं जानते?"

"कौनसी कहानी? आप कह क्या रहे हैं?"

"तुम फैडरल नीग्रो थिएटर छोड़कर क्यों आये थे?"

"वहाँ कुछ कहा सुनी हो गई थी। वहाँके नीग्रो लोगोंने मुझको वहाँसे भगा दिया"

"तो क्या तुम्हारा खयाल है कि उन लोगोंको किसीने उकसाया नहीं था?"—वह हंसकर बोला।

मैं माथा पकड़कर बैठ गया और मुँह बाए उसकी ओर देखता रहा। यह तो बहुत भयानक बात थी।

"यहाँ तुम्हें डरनेकी जरूरत नहीं। काम करते रहो, लिखते रहो" —उसने कहा

"मुझे विश्वास नहीं होता कि..........

"खैर। भूल जाओ"

पर अभी तो बहुत कुछ होना बाक़ी था। एक दिन दोपहरको मैं अपना काम समाप्त कर बाहर निकला तो गलीमें एक जलूस देखा। झण्डे इत्यादि लिए हुए मेरे पुराने साथी, आदमी और औरतें, लेखकोंकी वेतन-वृद्धिके लिए चिल्ला रहे थे। मुझे उस जलूसके बीचसे होकर रास्ता पार करना था। ज्योंही मैं उधर बढ़ा, किसीने मेरा नाम लेकर कहा—

"वह देखो राइट है। साला ट्राट्स्कीका चेला"

"हम तुमको पहचानते हैं, जानते हैं.........राइट गद्दार है...... सारी भीड़ चिल्लाने लगी।

एक क्षण मुझे ऐसा लगा जैसे कि मैं मर चुका। अब तो नौबत यहाँतक आ गई थी कि सरे बजार मुझपर गालियाँ बरसने लगीं। मैं नीचेसे ऊपर तक हिल उठा। दिन बीतने लगे। मैं अपना काम करता रहा। वहाँकी यूनियनका प्रधान भी मैं चुना गया, हालांकि पार्टीने मेरे चुनावमें जमकर मेरा विरोध किया। यूनिननमें मेरा प्रभाव मिटानेके लिए कम्युनिस्ट यूनियनको तोड़नेके लिए तैयार हो गए।

१९३६ के मई दिवसको हमारे सदस्योंने फैसला किया कि हम भी सार्वजनिक परेडमें भाग लेंगे। हमें आदेश भी मिल गया कि हमारे यूनियनके लोग परेडमें शामिल होनेके लिए कहां एकत्र हों। किन्तु जब मैं ठीक समयपर ठीक स्थान पर पहुंचा तो देखा कि परेड चल चुकी है। मैंने अपने यूनियनके झण्डेकी खोज की, किन्तु कहीं नहीं देख पाया। एक नीग्रोसे पूछा तो वह बोला—

"वह यूनियन तो पन्द्रह मिनट पहले आगे निकल गई है। तुम शामिल होना चाहते हो तो यहीं चले आओ"

मैं उसको धन्यवाद देकर भीड़को चीरता हुआ आगे बढ़ा। सहसा किसीने मेरा नाम पुकारा। मैंने मुड़कर देखा कि मेरी बाईं ओर हमारे इलाकेकी कम्युनिस्ट पार्टीके लोग लाइन बाँधे मार्च करनेके लिए तैयार खड़े थे। एक पुराना साथी बोला—"यहाँ चले आओ" मैं उसके पास पहुंचा तो वह बोला—"आज परेडमें शामिल नहीं होगे क्या ?"

"मेरी यूनियनसे मैं बिछुड़ गया हूं"—मैंने कहा।

"कोई बात नहीं। हमारे साथ चलो"

"कैसे कहूँ"—मुझे पार्टीके साथ अपने झगड़ेकी बात याद आ गई।

"यह मई दिवस है। अपने लोगोंका साथ निभाओ"—वह फिर बोला।

"तुम तो जानते हो मेरे साथ क्या मुसीबत है"—मैंने कहा।

"वह कोई बात नहीं। आज तो सभी मार्च कर रहे हैं"

"मेरा जी नहीं मानता"—मैंने सिर हिलाकर कहा।

"तुम डर गए क्या ? आज तो मई दिवस है"—उसने फिर कहा और मेरा हाथ पकड़ कर लाइनमें खींच लिया। मैं खड़ा खड़ा उससे बातें करने लगा। इतनेमें कोई चिल्लाया—"लाइनसे बाहर निकलो"

मैंने मुड़कर देखा। पैरी नामका एक श्वेतांग कम्युनिस्ट मुझे घूर रहा था। मैंने कहा—

"आज मई दिवस है और मैं मार्च करना चाहता हूँ"

"निकल जाओ"—वह फिर चिल्लाया

"मुझे लाइनमें बुलाया गया है"—मैंने कहा। मैंने उस नीग्रो कम्युनिस्टकी ओर देखा जिसने मुझे बुलाया था। मैं खुले आम मार पीट नहीं चाहता था। मित्रको देखा तो उसने आखें फेर लीं। वह डरा हुआ था। मेरी समझमें नहीं आया कि क्या करूं। मैंने उससे कहा—

"तुम्हींने तो मुझे बुलाया था"—उसने उत्तर नहीं दिया। मैंने उसकी बाँह पकड़ कर कहा—"कह क्यों नहीं देते कि तुमने मुझे बुलाया था"

"मैं आखिरी बार कहता हूं कि लाइनसे निकल जाओ"—पैरी चिल्लाया।

मैं नहीं हिला। मैं चाहता था कि हट जाऊँ किन्तु मेरे भीतर इतने आवेश इधर उधर दौड़ रहे थे कि मैं पत्थर हो गया। एक और श्वेतांग कम्युनिस्ट पैरी की सहायताके लिये आ पहुंचा। पैरीने मेरी कालर पकड़ कर खींचना शुरू कर दिया। मैंने पाँव अड़ा दिए, तब दोनोंने मुझे दबोच लिया। मैं छूटनेके लिए हाथ पाँव मारता हुआ बोला—"मुझे छोड़ दो"

किन्तु कुछ हाथोंने मुझे धरती परसे उठा लिया था। दूसरे ही

क्षण मुझे फेंक दिया गया। एक दीवार पकड़ कर मैंने सिरके बल गिरनेसे अपने आपको बचाया। धीरे-धीरे उठकर मैं खड़ा हो गया। पैरी और उसका साथी मुझे घूर रहे थे। श्वेतांग और काले कम्युनिस्टोंकी लाईनें शीतल आँखोंसे मुझे निहार रही थीं, जैसे मैं उनका कोई नहीं। मेरे हाथोंमें दर्द था, खून भी बह रहा था, किन्तु अचानक मुझे विश्वास नहीं हो सका कि मेरे साथ कलके साथियोंने ऐसा व्यवहार किया है। दो श्वेतांग कम्युनिस्टोंने सरे बाजार मुझे मारा था और काले कम्युनिस्ट खड़े देखते रहे थे मैं जड़ होकर रह गया। मेरे भीतर सूना सूना होने लगा। किन्तु मुझे क्रोध नहीं आया। मेरा बचपन बीत गया था।

सहसा कम्युनिस्ट पार्टीका दस्ता मार्च करने लगा। विश्व क्रान्तिके प्रतीक, हँसिया हथौड़ेके चिन्होंवाले लाल झण्डे मई दिवसकी हवामें लहराने लगे। अनेक कण्ठोंसे गान उमड़ पड़ा। अगणित पदचापोंने धरतीको हिला दिया। मेरे पाससे नर नारियोंकी कतार पर कतार गुजरने लगी। सबके मुखपर आत्मविश्वास था। मैं कुछ दूरतक जलूसके पीछे चला, फिर पार्कमें जाकर एक बेञ्चपर बैठ गया। मैं कुछ सोच नहीं रहा था। सोचनेको तो शक्ति ही गवां बैठा था। मेरे मस्तिष्कपर एक स्पष्ट छाप पड़ चुकी थी। मैं बड़बड़ाने लगा—"ये अन्धे हैं। इनके शत्रुओंने इनपर जुल्म ढा-ढा कर इन्हें अन्धा बना दिया है"—मैंने एक सिगरेट सुलगाई। धूपमें चमकती हवामें एक गान भरता जा रहा था—"भूखके बन्दियो अब उठ बैठो"

मुझे अपनी लिखी कहानियां याद आईं। उन कहानियोंमें मैंने कम्यु-

निस्ट पार्टीको प्रथम और गौरवमय स्थान दिया था। मुझे खुशी हुई कि वे कहानियां मैं लिख चुका था, कि वे छप चुकी थीं। क्योंकि मेरा दिल कहने लगा कि वैसी कहानियां मैं फिर कभी नहीं लिख सकूँगा, कि जीवन की वैसी गहन अनुभूति फिर मुझे कभी नसीब नहीं होगी, कि उतनी आशासे मैं फिर कभी नहीं फड़क पाऊँगा, कि उतना अटूट विश्वास मेरे मानसमें फिर कभी नहीं जुट पाएगा। जलूस अब भी जा रहा था। झण्डे अब भी लहरा रहे थे। आशाके स्वर अब भी निकल रहे थे। किन्तु मेरे लिए……

मैं घर की ओर चल पड़ा। मन कह रहा था कि चराचर विश्वमें जिस तत्वके विषयमें हम कुछ नहीं जानते वह है मनुष्यका हृदय, कि जीवनमें जिसकी साधना हम कभी नहीं करते वह है एक मानवीय जीवनका आदर्श। मैंने सोचा कि शायद मेरे जले हुए दिलसे एक चिंगारी निकलकर इस अन्धेरेको चमका दे। कोशिश करके देखूँगा, मैंने कहा। इसलिए नहीं कि मैं चाहता हूं, बल्कि इसलिए कि वैसा किए बिना मैं जीवित नहीं रह सकता। मैं अपनी वाणी इस शून्यमें बहाऊँगा और प्रतिध्वनिकी आशामें बैठा रहूंगा। यदि किसी दिन एक प्रतिध्वनि सुन पड़ी तो मेरी वाणी और ऊँची उठेगी। कहूँगा, आगे बढ़ो, संघर्ष करो। जीवनकी जो भूख हम सबके भीतर अंगड़ाई लेती है, उसके मायने समझो। मानवीयता अनिर्वचनीय है। उसकी ज्योति अपने हृदयमें कभी मत बुझने देना।

द्वितीय भाग

उन पुजारियोंकी आपबीती जो पार्टीके सदस्य न होकर भी पार्टीकी बात मानते थे

आँद्रे जीद

जीवनी : पेरिस नगरमें नवम्बर १८६६ में आँद्रे जीदका जन्म हुआ था। वहीं इनकी शिक्षा-दीक्षा समाप्त हुई। इनके पास जीवन-यापनके पर्याप्त साधन थे और इनको कभी रोटीकी समस्याका सामना नहीं करना पडा। शायद इसी कारण ये अपनी तरहके लेखक बन सके। इन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी हैं, जिनका हमारे युगपर बड़ा प्रभाव पड़ा है। १९४७ में इनको साहित्यके लिए नोबल पुरस्कार भी मिला था। अभी प्रायः एक वर्ष पूर्व इनकी मृत्यु हो गई।

यद्यपि ये कभी कम्युनिस्ट पार्टीके सदस्य नहीं बने, किन्तु एक समय इन्होंने दृढ़ विश्वास किया था कि कम्युनिज्मके मार्गसे ही मानव समाजको मुक्ति मिल सकेगी। सोवियत् लेखक संघका निमन्त्रण पाकर ये जून १९३६ में सोवियत् रूस गए थे। किन्तु बुरी तरह निराश होकर लौटे। उसके उपरान्त ये अपनी व्यक्तिवादी उदार फ़िलासफीकी ओर लौट चले।

जीद महाशय जब जीवित थे, तभी इनकी अनुमति पाकर कुमारी एनिड स्टार्कीने निम्नोक्त निबंधका संकलन इनकी दो पुस्तकोंसे किया था, जो कि इन्होंने रूससे लौटकर लिखी थीं। कुमारी एनिड स्टार्की एक आयरिश महिला हैं, जिनका फ्रैञ्च साहित्यसे विशेष परिचय है।

होमरके[1] एक आख्यानमें देवी देमेतर अपनी खोई हुई पुत्रीको खोजती हुइ राजा सिल्युसके दरबारमें पहुंची। वह एक धायका वेश धारण किए थी, इसलिए किसीने उसको नहीं पहिचाना। उसको एक नवजात शिशु देमोफूनकी देखरेखके लिए रख लिया गया। रातके समय जब सब सो जाते थे, तो द्वार बन्द करके देमेतर देमोफूनको उसके नरम, सुखद पालनेमेंसे उठाकर नंगे बदन ही धधकते कोयलोंपर लिटा देती थी। ऊपरसे उसका यह कार्य अत्यन्त नृशंस था। किन्तु अन्तरमें देमोफूनके लिए गहन प्यारकी प्रेरणा पाकर ही, उसे देवता बना डालनेके उद्देश्यसे, वह ऐसा काम करती थी। कोयलोंपर लेटे शिशुको वह उसके ऊपर झुककर दुलारती रहती थी, मानो अनागत मानव जातिका वह प्रतीक हो। देमोफून उस अग्निपरीक्षामें पूरा उतरा और आशासे अधिक ओजस्वी बन गया। किन्तु देमेतर अपना काम पूरा नहीं कर पाई। एक दिन शिशुकी उद्विग्न मां, मेतानीरा, रातको उसके कमरेमें घुस आई और देवीको एक ओर धकेलकर वे कोयले उसने बिखेर दिए। उन कोयलोंके साथ ही वे सारे अतिमानवीय गुण भी बिखरकर लुप्त हो गए। शिशुको बचानेके लिए मांने देवताका बलिदान कर डाला था।

कुछ वर्ष पूर्व मैंने अपने लेखोंमें सोवियत् यूनियनके[2] लिए अपनी श्रद्धा एवं भक्तिका निवेदन किया था। मेरा खयाल था कि वहां एक ऐसा अपूर्व सामाजिक प्रयोग किया जा रहा है, जिसके फलस्वरूप मानव-

---

१ प्राचीन ग्रीसके महान काव्यकार। २ रूसका सरकारी नाम।

समाजकी बड़ी उन्नति होगी। आशाके अतिरेकसे उस दिन मेरा मानस नाच उठा था और मुझे विश्वास हो गया था कि समस्त संसारमें वह आशाकी लहर फैलकर रहेगी। मैं अपने आपको सोवियत् प्रयोगके युगमें पाकर सौभाग्यशाली मानता था। समाजके इस नवजन्मका साक्षात्कार करनेके लिए मैं अपना समस्त जीवन बलिदान करनेके लिए कटिबद्ध हो गया था। मेरे हृदयपर, भावी संस्कृतिके नामपर, सोवियत् यूनियनने पूर्ण एवं दृढ़ अधिकार जमा लिया था।

रूसमें पहुँचनेके चार दिन पश्चात् गोर्कीकी[1] अन्त्येष्टिके दिन मैंने मास्कोके लाल चौकमें ललकार कर कहा था कि मानव सभ्यताका भविष्य निश्चित रूपसे सोवियत् यूनियनके भविष्यसे जुड़ा है। मैंने दावा किया था—"बहुत दिन तक सभ्यता-संस्कृति सम्पन्न वर्गकी बपौती रही है, क्योंकि उसके विकासके लिए अवकाश और साधन चाहिए। समाजके कितने ही अन्य वर्गोंको इसलिए कठोर परिश्रम करना पड़ता था, कि कुछ लोग जीवनका उपभोग कर सकें। संस्कृति, साहित्य और कलाका उद्यान एक व्यक्तिगत सम्पत्तिके समान सुरक्षित था और वे चन्द बुद्धि-शाली लोग ही उसमें प्रवेश पा सकते थे, जिनको कि बचपनसे कभी भी दारिद्र्यका मुंह न देखना पड़ा हो। यह सत्य है कि योग्यता सदा धनके साथ नहीं मिलती। फ्रेञ्च साहित्यमें मोलीयर, दिदरो और रूशो इत्यादि साधारण जनताके लोग थे। किन्तु यह भी मानना पड़ेगा कि इन लेखकोंको पढ़नेके लिए अधिकतर सम्पन्न वर्गवाले ही अवकाश पाते हैं। जब रूसमें अक्तूबर क्रान्तिका ज्वार आया और रूसकी जनता जाग उठी,

---

१. रूसके एक महान् लेखक।

तो हम प्रतीची[1] के लोग कहते थे और विश्वास करते थे कि उस ज्वारमें कला एवं साहित्य डूब जाएंगे। हमारे मनमें प्रश्न उठता था—'क्या साहित्य किसी वर्ग विशेषकी बपौती न रह जानेपर खतरा पैदा नहीं करेगा ?' आज इसी प्रश्नका उत्तर देनेके लिए देश-देशके साहित्यिक एकत्र होकर एक गुरुतर उत्तरदायित्वका भार वहन करने निकले हैं। हम कहते हैं कि सचमुच आज संस्कृति खतरेमें है। किन्तु वह खतरा क्रान्तिकी मुक्ति-कामी शक्तियोंसे नहीं, बल्कि इन शक्तियोंको कुचलनेवाले दलोंकी ओर आता है। संस्कृति की सबसे भारी विभीषिका है महायुद्ध जिसकी ओर आज राष्ट्रवादकी शक्तियां, घृणा और स्पर्द्धाका वातावरण खड़ा करके हमें खींचे लिए जा रही हैं। आज अन्तर्जातीय और क्रान्तिकारी शक्तियों-का यह उत्तरदादित्व है कि वे संस्कृतिको इस महान खतरेसे बचाकर और भी उज्ज्वल बनाएं। आज संस्कृतिका भविष्य सोवियत् यूनियनके भविष्यसे सम्बद्ध है और इसीलिए हम संस्कृतिकी रक्षा अवश्य कर पाएंगे"

यह वक्तृता मैंने अपने रूस-भ्रमणके प्रारम्भिक दिनोंमें दी थी, जब कि मुझे विश्वास था कि रूसवालोंके साथ संस्कृति सम्बन्धी प्रश्नोंपर गम्भीर विचार-विनिमय किया जा सकता है। मैं आज भी वह विश्वास लौटाना चाहता हूं। किन्तु मेरा कर्त्तव्य है कि अपनी भूल तुरन्त स्वीकार कर लूँ, क्योंकि मुझपर उन लोगोंका दायित्व है जिन्होंने मेरी बातें सुनकर रूसके बारेमें अपना मत बनाया है। व्यक्तिगत स्वाभिमानको मेरा कंठ नहीं रोंधना चाहिए, क्योंकि कुछ बातें मुझसे और मेरे स्वाभि-मानसे अधिक महत्व रखतीं हैं। सोवियत् यूनियनसे भी बढ़कर महत्व

१ यूरोपके पाश्चात्य देशोंवाले साधारणतया रूसको प्राचीमें मानते हैं।

है, उन बातोंका क्योंकि उनके ऊपर मानवजाति और मानव सभ्यताका भविष्य निर्भर करता है।

जबतक रूसमें मेरा भ्रमण रूसियों द्वारा नियोजित रहा मुझे सब कुछ बहुत ही अच्छा लगा। मैंने मजदूरोंको, उनके कारखानों, विश्राम-गृहों तथा घरोंमें देखा और हर्षसे मेरा हृदय नाच उठा। दो व्यक्तियोंके बीच मित्रता होते सोवियत् यूनियनमें कुछ भी देर नहीं लगती और वह मित्रता गहरी होती है। आँखें चार होते ही दो व्यक्तियोंके बीच सहानुभूति और स्नेहके बन्धन तुरन्त बन जाते हैं। सोवियत् यूनियनमें एक उत्कट भ्रातृभाव उमड़कर वहां जानेवालेको हिला देता है। गर्वसे मेरा सीना फूल गया और प्रेमके अतिरेकसे मेरी आँखें डबडबा आईं। जिन बच्चोंको मैंने कैम्पोंमें देखा, वे हृष्ट-पुष्ट थे। उनकी देखरेखका समुचित प्रबन्ध था और प्रसन्नताके कारण उनकी आँखोंमें आशा और विश्वास की चमक मिलती थी। वैसी ही उज्ज्वल प्रसन्नताका भाव मैंने विश्राम-गृहोंमें मजदूरोंके मुखोंपर देखा। दिनका काम समाप्त करके मजदूर सांझके समय इन क्रीड़ागृहोंमें एकत्रित होते थे। सोवियत् यूनियनके प्रत्येक नगरमें एक क्रीड़ागृह और किंडरगार्टन[1] है। अन्य भ्रमणकारियों की नाई मैंने भी नमूनेके कारखाने, क्लब, क्रीड़ाक्षेत्र इत्यादि देखकर खूब वाह-वाह की। रूसके लिए श्रद्धासे मेरा मानस भर गया। और मैं चाहने लगा कि वैसी श्रद्धा औरोंमें भी जगाऊँ। इसलिए आज मेरा कर्त्तव्य है कि मैं वे बातें बताऊँ जिनके कारण मेरी श्रद्धा मिट गई। श्रद्धा और भक्तिका भाव इतनी आसानीसे मिटाया नहीं जा सकता

१ बच्चोंका नये तरीकेका स्कूल जिसमें खेल कूद ही शिक्षाका माध्यम है।

और कोई गहरी चोट खाकर ही हम स्वप्नलोकसे बाहर निकला करते हैं।

जब सरकारी सवारीको छोड़कर मैं अकेला ही रूसकी जनतासे सीधा सम्पर्क प्राप्त करनेके लिये निकल पड़ा तो मेरी आँखें खुलीं। मैंने काफी मार्क्सवादी साहित्य पढ़ा था, इसलिए रूस मुझे बहुत अजीब नहीं लगा। किन्तु मैंने अनेक भ्रमण-कथाएं भी पढ़ी थीं, जिनमें एक स्वप्नलोकका खाका खींचा गया था। मेरी प्रथम भूल यह थी कि मैं रूसकी तारीफमें लिखी बातोंको सच मान बैठा। रूसके विरुद्ध सची-सची बातें इतनी घृणाके साथ न कही गई होती तो शायद मैं वह भूल न करता। रूसके भक्त तो रूसमें कोई बुराई देख ही नहीं सकते। किन्तु रूसके विषयमें सत्यका उद्‌घाटन भी घृणाके साथ किया जाता है। इस प्रकार सत्य घृणाका सहारा लेता है और मिथ्या प्रेमकी आड़में आगे बढ़ता है। मेरी कुछ ऐसी आदत है कि जिनको मैं प्यार करता हूं उनके साथ कुछ विशेष सख्तीसे पेश आता हूं। मेरी राय है कि प्यारके निवेदनका सर्वोत्तम तरीका तारीफ नहीं हो सकता। इसलिए मैं सोचता हूँ कि सोवियत् यूनियनके विषयमें खरी खरी बातें कह दूं तो सोवियत् यूनियनकी अधिक सेवा कर सकूँगा। व्यक्तिगत तौरसे मुझे सोवियत् यूनियनके विरुद्ध कोई शिकायत नहीं है, क्योंकि मुझे तो वहाँ हर प्रकारका आराम ही मिला। मेरी नुक्ताचीनीसे चिढ़ कर कुछ लोगोंने कहना शुरू कर दिया है कि मैंने व्यक्तिगत तौरपर वहाँ कुछ तकलीफ पाई होगी अथवा निराशा झेली होगी, इसलिए मैं सोवियत् यूनियनसे नाराज हो गया हूं। इन सब बातोंमें कोई सार नहीं, क्योंकि जितने सुख चैनसे मैंने रूसका भ्रमण किया,

उतना कभी मुझे जीवनमें और कहीं नहीं मिला हैं। मुझे सुन्दर मोटर कार, रेलका प्राइवेट डिब्बा, होटलोंमें सबसे अच्छा कमरा और खाना इत्यादि मिले और मेरी हर जगह खूब आवभगत हुई। मुझे आराम पहुंचानेमें कोई कोर-कसर नहीं रक्खी गई। किन्तु यही सब तो मेरी आँखोंमें खटका। मैं समानता देखना चाहता था। और मुझे मिले सम्मानमें विशेष अधिकारोंकी छाप थी। जब मैं रूसी अधिकारियोंके चंगुलसे निकल कर सीधा मजदूरोंके पास पहुंचा तो मैंने देखा कि अधिकतर वे लोग घोर दरिद्रताका जीवन बिता रहे हैं। मुझे प्रत्येक रातको जो बादशाही डिनर[१] दिया जाता था उसपर कितना खर्च होता होगा यह मैं ठीकसे नहीं जानता, क्योंकि मुझे किसी दिन बिल चुकाने नहीं पड़े। मेरे एक मित्र जो रूसमें प्रचलित दरभाव समझते हैं मुझे बतलाते हैं कि डिनरमें बैठनेवालों में से प्रत्येक पर दो तीन सौ रूबल तो अवश्य खर्च होता होगा। और जो मजदूर मैंने वहाँ देखे उनको तो केवल पाँच रूबल रोज मिलते थे। वे केवल काली रोटी और सूखी मछली खा कर गुजर करते थे। हम रूसमें सरकारके अतिथि नहीं थे। हमें तो सोवियत लेखक संघने निमन्त्रित किया था। संघके पास बहुत रुपया पैसा है। आज भी सोचता हूं कि उन्होंने कितना रुपया हम पर बहा दिया। हम छः जने थे। फिर हमारे साथ गाइड तथा मेजबान मिलाकर खासी भीड़ हो जाती थी। सबका खर्च संघको उठाना पड़ रहा था। उनको विश्वास था कि इतने लम्बे चौड़े खर्चेका बदला मैं

---

१. रातका खाना। पाश्चात्यमें यह एक सामाजिक अवसर होता है।

उन्हें अवश्य दूंगा। शायद मेरी खरी बातें सुनकर प्रावदा[1] को इसीलिये अधिक क्रोध आया है कि मुझपर वह सब खर्च एकदम बरबाद हो गया। यह मैं मानता हूं कि उनके लिए मेरा स्वागत करके अपने देशके सर्वोत्तम पदार्थ मुझे देना उचित था। किन्तु उत्तम और साधारणके बीच एक बहुत बड़ा तारतम्य देख कर मैं चौंक उठा। एक ओर तो इतना भोग-विलास और दूसरी ओर इतनी भयानक दरिद्रता मुझसे देखी नहीं गई। रूसने जो कुछ किया है, उसके प्रति मुझमें श्रद्धा ही है। किन्तु मैं रूससे कुछ आशाएं कर बैठा था इसलिए वहाँपर भी अमीरी और गरीबीका वही पुराना नक्शा देखकर मुझे चोट लगी।

मैं कैसे बताऊं कि सोवियत् यूनियनका मेरे जीवनमें क्या महत्व था। मैंने उसको अपनी पितृभूमि ही नहीं माना था, बल्कि वहांसे प्रेरणा पाई थी कि जिस स्वप्नलोककी प्रतीक्षा करनेका मुझमें साहस नहीं था उसके धरापर अवतरणकी बाट जोहने लगूं। सोवियत् यूनियन मेरी समस्त आकांक्षा और अभीप्साका केन्द्र बिन्दु बन चुकी थी। अभी सोवियत् यूनियन निर्माणके शैशव कालमें है, यह हमें अवश्य याद रखना चाहिए। वे भविष्यके द्वारपर खड़े हैं। वहाँ बुराइयाँ और अच्छाइयाँ दोनों ही हैं। उज्ज्वलको देखकर काला देखनेपर मनको ठेस तो लगती है। किन्तु उज्ज्वलको देखकर हम कालेको देख पानेका साहस छोड़ बैठते हैं। शायद इसीलिए मैंने सोवियत् यूनियनको परखनेमें कुछ कठोरतासे काम लिया हो। हमें क्षोभ उन्हींपर आता है जिनसे हम कुछ आशा लगा बैठते हैं। मैंने तो मानवताके भविष्यकी बाज़ी सोवियत् यूनियन पर लगा

1. रूसकी कम्युनिस्ट पार्टीका अखबार।

दी थी। इसलिए निराशाका धक्का सहनेके लिए मैं किंचित्मात्र भी तैयार नहीं था।

मुझे रूसमें शिक्षा और संस्कृतिकी ओर असाधारण प्रगति बहुत अच्छी लगी। किन्तु शोककी बात है कि शिक्षा द्वारा लोगोंको यही समझाया जाता है कि सोवियत् यूनियनमें कोई बुराई नहीं है और रूस संसारका सर्वश्रेष्ठ देश है। संस्कृतिका वहाँ एकमात्र अर्थ है, सोवियत् यूनियनके गुण गाना। उस संस्कृतिमें विवेकका लेशमात्र भी नहीं और निष्पक्ष विवेचनाको स्थान नहीं दिया जाता। मैं यह जानता हूं कि वहाँ आत्म-विवेचनाका ढोल पीटा जाता है। पहले-पहले तो मुझे विश्वास हुआ था कि इमान्दारीके साथ की गई आत्म-विवेचना बहुत बड़ा काम कर सकती है। किन्तु शीघ्र ही मुझे पता लगा कि आत्म-विवेचनाका एक ही अर्थ है—यह देख-रेख करना कि कोई काम पार्टीकी नीतिके अनुगत हो रहा है या नहीं। पार्टी लाइन पर कभी वाद-विवाद नहीं होता। पार्टी लाइनको स्वतः सिद्ध श्रुतिवाक्य मानकर ही और सब बातोंकी विवेचना होती है। इससे बढ़कर भयावह मानसिक स्थिति और नहीं हो सकती और संस्कृतिके लिए तो यह धारणा अत्यन्त घातक है। रूसके नागरिकोंको बाहरके संसारके विषयमें कुछ भी जानकारी रखनेका अवसर नहीं मिलता। सबसे बुरी बात है रूसके नागरिकोंका यह विश्वास कि बाहर जो कुछ भी है, वह गन्दा और गर्हित है। इसके विपरीत बाहरवालोंकी रूसके बारेमें राय की वे बहुत अधिक परवाह करते हैं। वे यह जाननेको उत्सुक रहते हैं कि बाहरके लोग ठीक प्रकारसे रूसके गुण गाते हैं या नहीं। उन्हें डर लगा रहता है कि बाहरके लोगोंमें कहीं

रूसके बारेमें कोई अपयश न फैल जाए। बाहरवालोंसे वे कुछ जानना अथवा सीखना नहीं चाहते। बस बाहरवालोंसे अपनी तारीफ सुनना ही उनको अच्छा लगता है।

मैं एक नमूने[1] का सामूहिक खेत देखने गया। वह रूसके बहुत सुन्दर और सम्पन्न सामूहिक खेतोंमेंसे एक है। मैंने कई घरोंके भीतर जाकर देखा। सब एकसे बने थे और सबके भीतर एकसी चीज-बस्त थी। कहीं भी मैंने व्यक्ति वैशिष्यका चिन्ह नहीं देखा। जैसे रूसमें सारे आदमी एक ही ठप्पेमें बनकर निकले हों। मेरा मन बैठने लगा। सब मकानोंमें एक ही प्रकारका भोंडा फर्नीचर था, और वही स्टालिनकी चिरपुरातन, चिरनूतन तसवीर। बस और कुछ भी नहीं था। सजावट अथवा व्यक्तिगत रुचिका नाम निशान भी नहीं देखा। एक घरमें रहनेवाला दूसरे घरमें जाकर यह भुला सकता था कि उसने घर बदला है। हाँ, समस्त आमोद-प्रमोद सब लोग सामूहिक रूपसे उपभोग करते हैं और वे घर तो केवल रैनबसेरेके लिए बने हैं। उनके सारे जीवनका केन्द्रबिन्दु उनके घर नहीं, बल्कि क्लब हैं। मैं यह मानता हूँ कि लोगोंके व्यक्तित्वका बलिदान करके उनके लिए सामूहिक सुखका प्रबन्ध किया जा सकता है। किन्तु इस पामालीको उन्नति क्योंकर मान लूं? व्यक्तित्व और विशेषत्वका उदय ही उन्नतिका, सभ्यता-संस्कृतिका सच्चा प्रतीक है। रूसमें धारा ठीक उल्टी बह रही है। फिर भला मैं रूसपर अपनी श्रद्धा कैसे बनाए रक्खूं? रूसमें आज यह सर्वस्वीकृत मान्यता है कि किसी भी प्रश्नका सही उत्तर केवल एक ही हो सकता है और प्रतिदिन 'प्रावदा'का प्रातः-

---

1. बाहरवालोंको दिखानेके लिये रूसमें कुछ माडल बने रहते हैं।

कालीन संस्करण लोगोंको बता देता है कि उन्हें क्या मानना चाहिए, क्या विश्वास और क्या विचार उचित है। मैं जब रूसमें था तो यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि वहाँके समाचार पत्रोंमें स्पेनके गृह-युद्धका बिल्कुल जिक्र ही नहीं है। बाहर हमारे देशोंमें तो उस गृहयुद्धको लेकर सर्वत्र एक गरमागरम विवाद चल रहा था। मैंने अपने अनुवादकसे अपने मनकी बात कही। पहले तो वह कुछ घबराया। फिर मुझे मेरे सुझावके लिए धन्यवाद देकर बोला कि वह मेरा प्रश्न अधिकारियों तक पहुँचा देगा। उस सांझको डिनरके समय काफी कुछ वक्तृताएं इत्यादि हुईं। सबके नामपर बधाईके प्याले पीए गए। तब मेरे मित्र जेफलाने उठकर प्रस्ताव किया कि स्पेनमें कम्युनिस्टोंकी विजय कामना करते हुए भी एक प्याला पीया जाए। रूसके साथी कुछ घबरासे गए और शरमा-कर उन्होंने प्रस्ताव किया कि प्याला स्टालिनके नामपर पीया जाए तो अच्छा रहेगा। जब मेरी बारी आई तो मैंने जर्मनीके राजनैतिक बन्दियोंके लिए प्याला पोनेका प्रस्ताव किया। इस बार सबने ताली बजाई और हर्षके साथ वह प्याला पिया। किन्तु साथ ही स्टालिनके नामपर एक और प्यालेका प्रस्ताव भी रक्खा गया। मेरी समझमें बात आने लगी। पार्टीने जर्मनीके राजनैतिक बन्दियोंके विषयमें अपनी नीति स्पष्ट कर दी थी। किन्तु अभी तक प्रावदामें स्पेनिश गृहयुद्धके विषयमें खुलासा कुछ भी नहीं कहा गया था और वहाँपर प्रस्तुत व्यक्तियोंमेंसे कोई भी नेतृत्वका खतरा उठानेके लिए तैयार नहीं था। कोई कुछ कह देता और प्रावदाका मत कुछ और निकालता, तो बेचारेको लेनेके देने पड़ जाते। कई दिन पीछे जब मैं सेबास्टोपोल[1] पहुँचा तो प्रावदाने स्पेनके साथ गाढ सहानुभूति दिखलाई

---

[1] कृष्णसागर पर स्थित रूसकी प्रसिद्ध बन्दरगाह।

और वह संकेत पाते ही सारे देशमें सहानुभूतिकी लहर दौड़ गई। रूसमें लोगोंको प्रावदाकी प्रतिध्वनि करनेकी आदतसी पड़ गई है। उसे मिथ्या-चार कहना ग़लत होगा। किन्तु रूसमें यह बात ऐसी सत्य है कि एक आदमीसे बात करनेके बाद आपने जैसे सारे रूसियोंसे बातें करलीं।

पूंजीवादके पतनसे रूसके मजदूरोंको स्वाधीनता नहीं मिल सकी है—यह बात बाहरके मजदूरोंको भली भाँति समझ लेनी चाहिए। यह मानता हूँ कि रूसमें मजदूरोंका शोषण करनेवाले अब ज्वाइन्ट स्टाक कम्पनियोंके हिस्सेदार नहीं। किन्तु रूसके मजदूरोंका शोषण अवश्य हो रहा है और वह भी एक ऐसे सूक्ष्म, जटिल और कुशल तरीकेसे कि मज-दूर बेचारा यह भी नहीं जान पाता कि दोष किसे दे। रूसके अधिकांश मजदूर घोर गरीबीका जीवन बिताते हैं। उनको नाममात्र की मजदूरी मिलती है, जिससे कि उनका पेट काटकर वहाँके चाटुकार, मोटे कर्म-चारियोंके विलासके साधन जुटाए जा सकें। वहाँके शक्तिशाली लोग अपनेसे नीचेवालोंके प्रति जो उपेक्षाका भाव दिखाते हैं वह मुझसे नहीं सहा गया। और नीचेवाले लोग जिस प्रकार घिघियाते गिड़गिड़ाते हैं, वह भी कोई सहृदय आदमी नहीं सह सकेगा। यदि हम यह बात मान लें कि वहाँ अब कोई वर्ग-विभेद नहीं रह गया है, तो उन करोड़ों भुख-मरोंको क्या कहेंगे जो रूसमें सर्वत्र फैले पड़े हैं। रूसमें एक भी भुखमरा देखनेका विचार वहाँ जानेके पूर्व मेरे मनमें नहीं आया था। स्वप्नमें भी नहीं सोचा था कि वहाँ इतने दीन-हीन लोग मिलेंगे। और वहाँ गरीबके प्रति दया, सहानुभूति और उदारता दिखलाना अपराध है। रूसमें गरीबसे सब नफरत करते हैं। वहाँ कुछ लोगोंने अपनी ऐश-

इशरतके लिए अनेकों लोगोंको नंगा भूखा बनाकर छोड़ दिया है। मैं वेतनकी असमानताको बुरा नहीं मानता। ऐसी असमानता तो आवश्यक और किसी हद तक अनिवार्य भी है। किन्तु बड़े-छोटेके सामाजिक भेदभावको मिटानेका कोई रास्ता हमें खोजना ही चाहिए। रूसमें उस रास्तेकी खोज कोई नहीं करता। वहाँ तो शासकोंकी एक श्रेणी बन गई है, जो खूब उपभोग करनेके आदी हो चले हैं और जो वहाँकी असमानताको मिटाना नहीं चाहते। मैं ऐसे लोगोंको कभी भी पसन्द नहीं कर सकता। रूसमें पूंजीवादी व्यवस्थाके सारे लक्षण विद्यमान हैं। क्रान्तिसे वहाँकी पंजीवादी मनोवृत्तियां मरी नहीं, कुछ दब चाहे गई हैं। मनुष्यको बाहरसे कानून इत्यादि बनाकर कभी भी नहीं सुधारा जा सकता। उसके लिए हृदय-परिवर्तन की आवश्यकता है। किन्तु रूसमें तो सुधारकी प्रवृत्ति भी मैंने नहीं देखी। वहाँ तो समस्त पूंजीवादी मनोवृत्तियोंका पोषण होता है, जिसके फलस्वरूप पुराना वर्गमय समाज वहाँ फिर बनता जा रहा है। वहाँ एक ऐसे वर्गका उदय हो रहा है जिसको भोगके सिवाय कुछ नहीं करना पड़ता। और इस वर्गमें स्थान पानेके लिए योग्यता अथवा बुद्धिकी भी आवश्यकता नहीं होती। केवल चापलूसी और खैरख्वाही करनेवाले ही उसमें शामिल हो सकते हैं। कुछ आगे चलकर यही वर्ग धनिक वर्ग बन जायगा। शायद मुझे झूठ-मूठ भय लग रहा है। मेरी हार्दिक कामना है कि मेरा भय झूठा निकले।

सोट्ची[1] में मैंने मजदूरोंके लिए बनाए गए बहुत सारे हस्पताल और विश्राम-गृह देखे। ये स्थान सुन्दर हैं। यहां सुन्दर उद्यान और स्नान-

---

१ कृष्ण सागर पर बना एक विहार स्थान।

क्षेत्र बने हैं। यह तारीफकी बात है कि ये विलासके साधन मजदूरोंके लिए जुटाए जाएं। किन्तु जिनको ये विलास प्राप्य हैं वे तो उसी वर्गके लोग हैं जो सोवियत् समाजमें शासक बने बैठे हैं। यहां पर उन्हीं लोगोंको आनेकी इजाजत है जो कि पार्टीके सामने सिर झुकाते रहते हैं। और इन विश्राम-गृहोंको बनानेवाले मजदूरोंके रहनेके लिए बने हुए घरोंदे, जो पासमें ही दीख पड़ते हैं, मनुष्यके रहने योग्य स्थान नहीं कहे जा सकते।

सिनोप नगरके जिस होटलमें मैं ठहरा था वह तो और भी सुन्दर और समृद्ध है। उसकी तुलना हमारे देशोंके बड़ेसे बड़े होटलोंसे की जा सकती है। प्रत्येक कमरेमें स्नानागार है और अलग बरामदा भी। कमरोंमें साज-सामान भी अनुपम है और खाने-पीनेका प्रबन्ध बहुत अच्छा है। होटलके पास एक फार्म है जिसकी उपजसे होटलका काम चलता है। फार्म पर सुन्दर घोड़े, स्वस्थ गायें और सब प्रकारके सूअर तथा मुर्गे इत्यादि मिलते हैं। किन्तु फार्मके उस पार जाते ही आप लाइन पर लाइन छोटे-छोटे घर देखेंगे, जिनमें अनेकों साधारण लोग रहते हैं। उनको घर कहना अन्याय होगा। वे तो छः फीट वर्गाकार काल-कोठरियां हैं जिनमें एक साथ चार-चार व्यक्ति रहते हैं। और उनका किराया है दो रूबल प्रति व्यक्ति, प्रति मास !

कम्युनिज्मके सिद्धान्तके अनुरूप रूसमें मजदूरोंकी तानाशाहीका उदय तो नहीं हो सका है। किन्तु नौकरशाहीकी तानाशाही अवश्य वहां मिलती है। यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा भ्रान्ति ही फैलेगी। सोवियत् रूसमें यह होनेकी किसीको आशा नहीं थी।

वहां मजदूरोंको इतनी भी स्वाधीनता नहीं है कि अपने हितोंकी रक्षा करनेके लिए अपने प्रतिनिधि चुन कर सरकारमें भेज दें। वहां वोट देनेका अधिकार एक मिथ्या पाखण्ड मात्र है। मजदूर लोग उन्हींको चुन सकते हैं, जिनको कि पार्टीने पहले ही चुन लिया हो। मजदूरोंको धोखा दिया जाता है, ठगा जाता है और उनके हाथ-पांव बांध कर उनको बेकार बना डाला गया है। यह नाटक स्टालिनने विशेष कौशलसे खेला है। सारे संसारके कम्युनिस्ट स्टालिनके गुण गाते रहते हैं और मानते हैं कि रूसमें मजदूरका राज आ गया है। यही नहीं, जो रूसके गुण गानेमें शामिल नहीं होता, उसको वे गद्दार और जनशत्रु इत्यादि अनेक गालियां देते हैं। किन्तु रूसमें एक नयी धोखाधड़ीका बोलबाला है। यदि रूसमें कोई उन्नति करना चाहता है, तो उसे पुलिसका दलाल बनना पड़ता है। पुलिस उससे भेदियेका काम कराती है और उसकी रक्षा करती है। एक बार जो उस मार्ग पर चल पड़ता है उसके लिए रुकना कठिन हो जाता है और फिर कोई मित्रता अथवा दयामायाका बन्धन उसके लिए नहीं रह जाता। वह एकके बाद एक पाप करता चला जाता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज रूसमें सब एक दूसरे पर सन्देह करते हैं। किसीके मुखसे निकली हुई साधारण बात उसके विनाशका कारण बन सकती है। इसलिए सबको मुंह बन्द रखना पड़ता है। बच्चोंको भी खुल कर बातचीत करनेका साहस नहीं होता।

मुझे एक नमूनेका शहर बोलचेवो दिखानेके लिए ले जाया गया। वहांके समस्त निवासी वे अभियुक्त लोग हैं जिनको चोरी और हत्या इत्यादिके अपराधमें पकड़ा जाता है। यह शहर एक छोटी सी बस्तीके

रूपमें शुरू हुआ था। रूसके शासकोंका विश्वास था कि अपराधी लोग किसी मानसिक रोग अथवा विकारके वशीभूत होकर ही अपराध कर बैठते हैं; यदि उनके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया जाए और उन्हें साधारण जीवन यापनकी सुविधाएँ दी जाएँ, तो वे अवश्य ही कामके नागरिक बन सकते हैं। वह बस्ती बढ़ते-बढ़ते एक विशाल नगर बन गई है, जिसमें कारखाने, पुस्तकालय और क्लब खुल गए हैं। मैंने उस नगरको देखकर उसे सोवियत् यूनियनका एक अत्युत्तम प्रयोग समझा और सराहा। मुझे पीछे चलकर पता लगा कि उस नगरमें केवल वही अपराधी बस सकते हैं जो पुलिसके दलाल बनकर अपने साथी कैदियोंकी सजाएँ बढ़वानेका काम करते हों। उन्हें गन्दे कैदखानोंसे लाकर यहां बसाया जाता है। मैं सोच नहीं सकता कि इससे बढ़कर और नैतिक पतन क्या हो सकता है।

रूसका मजदूर आज अपने कारखानेसे और रूसका किसान सामूहिक खेतसे जकड़ डाला गया है। यदि किसी मजदूरको यह भ्रम हो जाए कि उसको रूसमें अन्यत्र कहीं अच्छा काम अथवा अधिक वेतन मिल सकता है, और वह अपना स्थान बदलना चाहे तो उसको नौकरीसे हाथ धोना पड़ता है। किसी और कारखानेमें उसको काम मिलनेकी गुञ्जाइश नहीं। यदि मजदूरकी नौकरी छूट जाए तो उसे रहनेका मकान भी छोड़ना पड़ता है क्योंकि मकान कामके साथ मिलता है और यद्यपि उसमें रहनेके लिए मजदूरका बराबर किराया देना पड़ता है, तो भी वह उसपर किसी प्रकारका अधिकार नहीं जता सकता। इसके सिवाय नौकरी छोड़नेपर उसे उस रुपएसे भी हाथ धोना पड़ता है, जो कि उसके

यदि पार्टीका सदस्य ऐसी धृष्टता कर बैठे तो तुरन्त उसे पार्टीसे निकाल दिया जाता है और साइबेरियामें ही उसका अन्त होनेकी अधिक सम्भावना है। इस प्रकार रूसमें रीढवाले व्यक्तियोंका अकाल पड़ता जा रहा है। जो भी तनिक साहसी, स्वाधीन एवं रीढवाले व्यक्ति होते हैं वे एक एक करके गुम होते रहते हैं। मुझे उन सहस्रों लोगोंकी आवाज अपने चारों ओर सुन पड़ रही है, जिनको नतमस्तक न होनेके कारण साइबेरिया इत्यादिमें सड़ना पड़ रहा है। उनकी आवाजें सुनते-सुनते मैं लम्बी रातोंमें चौंक पड़ता हूँ। उनकी जबान बन्द है, इसलिए उनकी बात कहनेको मेरा जी करता है। यदि मेरी आवाज उनतक पहुँच पाई और उन्होंने मुझे धन्यवाद भर कह दिया तो मैं अपना जीवन सार्थक मानूंगा। उनके बन्धुत्वकी तुलनामें प्रावदामें गाई हुइ मेरी गुणगाथाका मेरे निकट कानी कौड़ी भी मूल्य नहीं। उनका पक्ष लेनेको आज कोई तैयार नहीं है। जिनपर आज न्याय और स्वतन्त्रताकी रक्षाका दायित्व है, वे चुप हैं और जनताका उनसे जैसे कोई सम्बन्ध ही नहीं। मैं जब अपनी आवाज उठाता हूं तो मार्क्सकी दुहाई देकर मुझसे बार-बार एकही बात कही जाती है, कि इतने लोगोंका निर्यातन, मजदूरोंकी भुखमरो, मताधिकारका लोप, इत्यादि तो चन्द तात्कालिक समस्याएं हैं। मुझसे कहा जाता है कि १६१७ की जनक्रान्तिको बनाए रखनेके लिए यह मूल्य चुकाना अनिवार्य है। किन्तु इतना मूल्य चुकानेपर उसके बदलेमें कोई उपलब्धि तो मैं किसी ओर नहीं देख पा रहा। अब समय आ गया है कि इस बीभत्स सत्यकी ओर हमारी आँखें खुल जाएं। हम रूसमें व्यक्तिगत और विचार की स्वाधीनताका लोप भी स्वीकार कर लेते, यदि हमको यह दिखा दिया

जाता कि वहाँपर लोगोंके जीवन स्तरमें कुछ प्रगति हुई है। किन्तु स्वाधीनता तो गई-सो-गई। रूसमें आज पूंजीवादी समाजके घोर कुत्सित गुणोंका उदय होता जा रहा। रूसके शासकोंकी मनोवृत्ति अत्यन्त तुच्छ, संकुचित और प्रतिगामी है। और जिसको वे क्रान्ति-विरोध कहते हैं, वह तो क्रान्तिकी वही धारा है जिसने ज़ारशाहीका महल ढाया था। ज़ार-शाहीको उखाड़नेवालोंके मानसमें जो भ्रातृभाव और न्यायवृत्ति छल-छलाते थे, वे अब लुप्त हो चुके। आज वह पुराना उत्साह नही रहा। आज तो क्रान्तिके खण्डहर मात्र बचे हैं, जिनपर बैठकर आंसू बहानेको जी चाहता है। आज क्रान्तिके नामपर समानता और न्यायका गला घोंटा जाता है। और जो लोग इस दुराचारके विरुद्ध आवाज उठाते हैं उनकी या तो सुनवाई नहीं होती अथवा उनका सफाया किया जाता है। आज रूसकी क्रान्तिके बारेमें वाद-विवाद करना निरर्थक है। आज रूसमें जीहुजूरीका बोलबाला है। सरकार जो कुछ करे उसकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा करना ही आज प्रत्येक नागरिकका कर्त्तव्य बन गया है। सरकार की तनिकसी समालोचना अथवा तनिकसा विरोध करना मौतके मुँहमें जाना है और दमनका हथौड़ा तुरन्त आ पड़ता है। रूसमें आज जो जितना ही ऊँचा स्थान प्राप्त किए बैठा है, वह उतना ही निकम्मा और चापलूस है। वहाँ स्वाधीन होनेका दावा करते ही व्यक्तिको पीस डाला जाता है। थोड़े दिनमें रूसके "क्रान्तिकारियों"में केवल मुनाफाखोर, जल्लाद और अत्याचारके बेबस शिकार ही बच रहेंगे। आदमी कहलाने लायक शायद ही कोई जीवित रह सके। अपने आपको स्वाधीन कहने-वाला मजदूर तो आज पिसपिसकर मिट चुका है। मेरा विश्वास है कि

संसारके किसी भी देशमें, यहाँ तककी हिटलरकी जर्मनीमें भी, आदमीके मन और बुद्धिको इस प्रकार दास नहीं बनाया गया है, कहीं भी साधारण व्यक्ति इतना दलित, वंचित और मोहताज नहीं, जितना की सोवियत् रूसमें। इस प्रकार विरोधी लोगोंके लिए दमन करना खतरेसे खाली नहीं। दमनके शिकार हमेशा आतंकवादी होनेपर तुल जाते हैं। यदि किसी राज्यमें सारे नागरिक एक ही मतके हो जाएं तो शायद सरकारका काम आसान हो जाए। किन्तु वहाँ सभ्यता संस्कृतिका दिवाला भी अवश्यम्भावी है। सच्ची बुद्धिमानी इसीमें है कि हम अपने विपक्षियोंकी बातें सुनें और उनको क्रियान्वित होनेका अवसर दें, ताकि वे जन-कल्याणके मार्गपर चलनेकी प्रेरणा पाएं और जन-शत्रुतापर कटिबद्ध न हों।

सब आदमी एक जैसे नहीं होते, यह हमको मान लेना चाहिए। इस सत्यको भुलाकर, मनुष्योंके साथ जोर जबर करना और सब व्यक्तियोंको बाहरसे काट-छाँटकर एकसे बनानेका प्रयत्न करना, घृणास्पद और भयावह बात है। कलाकारोंके विषयमें तो यह बात और भी अधिक लागू होती है। किसी लेखकका सच्चा महत्व है उसकी क्रान्तिकारी चेतना, उसकी विरोध करनेकी शक्ति। महान लेखक सदा विद्रोही होता है और अपने समाज तथा कालकी मान्यताओंके विरुद्ध आवाज उठाता है। इसलिए यह सोचना पड़ता है कि सोवियत् यूनियनमें लेखक किस प्रकार जीवित रह सकता है, जब कि सरकारने उसकी विद्रोही भावनाको पूर्णतः कुचल डाला है। उसके लिए अब एक ही रास्ता रह गया है—स्थापित समाज-व्यवस्थाका गुण गाता रहे। यही बात सोच-सोचकर मुझे सोवियत् यूनियनके बारेमें घोर चिन्ता होने लगती है।

रूसमें जानेसे पूर्व भी मेरे मनमें ये प्रश्न उठे थे, किन्तु रूसमें तो मुझे उनका समाधान मिला नहीं। सूक्ष्मदर्शी, मौलिक कला वहाँ कैसे पनप सकती है? रूसके एक चित्रकारने मुझसे कहा था कि अब सूक्ष्मता और मौलिकताका देशके लिए कोई महत्व नहीं रह गया, जरूरत भी नहीं रही। वह कहने लगा कि यदि नाटक देखनेके बाद मजदूरको उसके दो चार गाने बाहर जाकर गाने की प्रेरणा न मिले तो नाटक किस कामका। इसलिए जो कुछ मजदूर आसानीसे समझ सके, उसीकी जरूरत है। मैंने विरोध किया। मैं समझाना चाहता था कि कलाकी महान कृतियाँ पहले-पहले कुछ गिने चुने लोगोंकी ही समझमें आती हैं और पीछे चल-कर ही जनमत उनकी ओर झुकता है। उस चित्रकारने यह माना कि रूसमें यदि एकबार बीथोविन भी असफल रहे तो दूसरी बार उसे कोई अवसर नहीं मिलेगा। बोला—"कलाकारको पार्टीकी नीतिको सार्थक करना होगा। अन्यथा उसके महानसे-महान प्रयास भी थोथे ठहराए जाएंगे। हम अब एक महान जाति बन चुके हैं। हमारे राष्ट्रीय गौरवके अनुरूप ही कलाकारोंको भी काम करना चाहिए।" मैंने कहा कि इसका मतलब तो जीहुजूरी हुआ, जिसके लिए कोई सच्चा कलाकार कभी तैयार नहीं हो सकता। इसलिए सच्चे कलाकार चुप रहेंगे, क्योंकि दूसरोंके इशारोंपर काम करना उनके बसका नहीं होता। इस प्रकार संस्कृतिका जनाजा निकल जाएगा। वह मेरी बात ही नहीं समझ सका। वह कहने लगा कि मैं बूर्जुआ की तरह बातें करता हूं। उसका विश्वास था कि जिस मार्क्सवादने अन्यान्य क्षेत्रोंमें इतनी सफलता प्राप्त की है, वह भला संस्कृतिके क्षेत्रमें भी महान चमत्कार दिखाएगा। उसके विचारमें

अभी तक रूसमें महान कलाका उदय होनेमें इसलिए देर लग रही थी कि कलाकार अपने पुराने तौर-तरीके छोड़ना नहीं चाहते थे। बोलते-बोलते उसका स्वर ऊँचा हो गया और वह एक भाषण देने लगा। जैसे कोई रटा हुआ पाठ पढ़ रहा हो। मेरा धैर्य नष्ट हो गया और मैं उसको कोई उत्तर दिए बिना ही उठकर चला आया। कुछ समय बाद वह मेरे कमरेमें आकर बोला कि वह मेरी बात मानता है, किन्तु नीचे होटलके लाउञ्जमें तो उसे मेरा विरोध ही करना पड़ा, क्योंकि कोई सुन ले तो आफत आ जाए। उसे शीघ्र ही अपने चित्रोंकी एक प्रदर्शनी करनी थी, इसलिए पार्टीकी कृपा की और भी अधिक आवश्यकता थी।

जब मैं रूसमें पहुंचा तो कला और साहित्यके क्षेत्रमें वाद-विवाद चल ही रहा था। मैंने भी उसे समझना चाहा। किन्तु मैंने देखा कि किसी सिद्धान्तको लेकर झगड़ा नहीं था। जो भी कलाकृति पार्टीको पसन्द नहीं आती थी, उसीको थोथा कहकर अस्वीकार कर दिया जाता था। मुझे यह सब देखकर रोना आ गया। यह सब राजनीतिमें चाहे उपादेय हो, किन्तु संस्कृतिके लिए तो घातक है। जहाँपर आलोचना मुक्त और स्वाधीन नहीं, वहां संस्कृतिका जनाजा एक दिन अवश्य निकल कर रहेगा। रूसमें सौन्दर्य उपासनाको बूर्जुआ प्रवृत्ति कहा जाता है और जो कुछ पार्टीको पसन्द नहीं आता उसका कोई मूल्य नहीं रह जाता। एक कलाकार कितना ही योग्य और महान हो, किन्तु यदि वह पार्टीकी बात मानकर काम नहीं करता तो कोई उसका नाम नहीं लेगा। हाँ, यदि वह पार्टीका अनुयायी है तो मालामाल होनेमें देर नहीं लगती। बात समझमें आती है। एक सरकार यदि किसी अच्छे कलाकारसे अपना

गुणगान करा सकती है, तो उसका बहुत काम निकलता है। इसलिए ऐसे कलाकारको पाल-पोसकर रखना सरकारका कर्त्तव्य हो जाता है। किन्तु ऐसा कलाकार जीते जी मर जाता है, यह भी हम नहीं भुला सकते।

सोवियत् रूसमें लेखकोंको सबसे ज्यादा महत्व दिया जाता है। मेरी जो आवभगत और सम्मान वहाँ हुआ वह देखकर मैं डर गया कि कहीं अपनी मर्यादा न खो बैठूँ। मैंने आँखें खोलकर देखा। यह तो देख पाया कि लेखकको जो सुयोग और साधन रूसमें उपलब्ध हैं, वे और किसी देशमें नहीं। किन्तु एक शर्त है। लेखकको पार्टीकी जीहुजूरीमें ही लिखना पड़ता है। रूसमें किसीको खुलकर आलोचना करनेकी भी छूट नहीं, क्योंकि वहां आलोचनाको भी राजनैतिक विरोध मानकर घोर दण्ड देनेका विधान है। इसलिए लेखकको पार्टीके सामने नतमस्तक होकर निबाहना पड़ता है। रूसकी विज्ञान-परिषदके एक प्रख्यात सदस्यको जेल जाना पड़ा क्योंकि उन्होंने वैज्ञानिक समस्याओंपर अपने ढङ्गसे सोचना चाहा था। उनके बारेमें बाहरके वैज्ञानिक ऐसे ही पूछताछ करते थे तो कह दिया जाता था कि वे बीमार हैं। एक दूसरे वैज्ञानिक ऐसे ही अप-राधके कारण प्रोफेसरी और प्रयोगशालासे निकाले गए थे। वे यदि खुली चीट्ठी लिखकर माफी नहीं मांगते तो उन्हें साइबेरिया भेजनेकी तैयारी हो चुकी थी। निरंकुश राज्यसत्ता सदा इस प्रकारके बलात्कार करती आई है। यदि आज रूसमें कोई वकील न्यायके पक्षमें आवाज उठाना चाहे तो मारा जाएगा। जिसको पार्टी अथवा सरकार अपराधी ठहरा देती है, उसको बचानेकी कोशिश करना वकीलके लिए मौतके मुँहमें जाना है। स्टालिन अपनी तारीफके सिवाय कुछ नहीं सुनना चाहता। इसलिए

आज उसके चारों ओर ऐसे लोग हैं जिनकी अपनी कोई राय नहीं और जो स्टालिनकी हां-में-हां मिलाना ही जीवनका ध्येय समझते हैं। स्टालिनको उसकी भूल सुझाई जाए तो क्योंकर ? स्टालिनका चित्र हर जगह दीख पड़ता है, लोग उसके नामकी माला जपते हैं। उसके नामको बार-बार लिए बिना कोई भाषण नहीं हो सकता। यह कहना कठिन है कि लोग स्टालिनके प्रति श्रद्धा-भक्तिके कारण ऐसा करते हैं, अथवा भयसे कांप कर। एक घटना याद आती है। टिफलिस जाते हुए हम उस गाँवसे गुजरे जहाँ स्टालिनका जन्म हुआ था। मैंने सोचा कि रूसमें हमारा जो सम्मान हुआ है उसके लिए धन्यवादका एक तार स्टालिनको उसके गाँवसे भेज दूं तो अच्छा रहेगा। शायद ऐसा मौका फिर न मिले। मैं कारसे उतरकर गांवके तारघरपर पहुंचा। तार लिखकर मैंने बाबूको दे दिया। मैंने लिखा था—"आपके गाँवसे गुजरते हुए मुझे आपको धन्यवाद देने की प्रेरणा होती है।" तार बाबूने तार भेजनेसे इन्कार कर दिया। उसने मुझे समझाया कि स्टालिनको 'आप' कहकर पुकारना धृष्टता है। स्टालिनको 'हे महान मजदूर नेता' 'हे जनताके प्रभु' इत्यादि नामोंसे सम्बोधित करनेका रिवाज रूसमें है। मुझे बात बेहूदासी लगी। भला स्टालिनको यह चापलूसी कैसे अच्छी लग सकती है, मैंने कहा। किन्तु बाबूने मेरी एक नहीं सुनी और सिर हिलाता रहा। मुझे निराशा हुई। मुझे वह भेद की दीवार दिखाई देने लगी जो स्टालिन और रूसी जनताके बीच खड़ी हो चुकी है और जो दिन-पर-दिन दृढ़तर होता जाती है। इसी प्रकार मुझसे अपनी वक्तृताओंमें भी हेरफेर करनेका अनुरोध किया गया। मैं सोवियत् यूनियनका 'भविष्य' नहीं कह सकता था। मुझसे

कहा गया कि 'भविष्य' शब्दके साथ 'शानदार' शब्द मुझे हमेशा जोड़ना चाहिए, क्योंकि सोवियत् यूनियनके 'भविष्य' की बात है, कोई मज़ाक नहीं। इसी प्रकार किसी राजाको 'महान' कहने पर उन्होंने आपत्ति की। राजा कैसे 'महान' हो सकता है। 'महान' इत्यादि शब्द तो लेनिन और स्टालिन इत्यादिके लिए ही उपयुक्त हैं। लेनिनग्राडमें मुझे छात्रों और लेखकोंकी एक सभामें बोलनेका निमन्त्रण मिला। मैंने अपनी वक्तृता लिखकर कमिटीको जांचके लिए दे दी। वह पढ़कर मुझे बतलाया गया कि जो कुछ मैं कहना चाहता हूं वह पार्टीकी नीतिके विपरीत है और बहुत भद्दा लगेगा। हारकर मुझे वक्तृता देनेका इरादा ही छोड़ना पड़ा। वक्तृता निम्नलिखित थी :—

"मुझे कई बार कहा गया है कि समकालीन सोवियत् साहित्यके विषयमें मैं अपना मत प्रगट करूँ। मैं बतलाना चाहता हूं कि अभी तक मैं इस विषयमें चुप क्यों रहा हूं। मास्कोके लाल चौकमें गोर्कीकी अन्त्येष्टिके दिन मैंने कुछ शब्द कहे थे। उन्हींको आज और खुलासा तौरसे दोहराना चाहता हूँ। उस दिन मैंने कहा था कि क्रान्तिने रूसके सम्मुख कुछ नए प्रश्न प्रस्तुत किए हैं। सोवियद् यूनियनके लिए उन प्रश्नोंको सामने लाना सौभाग्यकी बात है। उन प्रश्नोंका जो उत्तर सोवियत् यूनियन देगी उसपर सभ्यताका भविष्य निर्भर करता है। इसलिए उन प्रश्नोंको आज यहां फिर दोहराना चाहता हूँ। जनताका बहुमत, चाहे उसमें कितने ही विज्ञ व्यक्ति क्यों न हों, कभी भी कलाकी दुरूह बातोंको नहीं समझ पाता। बहुमतके लिए तो कलाकी गहराइयोंके कोई मायने नहीं। इसलिए साधारण और तुच्छ कोटिकी कला ही जनता

अपनाती रही है। और तुच्छता बूर्जुआ कलामें ही मिलती हों, यह नहीं कहा जा सकता। क्रान्तिवादी कला भी उतनी ही तुच्छ हो सकती है। क्रान्तिके सिद्धान्त, चाहे वे कितने ही भव्य और उच्च क्यों न हो, कभी भी कला को महानता प्रदान नहीं कर सकते। महान कलामें कुछ मौलिकता होनी चाहिए। उस कलामें कुछ नए प्रश्न उठाए जाते हैं और उनका उत्तर देनेका प्रयास किया जाता है। बहुत बार तो महान कलाकार उन प्रश्नोंका उत्तर दे डालते हैं, जिनको कि स्पष्ट रूपसे हमने अभी सोचा भी नहीं है। इस दृष्टिकोणसे देखनेपर कहना पड़ता है कि मार्क्सवादी सिद्धान्तोंसे ओत-प्रोत कलाकृतियां मुझे टिकाऊ नहीं लगतीं। भविष्यमें उन्हें प्रयोग ही कहा जाएगा। तात्कालिक वितण्डावादके ऊपर उठ सकनेवाली कला-कृतियां ही टिकाऊ हो सकती हैं। आज क्रान्ति सफल हुई है, इसके कारण कलाको एक खतरेका सामना करना पड़ रहा है। क्रान्तिसे पूर्व दमनसे जो खतरा कलाको था, उससे यह नया खतरा बहुत बड़ा है। आत्मतृप्ति क्रान्तिवादी कलाके प्राण ले सकती है। कलाको बचाए रखनेके लिए क्रान्तिके लिए यह अतीव आवश्यक है कि कलाकारको पूर्ण स्वाधी-नता दे। स्वाधीनताके बिना कलाका मूल्य नहीं रहता और न रहती है उसमें कोई सार्थकता। आज जनताकी वाह-वाह सुनकर कोई कलाकार अपने आपको सफल मान सकता है। किन्तु जनता तो तुच्छ और साधा-रणको ही सराहनेकी क्षमता रखती है। इसलिए ख्याति और वाह-वाह पाकर कलाकारके पथभ्रष्ट होनेका बहुत बड़ा खतरा है। मुझे ऐसा लगता है कि आज सोवियत् यूनियनमें एक कीट्स, बौदेले अथवा रिम्बौ अज्ञात रहकर नष्ट हो सकता है। उनकी गहराईको जनता नहीं समझ सकती,

इसलिए उनको तो यहाँ कलाकार ही नहीं माना जाएगा। किन्तु मुझे तो कीट्स, बौदेले और रिम्बौ जैसोंमें बहुत श्रद्धा है। आरम्भमें उनकी अवगणना हुई थी, किन्तु आज वे अमर हो गए। इसीलिए कि उनको पहिचाननेवाले चन्द लोग थे, जिन्होंने उनको मरने नहीं दिया। आप शायद कहेंगे कि आपको कीट्स, बौदले और रिम्बौ की कोई जरूरत नहीं। शायद आपका मत है कि जिस गलित-विगलित समाजका चित्रण वे कलाकार करते थे, वही समाज उनका स्रष्टा भी था। यदि आज उनकी नहीं सुनी जाती, तो नए समाजका कसूर नहीं, नए समाजके लिये यह गौरवकी बात है कि वह पुराने समाजके कलाकारोंको नहीं समझ सकता। उन कलाकारोंसे भला नए समाजको क्या सीखना है? जो कलाकार नए समाजको कुछ सिखा सकते हैं, वे नए समाजमें जाने-पहिचाने जाते हैं, नए समाजके गुण गाते हैं; इत्यादि-इत्यादि। किन्तु मेरा व्यक्तिगत विचार है कि जो कला-कृतियाँ केवल हमारा मन बहलाती हैं, उनका कानी-कौड़ी भी मूल्य नहीं। यदि किसी संस्कृतिको आगे बढ़ना है, तो ऐसी कला-कृतियोंकी अवहेलना करनी होगी। जो साहित्य केवल अपने समाजकी प्रतिध्वनि मात्र है, उसके विषयमें अधिक कहना व्यर्थ है। अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना एक नए समाजके लिये एक हद तक उचित हो सकता है। किन्तु वह आदत यदि शीघ्र ही नहीं छोड़ी जाए, तो परिणाम दुखद ही निकलता है।"

जब तक मनुष्य दलित वंचित रहता है, जब तक सामाजिक अन्याय उसको उभरने नहीं देता, तब तक हम विश्वास कर सकते हैं कि मुक्त होने पर वह बहुत कुछ कर दिखाएगा। शायद दलित वंचित

वर्गोंमें कोई अपूर्व, अज्ञात क्षमता हो। जैसे कोई बच्चा बड़ा होकर अपनी तुच्छताका परिचय जब तक नहीं देता, तब तक हम उससे आशाएं लगाए रहते हैं, ठीक उसी प्रकार हम मान बैठे हैं कि दलित वंचित जनता मुक्ति पाकर न जाने क्या कर दिखाएगी। किन्तु जनतामें इतने बड़े विश्वासका मैं तो कोई कारण नहीं देखता। जनता अधिकारी वर्ग से कुछ कम पतित है, यह बात मानी जा सकती है। किन्तु जनता को जनार्दन कहना मुझे नहीं जँचता। आज सोवियत् रूसमें जनताके बीचसे ही एक नए बूर्जुआ वर्गकी सृष्टि हो रही है, जो हमारे बूर्जुआ वर्गसे कहीं अधिक गया-बीता है। ज्योंही उनकी भूख-प्यास मिटी त्योंही वे भूखे-प्यासोंमें नफ़रत करने लगते हैं। उनमें ईर्ष्या और परिग्रहकी भावना जोर पकड़ने लगती है। जो कुछ उनको जीवनमें नहीं मिला था, उसको हथियानेके लिये उनके लोभकी सीमा नहीं रहती। उनको देखकर विश्वास नहीं होता कि वे ही किसी दिन क्रान्तिके जन्मदाता थे। उन्होंने क्रान्तिको दुकान बना डाला है। वे चाहे अब भी कम्युनिस्ट पार्टीके सदस्य हों, किन्तु उनके हृदयमें आज कम्युनिज्मका कोई अंकुर नहीं रह गया। मेरी यह शिकायत नहीं है कि सोवियत यूनियनमें बहुत काम नहीं हुआ। उस देशकी जैसी स्थिति है और जहाँसे क्रान्तिने उसको उठाया था, वह जाननेवाला मान लेगा कि रूसमें बहुत कुछ काम होनेकी कोई सम्भावना नहीं थी। किन्तु मुझे रूसकी थोथी डींग से बहुत नफ़रत होती है। रूस वाले ढोल पीटते रहते हैं कि उन्होंने यह कर लिया, वह कर लिया, कि समस्त संसारको उनका अनुकरण करना चाहिये। यह सब कुछ बकवाद है। रूसमें कोई भी ऐसी बात नहीं है, जिसका अनुकरण हम बाहर वाले कर सकें।

मैं फ्रांस और अन्यान्य देशोंके कम्युनिस्टोंको दोषी मानता हूं। मेरा संकेत उन कम्युनिस्टोंकी ओर नहीं है जो स्वयं धोखेमें रहे हैं। मैं उनको दोषी मानता हूँ, जिनको सत्य अपनी आँखोंसे देखनेका अवसर मिला है और जो सत्यको जानते हैं। उन्होंने अपने राजनीतिक स्वार्थोंकी सिद्धिके लिए संसारके मजदूरोंसे झूठ बोला है, मजदूरोंकी आँखोंमें धूल झोंकी है। आज संसारके मजदूरोंको कम्युनिस्टोंकी धोखेबाजी और फरेबसे खबरदार होना चाहिए। रूसके मजदूर कम्युनिस्टोंकी बातोंमें आकर नरक-यातना भोग रहे हैं। अन्य देशोंके मजदूरोंकी आँखें खुलनी चाहिएँ।

रूसकी दशा अत्यन्त शोचनीय और असन्तोषजनक है। फिर भी यदि मुझे वहाँ सुधार अथवा प्रगतिकी कोई गुञ्जायश दीख पड़ती तो मैं चुप रहता। किन्तु मैं देखता हूँ कि सोवियत् यूनियन अधपातके गर्तमें दिनपर दिन गिरता जा रहा है। क्रान्तिमें इतनी मुसीबतें उठाकर, इतनी खूनखराबी करके जो स्वाधीनताएँ और अधिकार जनताने पाए थे, वे तो एक-एक करके जनता खो रही है और कोई न कोई कारण बताकर जनताके साथ बलात्कार बढ़ता ही जा रहा है। इसके सिवाय मैं देखता हूँ कि कम्युनिस्ट पार्टियाँ अन्य देशोंको भी उसी नरककी ओर खींच ले जाना चाहती हैं। अतएव खुलेआम अपनी आवाज़ उठाकर कम्युनिज्म का विरोध करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

किसी पार्टीके प्रति मेरा मैत्रीभाव मुझे चुप नहीं कर सकता। सत्यको मैं सब पार्टियोंसे ऊपर स्थान देता हूँ। मैं जानता हूँ कि मार्क्सवादमें सत्य जैसी किसी धारणाका समावेश नहीं है। निरपेक्ष सत्यकी सत्ता ही

मार्क्सवादी नहीं मानते। उनके लिए सत्य सदा सापेक्ष है। किन्तु ऐसे गम्भीर काममें सत्यको सापेक्ष मानना गुनाह है, पाप है। इसका मतलब है दूसरोंकी आँखोंमें धूल झोंकना। हमें इमान्दारीसे सत्यको स्वीकार कर लेना चाहिए। हम जो कुछ चाहते थे वह नहीं हुआ, अथवा जो होनेकी हम आशा करते थे वह नहीं हुआ—इस कारण झूठ बोलनेकी कोई जरूरत मैं नहीं समझता। सोवियत् यूनियनने हमारे स्वर्णिम सपनोंसे झूठा खेल खेला है और हमें यह दिखा दिया है कि किस प्रकार एक सच्ची क्रान्ति भी मटियामेट होकर दुःखका कारण बन सकती है। आज रूसमें वही पुराना पूँजीवादी समाज फिरसे स्थापित हो चुका है। यही नहीं, वहाँ एक नवीन निरंकुशता और तानाशाहीका जन्म हुआ है, जो व्यक्तिका शोषण करके ही दम नहीं लेती, बल्कि जो व्यक्तिको पीसकर सब प्रकारसे दासत्वकी बेड़ियोंमें बांध देती है। देमोफूनकी नाईं रूस देवता बननेमें असफल रहा है। देमोफूनको तो जलते कोयलों परसे उठा लिया गया था, किन्तु सोवियत् यूनियनको नरक-यन्त्रणासे बचानेका रास्ता मुझे अभी तक नहीं सूझता।

लूई फिशर

जीवनी : इनका जन्म २९ फरवरी सन् १८९६ में संयुक्तराष्ट्र अमेरिकाके फिलेडलफिया राज्यमें हुआ था। कई साल तक स्कूलमें अध्यापक रहे। फिर १९२१ में इनको 'न्यूयार्क पोस्ट'[1] वालोंने पत्रकार की हैसियतसे बर्लिन भेज दिया। इसके उपरान्त पचीस साल तक ये युरोप एवं एशियामें घूमते रहे। इन्होंने कभी किसी राजनीतिक पार्टीमें नाम नहीं लिखाया। तो भी ये सोवियत् रूसके घोर हिमायती थे। स्पेनके गृहयुद्धमें वहां जाकर इन्होंने प्रजातन्त्रका समर्थन किया था। इन्होंने रूस पर कई पुस्तकें लिखी हैं।

भारतमें इनका नाम सर्वविदित है। हमारे स्वाधीनता संग्रामका पक्षपात करके इन्होंने अमेरिकामें हमारे दृष्टिकोणका प्रचार किया। महात्मा गांधीका इनसे अच्छा परिचय था और गांधीजीका संदेश अमेरिका तक ले जानेवालोंमें इनका प्रमुख स्थान रहा है। अभी हालमें इनकी लिखी महात्मा गांधीकी जीवनी प्रकाशित हुई है।

---

१ एक प्रसिद्ध दैनिक समाचार पत्र।

मैंने बचपनमें उन विद्रोहियोंकी कहानियाँ सुनी थीं, जो साइ-बेरियाकी नमककी खानोंसे निकल भागे थे और जिन्होंने फिरसे जीवनका वरदान पाया था। मेरे माता-पिताका जन्म रूसी नगर कीवके पास एक छोटेसे नगरमें हुआ था। वे मुझे सुनाया करते थे कि किस प्रकार रूसके किसान वोडका[1] से मदमस्त होकर खूनखराबी करते रहते थे। जारके दरबारी राजकुमार पीटर क्रोपाट्किन बादमें प्रसिद्ध अराजकतावादी बने। उनकी आप बीती पढ़ कर मुझमें मानवता और आदर्श-शीलताके स्पन्दन जागा करते। मैंने टाल्सटाय[2], तुर्गनेव[2], और डौस्टोयस्की[2] के उपन्यास तथा गोगोल[2] और गोर्की[2] की कहानियाँ पढ़ीं। मैं रूसमें नहीं गया था, तब भी रूसका एक धुंधला चित्र मेरे मानस पर अंकित हो चुका था। रूस कुछ पिछड़ा-सा लगता था, मानों एक साथ ही वह सभ्य और असभ्य, शिक्षित और अशिक्षित, दोनों ही हो। वहाँ फैले घोर अन्धकारमें संस्कृति, शान-शौकत और वैभवके कुछ सितारे बार-बार चमक उठते थे।

एक प्रकारसे तो मैं अमेरिकाके बाहर समस्त संसारसे अनभिज्ञ था। जर्मनीके साथ प्रथम महायुद्ध मुझे इस अज्ञानसे बाहर खींच लाया, किन्तु युद्ध के तूफानमें मैं यह नहीं देख पाया कि रूसके जारका पतन हो चुका है और वहाँ नवम्बर १९१७ में सोवियत् सरकार बन गई है। रूसमें होनेवाली दो क्रान्तियोंका उस समय मुझ पर कुछ भी असर नहीं

---

१ रूसकी शराब। २ प्रसिद्ध रूसी लेखक।

पड़ा। यदि आँखें खोल कर देख भी लेता तो भी शायद बात मेरी समझमें नहीं आती। ज़ारके पतनके बाद केरेन्सकीकी सरकारको लेनिनने संसारकी सबसे गणतान्त्रिक सरकार माना था। मैं अवश्य ही यह प्रश्न पूछता कि फिर भला क्यों लेनिनने उस सरकारका तख्ता उलट कर बॉल्शेविक तानाशाही रूसमें कायम की?

फौजसे छुट्टी पाकर मैं १९२० में घर लौटा। मुझे यह जाननेकी उत्कट इच्छा थी कि प्रथम महायुद्ध क्यों हुआ और युद्धके कारण जानने के लिए मैंने अनेक देशोंमें अनेकों विद्वानों द्वारा लिखे ग्रन्थ उलटने-पलटने शुरू किए। उनके निष्कर्ष भिन्न-भिन्न थे, किन्तु युद्धके लिए दोष उन्होंने कई देशों पर थोपा था। सर्वप्रथम वे ज़ारके रूस और आष्ट्रिया-हंगरीके साम्राज्यको दोषी मानते थे। जर्मनोंका नाम दूसरे दरजे पर था और सबके बाद फ्रान्स तथा इंगलैण्डका नाम आता था। इन सब बड़े राष्ट्रोंने गुप्त सन्धियाँ करके छोटे देशोंका बटवारा करनेका षड्यन्त्र रचा था। इन सबकी प्रसारात्मक महत्वाकांक्षाओंने एक दूसरेसे टकरा कर युद्धको जन्म दिया था। न्यूयार्कके उदारवादी साप्ताहिक समाचार पत्र कह रहे थे कि वरसाईकी सन्धि उन्हीं पुराने, कुत्सित, साम्राज्यवादी सिद्धान्तों पर टिकी है। प्रेसीडेन्ट विलसन कभी-कभी आदर्शवादकी हाँक लगा लेते थे। और सब देशोंके राजनीतिक नेताओंको तो अपने-अपने देशके लिए भूमि और धन हथियानेमें ही दिलचस्पी थी, उन्हें स्थायी शान्ति स्थापित करनेकी भला क्या फिक्र होती।

धीरे-धीरे युद्ध और शान्ति सम्बन्धी प्रश्नोंके प्रति मेरा एक नया दृष्टिकोण बन चला। उससे बॉलशेविक दृष्टिकोणका काफी मेल खाता

था। पेनसिलवेनिया महाविद्यालयमें एक छात्र था जो रूसी भाषा जानता था। उसने मुझे रूसके विदेश मन्त्री चिचरींनके वे सन्देश पढ़कर सुनाए जो उन्होंने रूसकी ओरसे पूँजीवादी देशोंकी सरकारोंके पास भेजे थे। उन सन्देशोंमें कटुता, उग्रता और व्यँग भरे थे। चिचरीनने रूसके गृहयुद्धमें जारशाहीके पक्षपातियों और प्रतिक्रियावादियोंकी सहायता करनेके लिए पूंजीवादी सरकारोंकी कठोर आलोचना की थी। बॉल-शेविक चारों ओर शत्रुओं से घिरे थे। फिर भी उन्होंने समस्त संसारको चुनौती दी कि जो लोग नए संसारका उदय रोकना चाहते हैं, उनके दाँत खट्टे किए जाएंगे।मुझे ऐसा लगा कि रूस एक दलित राष्ट्र है और वह उन शक्तियोंसे लोहा ले रहा है, जिनमें कि युद्ध करने की क्षमता तो है किन्तु जिनको शान्तिका पथ नहीं सूझता। मुझमें युद्ध और क्रान्तिके जन्म-दाता युरोपको देखनेकी गहन इच्छा जाग उठी। मैं छोटे-मोटे काम करके जो कुछ कमा पाता था, उसीमेंसे धीरे-धीरे बचाकर मैं दिसम्बर १६२१ में घूमने निकल पड़ा। पहले-पहले मैंने एक स्वतन्त्र संवाददाता बननेकी ठानी।

युरोप तो कबाड़खाना बना पड़ा था। युद्धसे लौटे हुए भले चंगे मर्दोंने ब्रिटेनके शहरोंमें गा-गाकर भीख मांगते थे अथवा फेरी लगाकर पेन्सिलें बेचते थे। लन्दनके प्रेक्षागृहोंमें अधिकतर सीटोंपर स्त्रियाँ बैठीं दिखाई देती थीं। उनके आदमी युद्धमें मर चुके थे। फिर से जीवनमें उनको पुरुष पानेकी कोई आशा न थी। जो कभी उनके होते वे तो फ्रांस और बेलजियमकी युद्ध-भूमिमें गड़े थे। गोर्कीने अपील की थी कि रूसके ढाई करोड़ अकाल पीड़ितोंके लिए अनाज भेजा जाए। जन-

वरी १९२२ में पोलैंडसे मैंने लिखा—"एक ऐसा बवण्डर आया है जिससे कोई भी नहीं बच सका है। फिर भी राष्ट्रवादकी वही पुरानी हुँकार मुझे सुनाई दे रही है।" पोलैण्डके सामने अनेकों घरेलू समस्याएं थीं, किन्तु अपनी सेनापर समस्त धन खरच किए जा रहा था, क्योंकि विलना नगरपर अधिकार जमाना पोलिश लोग आवश्यक समझते थे। वीयनामें अंधेरा होते ही एक निर्मम उदासी छा जाती थी। एक अजीब-सी मुर्दनी और जड़ताका वातावरण वहाँ मैंने देखा। गलियोंमें मद्धम रौशनी जलती थी। किन्तु अमीर लोगोंके होटलोंमें तथा नाटकशालाओंमें तेज प्रकाश, जीवनका स्पन्दन, मोटर कारें, नाच, गान, मद्य और सुन्दर वेशभूषा अब भी वैसी ही थी। वीयनाके सट्टेबाजोंके विरुद्ध जनताने एक दंगा हालमें ही किया था, जिसमें बैंकों, होटलों और बड़ी दूकानोंकी खिड़कियोंमें लगे कांच टूटकर गिर पड़े थे।

जर्मनी अपने आकार-प्रकार, धनधान्य और केन्द्रीय स्थितिके कारण युरोपका सबसे महत्वशील देश है। कई बार उसने युरोपको आतंकित और पराजित किया है। कई बार उसने युरोपमें प्राण और बलका संचार किया है। किन्तु उन दिनों जर्मनी पर एक काली रात घिर आई थी। जर्मनीका सिक्का बढ़ते-बढ़ते प्रायः बेकार हो चला था। घरके भीतर राजतन्त्रवादी और प्रजातन्त्रवादी दलोंमें घमासान छिड़ा था। १९२२ में जेनोआ नगरमें एक अन्तर्जातीय कान्फ्रेन्स बैठी थी। विजेता देश न कुछ भूल सके, न क्षमा कर सके और न एकता ही दिखा सके। युद्धके कारण जर्मनीका सर्वथा बहिष्कार किया गया और क्रान्तिके कारण रूससे कोई भी सम्बन्ध नहीं रखना चाहता था। इस प्रकार अछूत बने

ये दोनों देश एक दूसरेके निकट आने लगे और दोनोंने गुप्त रूपमें एक दूसरेको हथियारबन्द होनेमें सहायता पहुँचाई। प्रथम महायुद्धके खूनसे लथपथ और चौंधियाया हुआ युरोप दूसरे युद्धकी ओर अग्रसर हो रहा था और युरोपके नागरिक तथा राजनीतिज्ञ हाथ झाड़कर अपनी विवशताकी दोहाई देते हुए खड़े थे।

मैं सोवियत् रूसके बारेमें पुस्तकें पढ़ता था तथा वाद-विवाद सुनता रहता था। बॉलशेविक लोग जनताकी हिमायत करते थे। वे गरीबोंके लिए धरती, भोजन, शान्ति, काम, घर, शिक्षा, स्वास्थ्य, कला और सुख की माँग करते थे। वे कहते थे कि वे जाति-भेदका नाम मिटा देंगे। शोषण, असमानता, धनका अत्याचार, राजाओंकी प्रभुता और साम्राज्य-वादी प्रसारकी भावना—सभीके विरुद्ध उनका स्वर सुनाई देता था। वे अन्तर्राष्ट्रीय भ्रातृभावके प्रचारक थे। उन्होंने रूसके कराल पाशसे पोलैण्ड, फिनलैण्ड तथा बाल्टिक तटस्थ देशोंको मुक्ति दी थी। उन्होंने चीन और ईरानमें जारशाही द्वारा प्राप्त रूसके विशेष अधिकारों और सुविधाओंका परित्याग किया था। इसलिए संसारके दलित वंचित वर्ग और उन वर्गोंके हिमायती रूसमें एक नए युगके उदयका प्रथम प्रभात देखने लगे थे।

अब समाजवाद छोटे-मोटे वक्ताओंकी वाणीमात्र नहीं था। संसारके षष्ठांश भूभागपर फैला एक महान राष्ट्र, समाजवादका प्रचार करनेके लिए एक स्वरसे बोल उठा था। इतिहासमें प्रथम बार एक सरकारने आदर्श-वादियों, विद्रोहियों और तीर्थंकरोंके पथपर बढ़नेका बीड़ा उठाया था। मानव जातिको रोमांच तो होता ही। किन्तु सत्ताशील, रूढ़िवादी,

युद्धबाज, सम्राज्यवादी, स्थापित स्वार्थोंके ठेकेदार तथा श्वेतांग जातियों-को श्रेष्ठतर माननेवाले वर्ग भी भयसे कांप उठे। उनके भयमें दूसरे वर्गों की आशा छुपी थी।

बॉल्शेविक क्रान्ति की सब ओर धाक थी। वे लोग केवल रूसमें ही आमूल परिवर्तन करके रुकना नहीं चाहते थे। वे समस्त संसारमें युद्ध, दरिद्रता और दुखदर्द को मिटाने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ थे। इसीलिए सभी देशोंके साधारण लोगों, मजदूरों तथा बुद्धिजीवियोंको ऐसा लग रहा था, मानो रूसकी क्रान्ति उनके अपने जीवनमें घटनेवाली एक महत्वशील घटना है। रूसके साथ इस सहानुभूतिका कारण उन लोगोंकी रूसके विषयमें जानकारी नहीं थी। वे तो अपने देशोंमें जो असन्तोषके कारण थे, उन्हींसे चिढ़कर रूसके पक्षपाती बने थे। अधिक लोगोंको यह बिल्कुल नहीं मालूम था कि रूसमें क्या हुआ था और क्या हो रहा था। किन्तु रूसकी बात चलते ही वातावरणमें गरमी आ जाती थी। रूसके पक्षपाती रूसके रास्तमें बाधाओंका उल्लेख करते और समझाते कि रूस आगे चलकर क्या-क्या रंग दिखाएगा। रूसके विरोधी पूछते कि रूसमें हुआ क्या है जो रूसकी पूजा की जाए। इस प्रकार इस वाद-विवादका अन्त नहीं हो पाता था और मुझमें ठीक-ठीक बात जानने की एक तीव्र उत्कण्ठा जाग उठी। मैं सितम्बर १९२२ में बर्लिनसे मास्को पहुँचा। उस समय मैं रूसी भाषाका एक शब्द भी नहीं जानता था। सोवियत् प्रणालीसे भी मेरा किंचित्मात्र परिचय नहीं था। हां उन लोगोंके आशा-विश्वासके प्रति सहानुभूति अवश्य थी। मैं यह भी जानता था कि उन लोगों की परिस्थिति अत्यन्त कठोर है। मैं

यह सोचकर रूस नहीं गया था कि मैं किसी स्वप्नदेश अथवा मक्का जा रहा हूं।

किसानोंके विद्रोह, भुखमरी और उत्पादन की अवनतिसे बाध्य होकर सोवियत् सरकारने १६२१ में एक नयी आर्थिक नीतिका अवलम्बन किया था। उसके अनुसार छोटे-मोटे पूँजीवाद और बाहरसे आनेवाली आर्थिक सहायताको प्रश्रय मिला था। दुर्बल सोवियत् सरकारको पीछे हटना पड़ा था। लेनिनने अपनी हार कबूल की, किन्तु अपनी हारको छुपानेकी कभी कोशिश नहीं की। रूसके लेनिनग्राड और कीव इत्यादि प्रमुख नगरोंमें छोटी-मोटी जरूरत की चीजें बेचनेवाले बिसाती और छोटे-छोटे दुकानदार एक बाढ़ की तरह फैलने लगे। सबमें एक आशाका संचार था, जल्दीसे जल्दी अमीर बन जानेके लिए स्पर्धा भी। सरकारने कई जूएके अड्डे खोले थे और सरकार द्वारा चलाए गए होटलों तथा संगीतशालाओंमें वे पदार्थ बिकते थे जो कि बाहरके साधारण नागरिकोंको नसीब नहीं थे। यह सब देखकर कम्युनिज्म अथवा एक नए जीवन की बात सोचना कठिन था। पूंजीवाद की दृढ़ मनोवृत्तियां तनिकसी सुविधा पाकर जाग उठीं। मुझे भय लगने लगा कि क्रान्ति की हत्या हो रही है। कम्युनिस्टोंने मुझे समझाया कि ऐसी कोई बात नहीं। बाहरसे देखनेपर कम्युनिज्मका कोई लक्षण नहीं था। किन्तु कम्युनिस्टोंसे बातें करके कुछ विश्वास होने लगता था।

कम्युनिस्ट पार्टी सोवियत् रूसकी सबसे महत्वशील संस्था थी। उन लोगोंके त्याग और बलिदान की भावना देखकर मुझे किसी संतसंप्रादाय की याद आती थी। और उनका अनुशासन, गुप्तमन्त्रणा की क्षमता,

तथा हुक्म मानने की आदत देखकर ऐसा लगता था, जैसे वे किसी सेनाके सदस्य हों। वे ही शासनके रक्षक, प्रवर्तक तथा पथप्रदर्शक थे। पार्टी ही नीतिका सूत्रपात करती थी और समस्त सत्ता पार्टीके हाथमें थी। फिर भी प्रत्यक्ष रूपमें पार्टी सत्ताका प्रयोग करती नहीं दीख पड़ती थी। पार्टी सरकारको सलाह देती थी, आगे बढ़ाती थी और सरकार पर निगरानी रखती थी। काम का वह विभाजन मुझे ठीक जँचा। इससे सत्ता प्राप्त कम्युनिस्टोंके भ्रष्ट होनेका डर नहीं था। सरकारके अधिकतर कर्मचारी कम्युनिस्ट पार्टीके सदस्य थे। किन्तु पार्टीके और हजारों ऐसे सदस्य भी थे, जिनको सरकारमें कोई पद नहीं मिला था। पार्टीके बड़े नेता स्टालिन, जिनोवीव, बुखारिन इत्यादि किसी सरकारी पदपर नहीं थे।

पार्टीके लोग एक दूसरेको साथी कहकर पुकारते थे और सबको एक समान वेतन मिलता था, जिसके कारण उनमें एक शुद्ध जीवन-यापन करने की भावना पाई जाती थी। कम्युनिस्टोंके अधिकारोंसे उनके उत्तरदायित्व अधिक थे। पार्टी प्रत्येक कम्युनिस्टसे एक आदर्श-स्थापना की आशा करती थी। उस आदर्शमें धर्मका घोर विरोध, कम्युनिज्ममें गहन विश्वास, व्यक्तिगत नैतिकता तथा राजनैतिक श्रद्धाभावका समावेश था। उस आदर्शसे गिरनेवालोंको कठोर दण्ड दिया जाता था। रूसमें चारों ओर जीवनका संचार था। खेत और जंगल छोड़कर दलपर दल लोग शहरोंमें धंसे चले आ रहे थे। सब जगह नौजवान लोगोंका बोल-बाला था। लेनिन की आयु थी ५२ वर्ष, ट्राट्स्की ४३ वर्षके थे। और स्टालिनने भी जीवनके ४३ वर्ष पूरे किए थे। इसके सिवाय जिनोवीव

और कामानेव ३८ वर्षके, बुखारिन ३४ वर्षके तथा राडेक कुल ३७ वर्षके थे।

क्रान्तिने देशका मन्थन किया था, जिसके फलस्वरूप पुराने वर्ग पिसकर मटियामेट हो गए और नवीन शक्तियोंने सिर उठाया। उन नवीन लोगोंको जो अवसर मिला था, उसके लिए वे इतने कृतज्ञ थे कि कठोर अनुशासन, सख्त मेहनत और सब प्रकारके बलिदान झेलनेके लिए वे तैयार हो गए थे। देशके अधिकतर हिस्सोंमें अकाल फैला था। एक वक्तके भोजनका मूल्य अरबों रूबल हो गया था। रूसमें सिक्केका हाल जर्मनीसे भी बुरा था। रूसमें पहिले ही बहुत दरिद्रता थी। विश्व-युद्ध, गृहयुद्ध और क्रान्तिके हंगामेसे और भी विनाश बढ़ा। मैं तो वहाँ की गरीबी देखकर थर्रा उठा। किन्तु सरकार अथवा जनतामें मैंने थकान अथवा निराशाका भाव नहीं देखा। उनका उत्साह तो संक्रामक था। देखनेवालों पर भी छा जाता था। मेरी समझमें नहीं आया कि मास्को स्थित विदेशी कूटनीतिज्ञ और संवाददाता क्यों उस राष्ट्रके पुरुषार्थका मज़ाक उड़ाते थे, जो कि कमर कसकर अपने आपको कीचड़से निकालने की जी तोड़ चेष्टा कर रहा था। मैं गरीबीके वातावरणमें जन्मा और पला था, इसलिए गरीबीको मिटा डालनेका वह व्रत बहुत ही स्तुत्य लगा। बालशेविकोंने व्यक्तिगत सम्पत्तिका अपहरण किया था और भूमि-का राष्ट्रीयकरण भी। इन सब बातोंके विरुद्ध होने पर भी बॉल्शेविकोंका विरोध करनेको मेरा जी नहीं चाहा। क्रान्तिने मानो अतीतको धो-पोंछकर मिटा डाला था। मेरे लिए यह एक बहुत बड़ी बात थी। अब सोवियत् देश एक ऐसी दिशामें मार्ग खोज रहा था जिधर पहले कोई

राष्ट्र कभी नहीं गया। मुझे उनके साहस पर श्रद्धा ही हुई। उनकी इमान्दारी पर शक करना किसीके लिए भी असम्भव होता।

मैंने अपने लिए कम्युनिस्टोंके गुणोंकी एक तालिका बना ली थी। उसमें सर्वप्रथम उनकी अन्तर्राष्ट्रीयताका स्थान था। देशोंकी सीमाएं अधिकतर बलात्कार और युद्ध द्वारा बनती हैं। राष्ट्रवाद युद्ध, आर्थिक स्पर्धा एवं घृणाका उत्पादक है। उसे भी एक प्रकारका जातिवाद माना जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। बॉल्शेविक सब जातियोंको एक समान मानते थे। सोवियत् यूनियनमें एकसौ से अधिक जातियां थीं। किन्तु जो जातियां आगे बढ़ी हुई थीं वे पिछड़ी जातियोंके लिए सब प्रकारके त्याग करने पर तुल गईं। रूसके बाहर बॉल्शेविक राष्ट्रीय विभाजनोंको स्वीकार करते थे, किन्तु उनका उद्देश्य था एक अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट समाजकी प्रस्थापना, जिसके फलस्वरूप शाश्वत शान्तिका राज्य धरापर उतर आए।

नए रूसका प्रायः सभी देशोंने विरोध किया था। रूसके साथ सबकी ओरसे दुर्व्यवहार और अन्याय हुआ था। पूंजीवादी कूटनीतिज्ञों-को इस नए देशके साथ राजनैतिक तथा आर्थिक सम्बन्ध स्थापित करके, शान्ति और नवोत्थानमें दिलचस्पी नहीं थी। वे गड़े मुर्दे उखाड़कर चिल्ल-पों मचा रहे थे। वे रूससे अपने पुराने ऋण मांग रहे थे। रूसमें उनकी जो सम्पत्ति जब्त हो गई थी, उसे वापिस लेना चाहते थे और रूसी आदर्शों पर कुठाराघात करनेमें उनको मज़ा आ रहा था। दोस्तोंसे बातें करते समय मैं भी बॉल्शेविकोंकी मूर्खता और गंवारपन की भर्त्सना करता था। किन्तु युरोप और अमेरिकामें भ्रमण करते समय मैंने देखा

कि वहाँ लोग दो दलोंमें विभक्त हो चुके हैं। एक वे जो रूसके पक्षमें थे, दूसरे वे जो रूसका विरोध करते थे। इस दूसरे पक्षका साथ देनेको मेरा जी नहीं चाहा। अमेरिकाके जीवनमें भरी तुच्छता और निरुद्देश्यता देखकर रूसके प्रति मेरा आकर्षण और भी बढ़ गया। इटलीमें घबराया हुआ गणतन्त्र मुसोलिनीके हाथों मर चुका था। जर्मनीके सोशलिस्टोंको युद्धके बाद एक अच्छा अवसर मिला था, जिसमें वे जर्मनीके युद्धबाजों की जड़ें उखाड़ सकते थे। युद्धबाज थे जर्मनीके बड़े-बड़े जमींदार, कारखानेदार तथा फौजी वर्ग। सोशलिस्टोंने इन वर्गोंके साथ नरमी दिखाकर मेरी सहानुभूति खो दी। जब वे सोशलिस्ट बॉल्शेविकों की तीव्र आलोचना करने लगे तो उनके प्रति मैं और भी असहिष्णु हो गया। आखिर बॉल्शेविकोंने जारशाही और पूंजीवादका नाश किया था। सोशलिस्ट जिन्होंने कुछ नहीं किया था, किस मुंहसे उनकी बद-नामी कर सकते हैं, यह मेरी समझमें नहीं आया। मैंने यह सोचना ही छोड़ दिया कि पूंजीवादका स्थान कभी सुधारवादी, गणतन्त्रात्मक समाज-वाद ले सकेगा। मेरे पास पूंजीवादका एकमात्र जवाब कम्युनिज्म ही रह गया।

मुझे धीरे-धीरे ऐसा लगने लगा कि मैंने फैसला कर लिया है। फैसला करनेके लिए विभिन्न पक्षोंका प्रस्तुत होना आवश्यक होता है। मैं कमरेकी बन्द हवासे तूफानको अधिक पसन्द करता था। मुझे ईमा-न्दार पुरुषार्थी अच्छे लगते थे। मुझे सोवियत् देश इसलिए अच्छा लगा कि वहाँ दलित जनगणकी मुक्तिके लिए एक नया प्रयोग किया जा रहा था। उन्होंने शक्तिशाली वर्गोंका सिर नीचा किया था। वे दुर्बल

थे। संसारके रूढ़ीवादी और प्रतिक्रियाशील लोग उनके विरुद्ध युद्ध-परायण थे। इन सब बातोंके घात-प्रतिघात मेरे मानस पर पड़े और मेरे संस्कारोंने रूसके पक्षमें फैसला दे दिया।

धीरे-धीरे मेरा पक्षपात यहाँ तक बढ़ा कि सोवियत् देशमें होनेवाली नित्यप्रतिकी घटनाओंकी मीमांसा करनेकी जरूरत मैंने नहीं समझी। पक्षपात करनेके बाद अपने पक्षके साधारण अवगुणों पर हमारा ध्यान नहीं जाता। धार्मिक विश्वास तर्क द्वारा नहीं हिलाया जा सकता। देश-भक्ति और व्यक्तिगत प्यार मोहब्बतमें भी ऐसा ही अन्धापन होता है। कितने ही तथ्य जुटा दिए जाएँ, किन्तु पक्षपातीके कान पर जू नहीं रेंगती। जो बातें रूसके विरुद्ध जाती थीं उनको मैं तात्कालिक मानता था, मिथ्या आरोप कह कर उड़ा देता था, अथवा रूसके पक्षमें और महत्वकी बातें बता कर हलका कर डालता था। मैं रूसकी हालतको ध्यानसे देखता समझता रहता था और रिपोर्ट भेजनेमें भी मैंने कभी बेईमानी नहीं की। मेरी बहुतसी रिपोर्ट रूसके विरुद्ध भी होती थी, किन्तु रूसकी सामाजिक व्यवस्थामें अथवा रूसके उज्ज्वल भविष्यमें मेरा विश्वास तिल भर भी कम नहीं हुआ।

४ मार्च १९२५ को न्यूयार्कके समाचार-पत्र 'नेशन'में मेरा एक लेख छपा। शीर्षक था—"बॉल्शेविक रूसमें राजनीतिक बन्दी।" उसमें मैंने एमा गोल्डमैन और अलेक्जान्डर बर्कमैनका जिक्र किया। वे दो विख्यात अराजकतावादी थे, जो १९२०-२१ में रूसमें आए थे। अब वे राजनीतिक बन्दियोंका प्रश्न लेकर रूस पर आक्षेप कर रहे थे। लेखमें मैंने लिखा—"उन दिनों (१९२०-२१ में) आज (१९२५) की अपेक्षा

रूसकी जेलोंमें अधिक राजनीतिक बन्दी थे और उनके साथ आजसे बहुत बुरा व्यवहार होता था। बर्कनैन और गोल्डमैन यह सब जानते थे, क्योंकि उनको रूसमें घूमने-फिरनेकी स्वाधीनता थी और वे बॉल्शेविकोंके विरोधियोंसे मिल कर भी खोज-खबर रखते थे। फिर भी उन्होंने बॉल्शेविज्मका समर्थन किया था और बहुतसे अराजकतावादियोंको कम्युनिज्म अपनानेके लिए प्रोत्साहन दिया था। उन दिनों क्यों नहीं ये राजनीतिक बन्दी उनकी आँखोंमें खटके? एक ही कारण था। उन दिनों वे रूसके पक्षपाती थे और राजनीतिक बन्दियोंकी बात उन्हें रूसकी सफेद पोशाक पर एक तुच्छ-सा कलंक लगती थी। किन्तु आज वे रूसमें विश्वास खो बैठे हैं तो यह राजनीतिक बन्दियोंका मामला और सब कुछको छुपा कर उन्हें रूसके विरुद्ध जिहाद उठानेमें मदद दे रहा है।"

बर्कनैनने मेरे लेखका उत्तर बर्लिनसे दिया। उन्होंने लिखा—"रूसमें निवासके अपने प्रारम्भिक दिनोंमें मेरी भावना बॉल्शेविकोंके लिए बहुत अच्छी थी। मैं उनके काममें सहायता देना चाहता था। फिर भी प्रत्येक अवसर पर मैंने उनको समझाना चाहा था कि क्रान्तिको सहिष्णुताकी नीति अपनानी चाहिए और अपने वामपन्थी विरोधियोंके साथ ईमान्दारीसे पेश आना चाहिए। इससे क्रान्तिकी अधिक सेवा होती। किन्तु वे तो अपने विरोधियोंको मिटा डालने पर तुले थे। आज भी मैं उनकी नीतिको बदलवानेकी चेष्टा करता रहता हूं। क्रान्स्टाड[1] के हत्याकाण्डके बाद बॉल्शेविकोंसे मेरा सम्बन्ध-विच्छेद हो

---

१ एक जहाजका नाम जिसके नाविकोंकी सहायतासे लेनिनने सत्ता हथियाई थी। १९२१ में ये नाविक क्रान्तिसे असन्तुष्ट होकर बलवा कर बैठे तो लेनिनने बड़ी बेरहमीसे उनका कुचल डाला। अनेक नाविक लाल सेनाने गोलीसे उड़ा दिए।

गया। तो भी मैं उनका शत्रु नहीं बना हूं। पर राजनीतिक बन्दियोंका विरोध मैं बड़े स्वरमें अवश्य करूंगा।"

बर्कमनने मेरे ही मतकी पुष्टि की थी। एक समय वह सोवियत्का हिमायती था, किन्तु राजनीतिक बन्दियोंके प्रति बॉलशेविकोंका पाशविक व्यवहार देखकर उसे घृणा होती थी। कुछ दिन बाद क्रोन्सटाडके नाविकोंके विद्रोहको जिस बर्बरतासे दबाया गया वह देखकर बर्कमैन सोवियत् सरकारसे विमुख हो गया। इसलिए अब उसके लिए यह राजनीतिक बन्दियोंकी बात उस सरकारके विरुद्ध एक प्रमाण बन गई। पहले जो बात बॉल्शेविकोंके प्रति उसमें सन्देह उपजाती थी, वही अब उनके प्रति उसकी घृणाको दृढ़ करने लगी। मन पर गहरी चोट पड़नेसे ही ऐसा होता है। मेरे ऊपर वह चोट पड़नेमें अभी कई वर्षकी देर थी।

हाँ, मैं सोवियत सरकारको अपने मनकी तुला पर तोलता तो बराबर रहता था। लेकिन तुला किस ओर झुकेगी इसके लिए उस तुलाके पलड़ोंमें रक्खे तथ्यों पर आँखें उठाना आवश्यक था। एक ओर, १९२४ से ही मैंने देख लिया था कि सोवियत् सरकार व्यक्ति स्वाधीनता की परवाह नहीं करती। हमारे पाश्चात्य देशोंमें व्यक्ति-स्वाधीनताकी पूजा की जाती है। बॉल्शेविक ऐसा कुछ नहीं मानते थे। वे कहते थे कि व्यक्तिको आर्थिक स्वाधीनता देना अधिक ऊँचा आदर्श है। इसलिए वे वहाँकी खुफिया पुलिसकी करतूतोंकी मार्जना करते रहते थे और कहते थे कि स्वाधीन समाचार-पत्रोंका देशमें होना बहुत आवश्यक नहीं है। मुझे उनकी ये सब बातें पसन्द नहीं थीं, क्योंकि मैं तो सदा व्यक्ति-

स्वाधीनताको सब अधिकारोंसे ऊपर मानता आया हूं। दूसरी ओर, मैं मानता था कि बॉल्शेविक एक नया समाज बनानेके लिए कृतसंकल्प हैं। उस समाजमें मानव द्वारा मानवका शोषण नहीं रह जाएगा। यह सब सोचकर मैं कुछ और बातोंके कारण उपजी सोवियत् सरकारके विरुद्ध अपनी कटुता थूक देता था।

सोवियत् सरकार जो वायदे करती थी वे मेरी कल्पनाको फड़का देते थे। सोवियत् सरकारकी वे हुण्डिया जिनके कई साल बाद भुनानेका आश्वासन रूसकी जनताको दिया जाता था, मेरी आँखोंमें उस सरकारके तात्कालिक दिवालिएपनको छुपा लेती थी। रूसके काले अतीतकी बातें बार-बार सोचकर उनके भविष्यका स्वप्न मेरे लिए और भी सार्थक होने लगता था। देशके वर्तमानकी बात मैंने सोचनेका प्रयास ही नहीं किया। बॉल्शेविकोंकी समस्त जमा पूँजी थी भविष्य और उसीके शेयर काट-काट कर वे धन्ना सेठ होनेका दम भर रहे थे। प्रत्येक पञ्चवर्षीय योजनाका मसविदा प्रस्तुत करते समय वे कहते थे कि वर्तमानको भूल जाओ, भविष्यमें देखना क्या-क्या होता है। वर्तमानमें यदि खानेको नहीं मिलता तो शिकायत करना बेईमानी है, क्योंकि समाजवादके निर्माणके लिए भूखों मरना सबका कर्तव्य है। आज आप मक्खन खानेका हठ कर बैठें तो नदियों पर वे बड़े-बड़े बाँध कैसे बाँधेंगे जिनके फलस्वरूप देशमें अनेक गुनी बिजली, फौलाद और मक्खन पैदा होनेकी आशा है। मैं इस तर्कजालमें फँस गया।

सोवियत् सरकार इस तर्क पद्धतिका जादू अच्छी तरह समझ गई थी। इसलिये वह उज्ज्वल भविष्य जितना ही दूर हटता गया, उतना ही

उसको निकट बतानेका उनका हठ बढ़ता गया। १९३० में उन्होंने हुक्म दिया कि रूसके लेखकोंको वर्तमानकी बातें भुला देनी चाहियें। उनको यह समझना चाहिये कि रूसका उज्ज्वल भविष्य ही वर्तमान है। इस साहित्य-प्रणालीको उन्होंने "समाजवादी यथार्थवाद" का नाम दिया। सेवोलोद् इवानोव एक विख्यात सोवियत् उपन्यासकार थे। उन्होंने गोर्की मोटर कारखानेके जीवन सम्बन्धी एक उपन्यास लिखनेका संकल्प किया और उस जीवनसे विशेष परिचय प्राप्त करनेके लिए वे कारखानेमें जाकर रहने लगे। वे अपनी हस्तलिपिके कुछ अंश मजदूर सभाओंमें सुनाते रहते थे। एक अध्यायमें लिखा था कि रूसमें सड़कें खराब हैं, बसें भी अच्छी नहीं, इसलिये रूसके मजदूरोंको लम्बे रास्ते तय करनेमें बहुत कष्ट होता है। सभामें बैठे कम्युनिस्ट यह सब सुनकर उनके पीछे पड़ गये। पूछने लगे—"आपका उपन्यास कितने दिनमें पूरा होगा?"

"छः महीनेमें" इवानोवने अनुमान करके बताया।

"सेन्सर होनेमें दो-चार महीने लगेंगे और छपनेमें और दो-चार महीने,"—कम्युनिस्ट कहने लगे—"आपकी पुस्तक प्रकाशित होते-होते एक वर्ष तो लग ही जाएगा। तब तक तो हमारे देशमें सब सड़कें बहुत अच्छी बन जाँएगी। नई बसें आ जाएँगी और कारखानेके पास ही नए और सुन्दर मकान बन जाएँगे, ताकि मजदूरोंको दूरसे न आना पड़े। आप इन तमाम सुविधाओंको वर्तमान मानकर क्यों नहीं अपना उपन्यास लिखते?"

एक बार मैं बीमार पड़ा। कई हफ्ते तक चारपाई पकड़े रहा। कुछ बन्धुओंने टेलीफोन पर मेरा हाल-चाल पूछा, तो मेरी स्त्री गारकुशा

कहने लगी—"पहलेसे बहुत अच्छे हैं। लेकिन इनको मालूम नहीं है कि पहलेसे अच्छे हैं।" मारकूशा भी घरके भीतर "समाजवादी यथार्थवाद" की साधना कर रही थी। मुझे सुनाकर उसने ये शब्द कहे थे, ताकि मेरे ऊपर अच्छा असर पड़े। वर्तमानको झुठलानेका यह तरीका सोवियत् सरकारका एक प्रधान अस्त्र था। जो आशाको छोड़कर ठोस यथार्थकी ओर संकेत करनेकी धृष्टता कर बैठते उनको बूर्जुआ कहकर गाली दी जाती थी। इस आशावादसे नौजवानों और बूढ़ोंको कुछ आश्वासन-सा मिलता रहता था। जिनको यह आशा थी कि सोवियत् समाज मानव जातिके उद्धारकी ओर बढ़ेगा, उनके लिये भी यही एक मन्त्र था जिसको जपकर वे अपना विश्वास बनाए रखते थे। एक राईके बराबर उन्नति यदि उनको किसी ओर दिखाई देती थी, तो उसीको पहाड़ बना-बनाकर वे बखान करते थे।

मकान इत्यादिका बनाना मुझे हमेशा अच्छा लगा है। इसीलिये सोवियत् यूनियनमें बड़े-बड़े कारखाने, बिजली-घर और नगर इत्यादि बनते देखकर मेरा हृदय नाच उठता था। फिर आशाका चश्मा आँखों पर चढ़ा था। कहता रहता था कि अभी तो शुरूआत ही हुई है, प्रोग्राम पूरा होने पर तो रूसका नक्शा ही बदल जाएगा और जनता के जीवन-स्तरमें जो वृद्धि होगी, उससे यह साबित हो जायगा कि रूसकी सरकार जनताकी सरकार है, जो केवल जनताके हितकी साधना ही करती रहती है। इन्हीं दिनों सोवियत् समाचार-पत्रोंमें औद्योगिक प्रगतिके आँकड़े छपने लगे। वे मानो उस महान् संगीतके पद थे, जो गा-गाकर हम नए समाजका स्वागत करेंगे। खारकोवमें जब ट्रैक्टर बनानेके

कारखानेकी नींव रक्खी गई, तो मैं वहीं था। मैंने कारखानेके लिये भूमिको समतल होते देखा। आए साल मैं वहाँ जाकर कारखानेकी प्रगति देखता था। मेरा उस कारखानेसे गाढ़ सम्बन्ध हो गया। इसी प्रकार नीपर बांधकी नींव रक्खी जाने पर मैं चीफ इञ्जीनियरके साथ उस नदी पर गया और उन खम्बों पर चढ़ा, जो कि बाँधको सँभालनेके लिये बनाए गए थे। पांच साल बाद वहां सौ फीट ऊँचा, तीन फर्लाङ्ग लम्बा एक बाँध तैयार हो गया और मैं मोटरमें बैठकर उस पर घूमा। सोवियत् सरकारने उजाला, आग और अन्य जरूरी वस्तुएँ करोड़ों लोगों तक पहुँचानेका प्रबन्ध किया था। जब नाज़ी लोगोंने उस बाँधके एक अंशको उड़ा दिया, तो मुझे चोट-सी लगी।

१६२६ में भयानक मन्दीका बवण्डर उठा। करोड़ों बेकार हो गए और रोटीको तरसने लगे। बहुतसे कारखाने और बिजली-घर बन्द हो गए। मेरी तराजू पर सोवियत् सरकारका पलड़ा और भी भारी हो गया। पूँजीवादकी दुर्दशाने मुझे रूसमें विश्वास करनेके लिये उकसाया। पूँजीवादी देशोंके अर्थशास्त्री और बुद्धिशाली लोग रूसमें आ-आकर वहाँकी आर्थिक व्यवस्था कर अध्ययन करने लगे। वे अपने देशोंमें उस व्यवस्थाको लागू करना चाहते थे। रूसमें एक ओर शिल्पोद्योग बढ़ रहे थे, दूसरी ओर खेतीका एकीकरण शुरू हो गया। एक कामके करनेमें ही किसी भी राष्ट्रकी सम्पूर्ण शक्तिका उपयोग हो जाता। किन्तु बाल्शेविक तो मानो शक्तिके अक्षय अवतार थे, जो दो-दो काम एक ही साथ सँभालने लगे। १६२६ में उन्होंने एक आन्दोलन चलाया, जिसके फलस्वरूप दस करोड़ व्यक्तिगत खेत मिलाकर बड़े-बड़े सामूहिक फार्म

बनानेकी व्यवस्था की गई। किसानोंके संसारमें यह एक बहुत बड़ी क्रान्ति थी। खेतीके एकीकरणसे उत्पादन अनेक गुणा बढ़ जानेकी आशा थी। कहा जाता था कि जिस प्रकार जुलाहेके करघेका स्थान कारखानेने लेकर कपड़ेका उत्पादन कई गुना कर दिया, उसी प्रकार बड़े फार्म पर मशीनों द्वारा खेती करके पैदावार कई गुना बढ़ाई जा सकेगी। मुझे ऐसा लगा जैसे इतिहास एक नई मंजिल पार करने वाला है और बोल्शेविक लोगोंने इतिहासके एक युगको दो ही तीन वर्षोंमें बदलनेका बीड़ा उठाया है। रूसमें विदेशी दर्शकगण अपना भाग्य सराह रहे थे। उनकी आँखों के आगे इतिहासका निर्माण हो रहा था।

किन्तु किसानोंके एकीकरणसे बहुतसे रूसके हमदर्दोंकी आँखें भी खुलने लगीं। मेरी आँखें खुलनेमें अभी देर थी। किन्तु रूसके बाहर और भीतर बहुतसे लोगोंने स्पष्ट देखा कि एकीकरण पुरानी दास-प्रथाका दूसरा नाम है। किसान अपनी जमीनोंसे हाथ धोकर गुलाम बन गए, जिनको गाँवके कम्युनिस्ट डण्डेके जोरसे हाँकने लगे। अब किसानोंको बीज, औजार, काम, ढोर, पूँजी तथा मजदूरोंके लिये सरकारका मुँह ताकना पड़ता था। खेतीके एकीकरणके विरुद्ध किसानोंने डटकर लड़ाई की। देशके कोने-कोनेमें बलवे हुए और हमने सरकारका दमन भी देखा। लाखों खुशहाल किसानोंको घरसे निकालकर दास-कैम्पोंमें भेजा गया। फिर भी देहातोंमें विद्रोह नहीं मिटा। गरीब किसानोंने सामूहिक खेतियोंमें अपने ढोर देनेसे इन्कार कर दिया और सामूहिकके सदस्य बननेसे पहले उन्होंने ढोरोंको या तो बेच डाला अथवा मारकर खा लिया। इसके फलस्वरूप ढोरों और घोड़ोंकी जो कमी रूसमें पड़ी,

वह आज तक भी दूर नहीं हो सकी है। सरकारने सामूहिक रूपमें किसानोंको भर्त्ती करनेके लिए बलका प्रयोग किया। लाल फौजके दस्ते प्रत्येक गाँवमें जाकर किसानोंको सामूहिक बनानेके लिये बाध्य करने लगे। किसानोंको धमकी दी गई कि यदि वे सामूहिकमें भरती नहीं होते, तो उनको 'जमींदार' बताकर साइबेरिया अथवा तुर्किस्तान भेजा जाएगा। इस प्रकार रूसके अधिकांश किसानोंको सामूहिक खेतियोंमें बाँधा गया। किन्तु सामूहिकके सदस्य बनकर भी क्षुब्ध किसानोंने सहयोग करनेसे इन्कार कर दिया और खेतीके काममें रोड़े अटकाए। उनको आशा थी कि सरकार अपनी भूल मानकर वह घातक नीति छोड़ देगी और इस प्रकार १९३१-३२ का वह महान अकाल पड़ा, जिसमें करोड़ों किसानोंके प्राण गए। गांवके गांव उजड़ गए। बॉल्शेविकोंको अपनी हठधर्मीका बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा।

१९३२ और १९३६ के बीच मैंने यूक्रेन, क्राइमिया, कौकेसस तथा उत्तरीय रूसमें जाकर बहुतसे सामूहिक खेत देखे। खेतके छोटे-छोटे टुकड़ोंसे तो वे बहुत अच्छे थे। छोटे-छोटे खेतोंके बीच बनी बाड़ें और मेंड़ें नदारद थीं। मशीनोंसे काम हो रहा था। बच्चोंके विश्राम-गृह और किंडरगार्टन बन चुके थे और विज्ञानके अनेक नए-नए आविष्कार भी गांवमें पहुँच रहे थे। मैं अपने मनमें हिसाब लगाने लगा कि क्या नफे-नुकसानकी रोकड़ इस प्रकार मिल जाती है। मेरे मनमें अपनी दृष्टिभंगीको लेकर एक शंका उठने लगी। मैं फौलाद और बिजलीको एक पलड़ेमें रखकर मनुष्यकी यन्त्रणासे तोल रहा था। वे समस्त स्कूल, जूते, पुस्तकें, ट्रैक्टर, बिजली, रेल इत्यादि मिलकर कभी भी

उस स्वर्ण-युगकी सृष्टि नहीं कर सकते थे, जिसकी मैं प्रतीक्षा कर रहा था। यदि उस वस्तु-समुदायको पैदा करनेमें अनैतिक और पाशविक तरीकोंका सहारा लिया गया था, तो जीवनके वे समस्त साधन बेकार थे। सोवियत् यूनियनके प्रति मेरे हृदयमें वह पुराना पूजा-भाव अक्षुण्ण न रह सका।

फिर बोल्शेविकोंने वे झूठे मुकदमे चलाने शुरू कर दिए। पहला मुकदमा १६२८ में हुआ था। प्रायः पचास सोवियत् इञ्जीनियरों पर आरोप लगाया गया था कि उन्होंने विदेशी सरकारोंके गुप्तचर बनकर उत्पादनमें बाधाएँ डाली हैं। मैंने कचहरीमें बैठकर सब सुना और देखा। मेरी समझमें नहीं आ रहा था कि क्या सत्य मानूँ और क्या मिथ्या। कुछ-कुछ तो मुझे सत्य मालूम होता था। किन्तु बहुत कुछ सुनकर आश्चर्य ही हुआ और जब बन्दूक लिये हुए खुफिया पुलिसका एक सिपाही एक व्यक्तिको कचहरीमें लाया तो मेरे मनमें अविश्वास बढ़ने लगा। व्यक्तिका नाम था मुखिन। आज भी मुझे उसका नाम, वेश-भूषा तथा शकल-सूरत याद है। उसने एक अभियुक्त राबिनोविचके विरुद्ध गवाही दी। अभियुक्त प्रायः सत्तर सालका था। उसने सरकारी वकीलको नाकों चने चबाए थे। उसके विरुद्ध पक्का सबूत जुटानेके लिए ही मुखिनको लाया गया था। मुखिन भी किसी और सिलसिलेमें कई महीनेसे जेल काट रहा था। उसने कसम खाकर कहा कि उसने अपने हाथसे राबिनोविचको उसके अपने लिए तथा उसके साथियोंके लिए घूसका रुपया दिया था।

राबिनोविच बढ़ कर उसके निकट पहुँचा और उससे बोला—

"आप किसके बारेमें यह सब कह रहे हैं ? मेरे बारेमें या और किसीके बारेमें ?"

"आपके बारेमें" —मुखिनने उत्तर दिया।

"क्यों झूठ बोलते हो" —राबिनोविचने चीत्कार किया—"किसने तुम्हें झूठ बोलना सिखाया है ? तुम अच्छी तरह जानते हो कि तुमने मुझे कोई रुपया नहीं दिया।"

मुखिनका मुख और पीला पड़ गया। वह कठपुतलीकी तरह वही एक बात बार-बार कहता रहा। और फिर वह सशस्त्र सिपाही उसे कचहरीसे खदेड़ ले गया। सरकारी वकील भी शरमा कर रह गया। सब समझ गए थे कि मुखिनकी गवाही पुलिसवालोंने तैयार की थी। मैंने अपने परिचित, रूसके विदेश विभागमें काम करनेवाले एक उच्च अधिकारीसे अपने मनकी बात कह डाली। वह मुझपर विश्वास करता था। उसने भी मान लिया कि मुखिनकी गवाही पुलिसने गढ़ी थी। मुखिनकी झूठी गवाही अपने-आपमें कोई बहुत बड़ी बात नहीं थी। किन्तु रूसमें पुलिसकी ताकत बढ़ती जा रही थी और जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें वे मन-मानी करने लगे थे। १९२८ में उन्होंने ट्राट्स्कीको गिरफ्तार कर देश निकालेका दण्ड दिया। उसका अपराध स्टालिनके साथ सिद्धान्त की बातोंपर मतभेद मात्र था। क्रान्तिके पूर्व और लेनिनके समयमें इस प्रकारके मतभेदों पर पार्टीमें विवाद होता और सदस्यों की राय लेकर फैसला किया जाता। किन्तु अब तो पुलिस की गोली ही सब बातोंका फैसला करने लगी थी। मैं आज नहीं कह सकता कि ट्राट्स्की और स्टालिनमें कौन ठीक था, कौन गलत। अपनी पुरानी रिपोर्ट पढ़ कर

देखता हूँ कि उस समय भी मैंने किसीका पक्ष नहीं लिया था। किन्तु इतना मैं आज कह सकता हूँ कि मतभेदको मिटानेके लिए पुलिसको काममें लाना कम्युनिस्ट पार्टीके लिए एक बड़े दुर्भाग्यकी बात थी। इसके बाद तो देशका शक्तिशाली व्यक्ति बुद्धिमान भी माना जाने लगा। मत-भेद रखनेवालोंको अपनी जानकी फिक्र होने लगी और चुप रहना ही वे ठीक समझने लगे। ईमान्दारीने हार खाई, मिथ्याचारका बोलबाला हुआ।

मैं इन घटनाओंको देखता रहा किन्तु मैं तब तक यह नहीं समझ सका था कि रूसकी अवनति शुरू हो चुकी है। इसके बाद रूसमें सत्यको चुप रहना पड़ा और मिथ्या चीत्कार करने लगा। इन्हीं दिनों स्टालिनको देवता बनाकर उसकी पूजा भी रूसमें शुरू हुई। इस पूजाको देखकर मैं विद्रोह कर उठा। सरकारी प्रचार, जिसको स्टालिन स्वयं चलाता था, कहने लगा कि स्टालिनसे कभी कोई भूल नहीं हो सकती, स्टालिन करुणाकी मूर्ति हैं, सब कुछ जानता है, और रूसमें जो कुछ शुभ हुआ है वह सब स्टालिनके हाथोंसे। रूसके किसी नागरिकको जीवनमें जो कुछ सुख-साधन मिले हैं, वे सब स्टालिनका ही प्रताप हैं। इत्यादि इत्यादि। इन सब बातोंका एक ही अर्थ था। रूसमें जो कुछ भूलें, जनताका संताप और असफलता देखी जाती थी, वह सब ट्राटस्कोवादी, जनशत्रु, गद्दारोंकी करतूतें थीं। मैं तिलमिला उठा। १९३० में मैंने मास्कोसे एक लेख लिखकर न्यूयार्कमें प्रकाशित किया। मैंने इस सब मिथ्याचारके लिए स्टालिनको दोषी बताया और खुलेआम स्टालिनको बॉल्शेविज्मका शत्रु कह दिया। मेरी एक भूल थी जो मैं आज देख पा रहा हूं। स्टालिन वास्तवमें वही कर रहा था जो कि एक बॉल्शेविकके लिए

अनिवार्य है। तानाशाहको यह सब करना ही होता है। मुसोलिनी और हिटलरको भी अपना गुणगान करवाना पड़ा। उस समय किन्तु मैं नहीं समझ सका कि स्टालिन और रूसका यह कुत्सित काम एक मरणात्मक रोगके चिन्ह थे। मैं उसे एक स्वस्थ शरीर पर एक-दो फुन्सी मान बैठा। अभी तक मेरा खयाल था कि रूसमें गुण अधिक हैं और अवगुण बहुत कम। आशाने मुझे अन्धा बना दिया था। आँखोंसे सब कुछ देख रहा था। किन्तु विश्वासने हिलनेका नाम न लिया।

शायद मेरे भीतर सत्य धीरे-धीरे अपना अधिकार जता रहा था। किन्तु अभी तक वह चोट पड़ना बाकी था जिसके फलस्वरूप वह सत्य मैं चेतन मनसे स्वीकार कर पाता। फिर १६३३ में हिटलरके उदयने मेरे सम्मुख रूससे गठबन्धन करनेके लिए प्रमाण उपस्थित कर दिए। नाजी लोग उच्च स्वरसे अपनी मान्यताओंका प्रचार कर रहे थे। मुझे विश्वास हो गया कि यदि नाजी जीत गए तो संसार बर्बरताके युगमें लौट जाएगा। जर्मनीके कम्युनिस्टोंने सत्ता हथियानेमें हिटलरकी सहायता की थी। कम्युनिस्टोंने सोचा था कि एकबार गणतान्त्रिक शक्तियोंका विनाश होने पर उन्हें नाजियोंसे खुलकर लड़नेका सुअवसर मिलेगा। यह भूल कम्युनिस्ट बार-बार करते रहे हैं। किन्तु जर्मनीमें नाजियोंकी सत्ता स्थापित हो गई। जर्मनीके कम्युनिस्टोंने उनके साथ संघर्ष शुरू किया। एक सालके सोच-विचारके बाद सोवियत् सरकार भी उनका समर्थन करने लगी। पूँजीवादी देशोंकी आँखें हिटलरकी ओरसे खुलनेमें कुछ देर थी।

महायुद्धको रोकनेके लिए रूसके विदेश मंत्री लिट्विनोवने फासिस्ट विरोधी मोरचेकी एक जोरदार अपील की। लीग आफ नेशन्जमें

उसने हिटलर, मुसोलिनी और जापानको बढ़ावा देनेवालोंकी तीव्र भर्त्सना की। शान्तिवादियों, पत्रकारों और साहित्यिक लोगोंमें लिट्-विनोवका यश खूब बढ़ा। किन्तु पूँजीवादी सरकारोंने अपनी अवसरवादी नीति नहीं बदली। आज यह कहना भूल है कि द्वितीय महायुद्ध केवल हिटलर आदिकी करतूत था। हिटलरको सहारा देनेवाले बहुतसे ऐसे लोग थे जिनको गणतन्त्रमें विश्वास था और और जो गणतन्त्रके लिए लड़नेकी क्षमता भी रखते थे। मुझे हिटलरका विरोध करना अधिक उचित लगा। रूसने युद्ध और फासिज्मके विरुद्ध विश्वव्यापी मोरचा तैयार करनेकी अपील की थी। मास्कोके कठोर समालोचकोंको भी रूस पर अपने कटाक्ष बन्द करने पड़े और कम्युनिस्टोंके साथ हाथ मिला कर वे सब उस संयुक्त मोरचेमें आ गए। जिनको रूससे गहरी चोट पहुंची थी, वे भी चुप हो गए। किन्तु हिटलरके उदयके दो-तीन साल बाद तक बहुत कम नए लोग कम्युनिस्ट पार्टीमें शामिल हुए। रूसमें जनताका जीवन-स्तर ऊपर उठने लगा। किन्तु कम्युनिस्टोंका नैतिक ह्रास हो रहा था और उनका आदर्शवाद मिटता जा रहा था। पुलिसके हमलोंसे आतंकित पार्टी स्टालिनके हाथकी कठपुतली बन चुकी थी। पार्टीकी नौकरशाही और सरकारकी नौकरशाही मिलकर एक हो गई। चारों ओर चापलूस और कमीने लोगोंका बोलबाला होने लगा। पार्टीके उच्चाधिकारी भी विचारके स्थानमें भयसे काम करते थे। जनकल्याणकी जगह घोर स्वार्थपरताने ले ली। जिसने कभी पार्टीके साथ मतभेद दिखाया था अथवा जिनपर कुछ समझदार होनेका शक हो जाता था, उन सबको रातमें पुलिस उठा ले जाने लगी। धीरे-धीरे रूसके समस्त

साहसी और बुद्धिमान लोग साइबेरियाके गुलाम-कैम्पोंमें जाकर "समाज-वाद" के निर्माणमें हाथ बँटाने लगे।

सरकारकी मशीनमें पुर्जे बनकर काम करनेवाले लोग साधारण कोटिके, वक्तके अनुसार चलनेवाले, चाटुकार, डरपोक और जीहुजूरी करके जीवन बितानेवाले हो गए। वे हो-हल्ला मचाकर पार्टी और सरकारके अनुयायी होनेका दम भरते थे। सरकारी प्रचारको दोहराना ही उनका काम था और इस भ्रष्ट-जीवनसे भागकर भोग-विलासके प्रति उनका आकर्षण बढ़ता जा रहा था। क्रेमलीनने फरमान निकाला कि समानताका दावा तो पूँजीवादी देशोंमें ही उचित है, सोवियत् रूसमें ऐसा कोई दावा नहीं चल सकता। इसलिए रूसमें अमीरों और गरीबोंके बीच असमानता बढ़ते-बढ़ते पूँजीपति देशोंको भी मात कर गई। मजदूरोंको मजदूरी घण्टोंके हिसाबसे नहीं, उत्पादनके हिसाबसे मिलती थी। ट्रेड यूनियन कागजी संस्थाएँ बन गईं और कारखानोंके डायरेक्टरोंको नौकरी देने, वेतन बढ़ाने और जवाब देनेका पूरा अधिकार मिल गया।

दिसम्बर १९३४ में एक नवयुवकने लेनिनग्राडके कम्युनिस्ट शासक कीरोवकी हत्या कर डाली। वह रूसमें चौथे नम्बरका बॉल्शेविक नेता था। पुलिसने तुरन्त ही जेलसे १०३ आदमियोंको निकाल कर गोलीसे उड़ा दिया। वे बन्दी कीरोवकी हत्याके पूर्व ही न जाने किस-किस अप-राधमें पकड़े हुए थे। इसके उपरान्त लेनिनके साथी जिनोवीव पर भी साजिशका दोष लगाकर उसे साइबेरिया भेज दिया गया। फिर लेनिन-ग्राडके पुलिस अधिकारियोंकी शामत आई। मेरा मन ग्लानिसे भर गया। मार्क्सने भविष्यवाणी की थी कि समाजवादी देशमें राज्यसत्ता धीरे-धीरे

तिरोहित हो जाएगी। किन्तु यहाँ तो उल्टा वह एक पैशाचिक रूप धरती जा रही थी। देशके बाहर सोवियत् सरकार फासिज्मके विरुद्ध एक गण-तन्त्रका मोरचा बनानेमें लगी थी। मुझे ऐसा लगा कि यह सम्भव नहीं है। जिस देशके भीतर गणतन्त्रका इस प्रकार गला घोंटा जाए वह भला बाहर गणतंत्रका रक्षक किस प्रकार हो सकता है ? इसीलिए मैंने न्यूयार्कके पत्र 'नेशन'में लिखा कि शान्तिके शत्रुओंको हरानेके लिए यह आवश्यक है कि सोवियत् यूनियनके भीतर भी गणतन्त्रका प्रसार हो। एक दिन मैंने अपने लेखका यह वाक्य उस्मान्सकीको पढ़ कर सुना दिया। वह विदेश-विभागके समाचार-पत्र सम्बन्धी सेक्सनका प्रमुख था। उसका सहकारी बोरिस मिरोनोव भी उपस्थित था। मिरोनोवने मेरी बातका समर्थन किया। उस्मान्सकीने किन्तु मेरी बातको ऊटपटांग कह कर उड़ा दिया। पीछे चल कर एक मुकदमेमें मिरोनोवको गोलीसे उड़ाया गया। उस्मा-न्सकी वाशिंगटनमें राजदूत बन कर आए, किन्तु हवाई जहाजकी एक रहस्यमय दुर्घटनामें उनकी मौत हो गई।

रूसमें गणतन्त्र विशेष प्रयोजनीय था। हिटलरके विरुद्ध मोरचा बनाना बहुत आसान हो जाता। यदि रूसमें गणतन्त्र होता तो इंगलैण्ड और फ्रांसमें चेम्बरलेन और दलेदियेको हराना सम्भव हो जाता, क्योंकि प्रायः सभी शान्तिप्रिय लोग उनके विरुद्ध खड़े हो जाते। किन्तु रूसको शान्तिके मोरचेमें देखकर कितनोंको तो विश्वास हो नहीं हुआ कि मोरचा ईमन्दार लोगोंका संगठन है। गणतन्त्र होनेसे रूसमें वे हत्याएँ नहीं होती जो कि स्टालिनने कीं और जिनके कारण रूस आर्थिक और युद्धकी दृष्टिसे दुर्बल बन गया। गणतंत्रवादी रूस कभी भी हिटलरके साथ

१९३९ वाली सन्धि नहीं करता। संक्षेपमें यह कहना होगा किगणतंत्रवादी रूस दूसरे महायुद्धको रोक सकता था, जब कि रूसमें सर्वग्रासी तानाशाही होनेके कारण वह महायुद्ध अवश्यम्भावी बन गया। स्टालिन सूझबूझ वाला आदमी था। यह नहीं कहा जा सकता कि ये सब बातें वह समझता नहीं था। रूसके भीतर हत्याकाण्डने जनताकी राजभक्तिको करारी चोटें पहुँचाई हैं, यह भी स्टालिन जानता था। क्रान्तिमें बॉल्शेविकोंने जो कीर्ति अर्जन की थी, वह प्रायः-प्रायः सारी वे खो चुके थे। शायद खानेके लिए रोटी मिलती थी, किन्तु रोटी खाकर ही मनुष्य नहीं जीता, उसे कुछ आशा, विश्वास और प्रेरणा भी चाहिए। सरकारको जनताके समर्थन की जरूरत थी। किन्तु जनताको कुचलकर सारे अधिकार पुलिस, फौज और नौकरशाहीको दे दिए गए। नई हुकूमतके ये ताबेदार उस हुकूमतको कायम रखनेके लिए सब कुछ करनेको तैयार थे। जनताको अपने साथ लेनेके अब दो रास्ते बचे थे। या तो जनताको आजादी दी जाती, या उनके राष्ट्रप्रेमको भड़काया जाता। स्टालिनने दूसरा रास्ता चुन लिया।

रूसका भविष्य नष्ट हो चुका था। उधरसे पीठ मोड़कर अतीतकी ओर जाना रूसके लिये अनिवार्य हो गया। क्रेमलीनने १९३४ में ही यह नीति अपनाना शुरू कर दी थी। जर्मनीमें नाजियोंने जर्मनीके अतीतकी गाथा गाकर क्रान्ति पैदा की थी और रूसके अतीतकी याद दिलाकर बॉल्शेविक क्रान्तिने आत्महत्या कर ली। रूसका अतीत महान है। ज़ारके विरुद्ध विद्रोह करनेवाले अनेक वीरोंके नाम रूसके इतिहास में मिलते हैं। किन्तु स्टालिनने इन वीरोंका गुणगान करनेकी इजाजत

नहीं दी। स्टालिनके नये देवता थे, रूसके पुराने ज़ार—ईवान, पीटर, कैथेरिन अथवा क्रान्ति विरोधी राजसामन्त और सेनानायक। रूसके पुराने, ज़ारभक्त सेनानायक सुवोरोवकी पूजा होने लगी। अभी तक लोगोंको सिखाया गया था कि मध्ययुगमें रूसके साधु-संन्यासी सब जनताके शत्रु थे। किन्तु अचानक कहा जाने लगा कि वे साधु-संन्यासी ही तो रूसके प्रातः स्मरणीय हैं। विश्वासकी धांधली तो फैलती ही। ऐसी ही धांधली उस दिन फैली थी, जब कि ट्राट्स्कीको क्रान्तिके नेतृत्व-पदसे उतारकर क्रान्ति-विरोधी फासिस्ट ठहराया गया था। देशके शहीदों और शत्रुओंको जाँचनेकी कोई कसौटी ही नहीं रह गई। यदि ट्राट्स्की फासिस्ट और ईवान क्रान्ति-दूत हो सकता है, तो कौन जाने कि आज के देवता कल दैत्य बन जाएँगे कि नहीं? विश्वासके भ्रष्ट होने पर मिथ्याचार और पाखण्डको बढ़ावा मिलने लगा। यदि सत्य और झूठ का निर्णय एकमात्र सरकारके हाथमें है, तो खैर इसीमें हो सकती है कि सिर झुकाकर सदा सरकारकी मान लेनी चाहिये। इस प्रकार जान बचनेकी सम्भावना तो रहती है।

सोवियत यूनियनमें अनेक जातियाँ है, जिनका अलग-अलग इतिहास है। जारका राज वस्तुतः रूसी जातिका ही राज था और अभी तक कम्युनिस्ट ज़ारशाहीको "जातियोंका बन्दीगृह" कहते आए थे। किन्तु अचानक उन्होंने इतिहास बदल डाला। ज़ारशाही बन्दीगृह न रहकर राष्ट्रकी रीढ़ कही जाने लगी। अल्पमत जातियोंका दमन होने लगा। सब जातियों पर रूसी भाषा लादी गई। ज़ारशाहीके पुराने प्रतीक जिनसे कम्युनिस्ट घृणा करते आए थे, अब एक-एक करके

लौटने लगे। सेनाके अफसरोंने पुराने बिल्ले लगाना शुरू कर दिया। रूसका राष्ट्रवाद अब चीत्कार करने लगा कि रूसी जाति ही संसारकी सर्वश्रेष्ठ जाति है। अभी तक सोवियत् यूनियनका राष्ट्रीय गान "इन्टर्नेशनल" रहा था। उसको हटाकर रूसका एक राष्ट्रीय गान अपनाया गया। सोवियत् यूनियनके धर्म-प्रतिष्ठान भी इसी राष्ट्रीयताका पोषण करनेमें लगाए गए। मार्शल पदवीधारी रूसके फौजी अफसर गौयरिंगसे होड़ लेने लगे। रूसमें साम्राज्यवादका उदय हुआ। कहा जाने लगा कि यूरोपमें बसनेवाली समस्त स्लाव जातियाँ एक हैं। यह प्रचार उतना ही भयानक था, जितना कि नाज़ियोंका जर्मन-एकता सम्बन्धी प्रचार। इस प्रचारकी आड़में हिटलरने आस्ट्रिया, चैकोस्लो-वाकिया तथा पोलैण्डकी हत्या करनेकी तैयारी की और स्लाव-एकताके नाम पर रूस समस्त बाल्कन अंचल पर प्रभुत्व जमानेके लिये कटिबद्ध हो गया।

१६३५ में अचानक काना-फूँसी होने लगी कि शीघ्र ही रूसका एक गणतन्त्रात्मक संविधान बनेगा। १६३६ में वह संविधान बनकर लागू हो गया। उसे स्टालिन संविधान कहते हैं। मेरे मनमें फिर आशा जागने लगी। मैं खोया हुआ विश्वास लौटाना चाहता था। रूससे मैंने अपनी भावनाएँ बाँधी थी। चाहता था कि रूस फिर बदलकर अपना आदर्शवादी रूप पा जाए। मैंने सोचा कि शायद स्टालिनने जनताकी मांगको मानकर उसे स्वाधीन करनेका फैसला किया है। जनताने क्रांति के बाद स्वाधीनता नहीं पाई थी। ज़ारके राज्यमें बॉल्शेविक राज्यसे कई गुनी स्वाधीनता थी। मैंने सोचा कि क्रान्तिके शत्रुओंको दबाने और

नष्ट करनेके लिये स्वाधीनताका अपहरण आवश्यक था। अब तो किन्तु सोवियत् यूनियनमें सारे शत्रु-वर्गोंका ध्वंस हो चुका था और अपनी राज्य-प्रणालीको खतरेमें डाले बिना ही स्टालिन जनताको स्वाधीनता दे सकता था। स्वाधीनता पाकर जनतामें नई चेतना जागेगी, नया उत्साह उमड़ेगा और सरकारके समस्त काम और उत्पादनकी वृद्धि अधिक सुविधासे हो सकेगी। मैं विश्वास करना चाहता था कि आदर्शवादसे जन्मी हुई तानाशाही स्वयं अपने आपको मिटा सकती है।

संविधानमें मुझे कुछ कमियाँ खटकीं। जनताको अधिकार तो खूब दिए गये थे, किन्तु उन अधिकारोंको सार्थक बनानेके लिये संविधान में कोई सुझाव नहीं था। संविधानकी रक्षाके लिये न्यायालयकी तजवीज भी मैंने नहीं देखी। वह संविधान प्रकाशित होनेसे पहिले मैंने कार्ल राडेकसे उस विषयमें बातचीत की। राडेक सोवियत् लेखक था, लेनिन का मित्र, पार्टीका विश्वासी सदस्य, स्टालिनका सहकारी और बातचीत में अत्यन्त बुद्धिशाली। वह सब प्रश्नोंका उत्तर दे सकता था। वह सवाल पूछा करता, किन्तु कोई दूसरा उत्तर दे, उसके पहिले स्वयं ही वह बता देता था कि उत्तर क्या है। मैंने राडेकसे कहा—"संविधानका सबसे प्रधान प्रश्न है खुफिया पुलिसका भविष्य।"

वह सन्नाटेमें आ गया। दो मिनट तक चुप रहकर वह अपने कमरेमें टहलता रहा। फिर बोला—

"तुम्हारी बात ठीक है।"

स्टालिन खुफिया पुलिससे आशंकित हो उठा था। यगोदाके अधिनायकत्वमें पुलिस रूसकी तानाशाही करनेके लिये प्रयत्नशील हो रही

थी। कुछ दिन बाद यगोदाको स्टालिनने मरवा डाला। किन्तु स्टालिनने पहिले पुलिसकी कमर तोड़नी शुरू कर दी। कुछ लोग सोचने लगे कि शायद पुलिसको दबाकर और सुधारकर स्टालिन रूसमें गणतन्त्रका समावेश कर दे। अन्यथा तो वह स्टालिन संविधान एक झूठे प्रचारका बहाना बनकर रह जाएगा, जिससे कि भोले-भाले रूसियों और विदेशियोंकी आँखोंमें धूल झोंकी जा सके। मैं जब आशा बाँध रहा था, तभी वज्रपात हुआ। मैंने देखा कि पुलिसका न तो दमन हुआ न सुधार। उसको एक नया रूप देकर जनताको कुचलनेका और भी शक्तिशाली साधन बना डाला गया। १९३६, १९३७ और १९३८ में होनेवाले मास्कोके प्रसिद्ध मुकदमोंकी तैयारी की जा रही थी। उनमें हजारों निर्दोष लोगोंके प्राण लिए गए। जनताको दिखानेके लिये एक मुट्ठी भर "अपराधियों" को कचहरीमें घसीटा गया। अधिकांश ने तो पुलिसके तहखानोंमें गोली खाकर प्राण उत्सर्ग किए। स्टालिन-संविधानके संगीतके बीचसे उठनेवाला उनका आर्तनाद मुझे स्पष्ट सुनाई देने लगा। सोवियत् यूनियन पर एक गहन अन्धकार छाने लगा और वहाँसे निकल भागनेके लिये मैं तैयार हो गया।

मुझे सोवियत् जनतासे प्यार था। वहां बने हुए नए कारखानों और खेतों पर मैंने आशा बांधी थी। मैंने सोचा था कि एक न एक दिन जनताको जीवनके साधन अधिक मात्रामें मिलने लगेंगे। नए स्कूल खुल रहे थे, चिकित्साकी नई व्यवस्थाएँ हो रही थीं। जब मैं पहिले-पहल रूसमें गया, तो क्रान्तिने जनताके लिये कुछ भी नहीं किया था। तो भी जनताको क्रान्ति पर विश्वास था। जनता त्याग और बलिदानकी

भावनासे प्रेरित होकर सब मुसीबतोंको साहसके साथ झेल रही थी। उनको कम्युनिज्ममें आस्था थी। कम्युनिज्मका अर्थ उस समय था विद्रोह और परिवर्तन। किन्तु अब, उन्नीस सालके बाद, सरकारी आतंकने समस्त आशा, विश्वास, विद्रोहकी भावना और साहस मिटाकर एक गन्दे समाजकी सृष्टिकर डाली थी। आदर्शवादका स्थान स्वार्थपरता ने ले लिया था। त्यागके स्थानमें व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा सब ओर मिलती थी। सरकारकी जीहुजूरी एवं नौकरशाहीकी मुरदापरस्ती ही सब ओर दीख पड़ती थी। नारे अब भी लगाए जाते थे। किन्तु उन नारोंमें स्वर होने पर भी प्राण नहीं रह गए थे। मेरे अन्तरमें उधेड़-बुन चल रही थी कि रूसमें ठहरूँ या न ठहरूँ। बहुतसे सरकारी कर्मचारी मेरे मित्र थे। किन्तु वे अब दिल खोलकर बात नहीं कर पाते थे। उन्होंने भी इशारोंसे मुझे समझा दिया कि मुझे चला जाना चाहिये। मास्कोमें रहकर पत्रकारका काम करनेमें मेरा जी नहीं लगता था। मैंने वहाँसे विदा लेनेका फैसला कर डाला।

इसी समय, जुलाई १९३६ में, स्पेनका गृहयुद्ध शुरू हो गया। स्पेन की सरकार उदारवादी थी और जनताने उसको चुना था। उसके विरुद्ध कुछ अमीर और जंगबाज लोगोंने साजिश की तथा विद्रोही जनरल फ्रैंकोंकी मदद करनेका फैसला किया। मै दो बार स्पेन जा चुका था। वहांके लोगोंने मेरा हृदय जीत लिया था। वे अशिक्षित और भूखे थे, तो भी उनमें एक संस्कृतिकी छाप मैंने देखी थी। उनमें एक आत्म-सम्मानकी गम्भीर भावना मैंने पाई थी। एक स्पेनिश स्त्रीने मुझे कहा था—"हम खड़े-खड़े मर भले ही जाएँ, किन्तु घुटने नहीं टिका सकते।"

किन्तु कई सौ सालसे उनको घुटने टिकाकर ही जीना पड़ रहा था। कुछ अमीर लोग उनका शोषण करते रहते थे और उन्हें आगेकी ओर देखनेकी इजाजत नहीं देते थे। फ्रैंच क्रान्तिकी हवाको उन सत्ताधीशों ने स्पेनमें नहीं घुसने दिया था। अब बीसवीं सदी स्पेन पर अपनी छाप डालना चाहती थी, तो उनको फ्रैंको मिल गया। हिटलर और मुसोलिनीने हथियार और आदमी भेजकर फ्रैंकोंकी सहायता की। स्पेन में फासिज्मके विरुद्ध खुली लड़ाई छिड़ गई। इस लड़ाईके निकट रहने के लोभसे मैंने रूस छोड़ दिया। रूसमें जनता पुलिसके तहखानोंमें मर रही थी। स्पेनमें जनताको मरनेके लिये कमसे कम रणभूमि तो मिली थी। स्पेनका वातावरण शोकमय था, किन्तु उस शोकमें एक आनकी बू थी।

स्पेनके गृहयुद्धने रूसके प्रति आंखें खोलनेसे मुझे रोक लिया। मेरा समस्त उद्यम सिमटकर उस ओर जा लगा। फिर भी मनके किसी कोनेमें रूसके सम्बन्धमें संशय किलबिलाते रहे। अब मुझे रूसको दूरसे देखनेका अवसर मिला था। फासिज्मके विरुद्ध स्पेनिश जनतन्त्रका संघर्ष बीसवीं सदीके पूर्वार्धमें राजनीतिक आदर्शवादकी पराकाष्ठा मानी जाती है। रूसके लिए बाहरके लोगोंकी सहानुभूति अधिकतर बौद्धिक ही थी। बॉल्शेविज्मको लेकर एक तेज़ वाद-विवाद चलता रहता था। किन्तु स्पेनिश जनतन्त्रके संकटने लोगोंके हृदय स्पर्श किए, उनके मर्मस्थलपर चोट मारी। जनतन्त्रके समर्थक स्पेनकी जनतासे प्यार करते थे और उस जनताके साथ-साथ उन्होंने भी गोली, बम और भुखमरी सहनेकी तैयारी की थी। स्पेनका संघर्ष लोगोंमें भावावेश उपजा रहा था। जनतन्त्रका

पक्ष निर्बल था, उस पक्षकी पराजय हो रही थी, इसलिए उस पक्षके लिए लोगों की परेशानी की सीमा नहीं रही। उन दिनोंमें जिन्होंने स्पेनके साथ रागात्मक सम्बन्ध जोड़ा था, वे ही जानते हैं कि गृहयुद्धके उतार चढ़ावसे किस प्रकार उनके हृदय उठते-बैठते थे।

मैं कई मास तक उस संघर्षको देखता रहा और उसके सम्बन्धमें लिखता रहा। सहसा मुझे लगा कि स्वाधीनता और विश्वशान्तिके लिए इस घोर संघर्षके प्रति मेरा उत्तरदायित्व कुछ और भी होना चाहिए। इसलिए मैं अन्तर्राष्ट्रीय दस्ते[१] में भरती हो गया। दस्तेमें मैं पहिला अमेरिकर न था। फ्रांसका कम्युनिस्ट नेता आन्द्रेमार्ती[२] दस्तेका कमाण्डर था। वह सत्ता लोलुप व्यक्ति था और सत्ताका अनुचित उपयोग करना उसकी आदत थी। उसके अत्याचार बढ़ते गए। उसके लिए दस्तेमें एक भी गैर-कम्युनिस्ट की उपस्थिति असह्य हो गई। मुझे हटाकर उसने अन्य क्षेत्रमें भेज दिया। जनतन्त्र की पराजय तक मैं कुछ न कुछ करता ही रहा। हम सबको विश्वास था कि स्पेनका गृहयुद्ध तेजीसे निकट आते हुए द्वितीय विश्वयुद्ध को छेड़छाड़ है। जर्मनी और इटलीमें भी यही मान्यता थी। वे स्पेनमें अपने हथियार और सिपाही बराबर भेज रहे थे और युरोपके एक महत्वशील अंचलमें एक मित्रशक्ति गढ़ना चाहते थे। इसके विपरीत इंगलैण्ड, फ्रांस और अमेरिका की आँखें खुलना तो दर-

---

१ जनतन्त्रकी मददके लिये देश-देशसे स्वयंसेवक आए थे। उन्हींको मिलाकर यह दस्ता बना था।

२ अभी कुछ दिन पूर्व मार्ती महाशयको फ्रान्सकी कम्युनिस्ट पार्टीने बाहर निकाल दिया है।

किनार, वे उल्टा अपने पांवपर कुठाराघात कर रहे थे। जो स्पेनिश जनतन्त्र फासिज्मके विरुद्ध महायुद्ध में इन देशोंका साथी होता, उसी की हत्या करवानेमें इन्होंने कोर-कसर नहीं रक्खी। न जाने यह पागल-पन क्योंकर सम्भव हुआ ?

केवल मैक्सिको और सोवियत् रूसने ही स्पेनिश गणतन्त्र की सहायताके लिए हथियार और आदमी भेजे। किन्तु अकेले मास्कोकी सहायतासे क्या हो सकता था। जनतन्त्रकी विजयके लिए यह आवश्यक था कि चेम्बरलेन और दलेदिए अपनी घातक नीति छोड़ देते। किन्तु उनकी सहानुभूति तो फ्रैंकोंके साथ थी और वे नाजी जर्मनीको संतुष्ट करने पर तुले थे। उनमें सुबुद्धि आनेसे शायद दूसरा महायुद्ध रुक जाता, अथवा कमसे कम उनको स्पेन जैसा एक मित्रराष्ट्र तो अपने पक्षमें मिल ही जाता। किन्तु वे तो और भी अन्धे हो गए। १६३८ में उन्होंने चैकोस्लोवाकियाकी हत्यामें भाग लिया। उनके लिए स्पेनके जनतन्त्रका साथ देना भला कब सम्भव था। जनतन्त्र दम तोड़ने लगा और रूसने भी अपना हाथ खींचना शुरू कर दिया।

स्पेनमें मेरी अनेक रूसियोंसे भेंट हुई। वे अनेक कामोंमें लगे हुए थे। उन जैसा पुरुषार्थी, बहादुर और सच्चा बन्धु कोई नहीं था। शायद जिस क्रान्तिकारी भावना की अब रूसमें जरूरत नहीं रह गई थी, उसी रुद्ध भावनाको उन्होंने स्पेनिश गृहयुद्धमें उंडेल दिया था। रूसमें अनेक लोग आशा लगाए बैठे थे कि शायद स्पेनके सम्पर्कसे रूसकी मरणशील क्रान्ति फिर जीवन पा जाए। किन्तु १६३७ और १६३८ के बीच मैं अपने परिवारसे मिलनेके लिए मास्को गया तो मैंने देखा कि रूसपर

फैलता हुआ अन्धकार और भी गाढ़ा होने लगा है। स्टालिन और उसके जल्लाद येझोवने पार्टीके प्रमुख नेताओं की सामूहिक हत्या कर डाली थी। उस हत्याकाण्डमें साधारण कम्युनिस्ट, सरकारी कर्मचारी इञ्जीनियर, फौजी अफसर, कलाकार, बुद्धिजीवी, विदेशी कम्युनिस्ट, श्रमिक नेता और सामूहिक खेतियोंके प्रबन्धकर्त्ता—सभीका रक्त बह रहा था। बॉल्शेविक राज्यतन्त्र अपने मस्तिष्कको खोखला करने पर तुला था। लोगोंने खुलकर बोलना छोड़ दिया था और केवल फुसफुसाने लगे थे। जेलमें जानेके भयसे सब काँप रहे थे। प्रत्येक व्यक्तिको अपने चारों ओर गुप्तचर ही गुप्तचर दीख पड़ते थे। यहाँ तक कि सरकार के घोर चापलूस भी इस भयसे मुक्त नहीं थे।

मैंने आँखें खोलकर सब देखा और सब समझ गया। किन्तु मैंने जबान नहीं खोली। मैं स्पेनमें लड़नेवाले रूसियोंके साथ रहना चाहता था और जनतन्त्रके पक्षमें लड़नेका इच्छुक था। स्पेनके कम्युनिस्टोंने जनतन्त्रके पक्षपर पूर्ण अधिकार जमा लिया था और रूसकी नुक्ताचीनी करनेवालेके लिए उस पक्षमें रहना असम्भव न था। इस लिए मैंने रूसके विषयमें किसीसे बात करना ठीक नहीं समझा। केवल जनतन्त्रके प्रधान मन्त्री नेगरीन और उसके दो चार विश्वस्त साथियोंको ही मैंने रूसका भयानक विवरण दिया और उनको स्पेनमें कम्युनिस्ट तानाशाहीके खतरेसे सचेत करना ठीक समझा।

रूसको घरेलू नीतिकी भर्त्सना करता हुआ भी मैं उसकी विदेश-नीतिका समर्थक था। गणतन्त्रवादी देशोंकी "तटस्थता" की नीति वास्तवमें फ्रैंको का समर्थन कर रही थी, जब कि रूस जनतन्त्रका साथ

दे रहा था। मुझे विश्वास तो था कि एक दिन रूस की विदेश नीति भी घृणित हो उठेगी। रूसी राष्ट्रवादसे दबकर बोल्शेविज्मकी जो अधो-गति हो चुकी थी, उसके कारण यह रूपान्तर होना अवश्यम्भावी था। फिर भी उस समय मास्को की नीतिने रूसपर खुल्लमखुल्ला आक्षेप करनेसे मुझे रोके रक्खा। किन्तु मेरे सब्रका प्याला भर चुका था। एक और बूँद गिरनेकी देर थी। और रूसने उसमें गागर उंडेल दी। मार्च १९३८ में फ्रांको की विजय हुई। उसके कुछ दिन पूर्व स्पेनकी जनतन्त्र सरकार-को मालूम हुआ कि स्पेनमें लड़नेवाले रूसियों पर रूस सरकारकी दया-दृष्टि नहीं है। एक-एक करके उनको रूस बुलाया जा रहा था और फिर उनका पता नहीं चलता था। आखिरकार स्पेन सरकारको विश्वास हो गया कि स्पेनमें काम करने वाले तमाम रूसी नागरिकोंको रूसमें लौटने पर या तो मार डाला जाता है या दूर गुलाम कैम्पोंमें भेजा जाता है। इस विश्वासको पुष्ट करनेके लिए तथ्योंकी कमी नहीं थी। जेनरल गोरिव जिन्होंने मैड्रिड की रक्षा की थी, मार डाले गए। जेनरल गिरोशिन जो स्पेनमें स्थित रूसी दस्तोंके चीफ आफ स्टाफ थे, गिरफ्तार कर लिए गए। स्टाशेव्स्की १९३७-३८ में रूसका स्पेन-स्थित व्यापारिक प्रतिनिधि था। वह एक पोलिश क्रान्तिकारी था और नेगरीनको आर्थिक मामलोंमें बहुत दिन तक परामर्श देता रहा था। उसको देश निकाला दिया गया। उसके साथी गेकिसकी हत्या की गयी। कैटालोनियामें रूसके प्रतिनिधिका नाम था एन्टोनोव-एवीसेन्को। १९१७ के विप्लवमें उसने जारके महल पर आक्रमण करके उसे हस्तगत किया था। उसे भी मार डाला गया। जेनरल उरिट्स्की उन जहाजों की देखरेख करते थे जो कि

रूससे स्पेन तक शस्त्रास्त्र ला रहे थे। माइकेल कोल्टसोव प्रावदाके संवाद-दाता बनकर स्पेनमें रहे थे और सीधे स्टालिन तथा वोरोशिलोव तक समाचार पहुँचाते थे। उन दोनोंको भी गोलीसे उड़ाया गया। ये तो मैंने चंद नाम गिनाए हैं। जो लोग स्पेनसे रूस लौटकर हमेशाके लिए गुम हो गए, उनकी लिस्ट बहुत लम्बी है। उन्होंने रूसके बाहरका संसार अपनी आँखोंसे देखा था। रूसमें जनताके बीच खुलेआम उनका मिलना-जुलना स्टालिनशाहीके लिए खतरनाक था। इसलिए उनको स्पेनके जनतन्त्रके लिए लड़नेका मोल अपने प्राण देकर चुकाना पड़ा। सो भी कुत्तोंकी मौत मरकर।

यह सब देख-सुनकर भी मैंने रूसके विरुद्ध अपनी आवाज नहीं उठाई। इस बातके लिए मेरी नुक्ताचीनी हुई है। शायद मुझे आवाज उठानी चाहिए थी। मुझे रूसके विषयमें कोई आशा नहीं रह गई थी। मैं समझ गया था कि वहाँ क्या हो रहा है और क्यों हो रहा है। मैं यह भी मानने लगा था कि रूसमें सुधार होनेका कोई रास्ता नहीं निकल सकता। फिर भी मैं चुप रहा। मनके किसी कोनेमें आशा छुपी थी कि शायद कुछ परिवर्तन आ ही जाए। २३ अगस्त १६३६ के दिन स्टालिन-हिटलर समझौतेने मेरी कमर तोड़ डाली। कहा जाता है कि स्टालिनने तैयारीके लिए समय लेनेकी कामनासे ही वह समझौता किया था। किन्तु यह सत्य नहीं माना जा सकता। स्टालिनने दूसरे देशोंको हथियानेके लिए ही वह समझौता किया था। अब तो वह गुप्त सन्धि-पत्र भी छप चुका है जिसके अनुसार स्टालिन और हिटलरने संसारका बँटवारा किया था। बस उसी दिनसे रूस साम्राज्यवादी देश बन गया।

आजके रूसके बीज उसी दिन बोए गए थे। उसी समझौतेसे फायदा उठाकर आज रूसने एक साम्राज्य खड़ा कर लिया है और संसारकी शांति पर राहू बनकर चढ़ दौड़ा है।

यदि कुछ दिन पूर्व कोई संकेत भी कर देता कि हिटलर और स्टालिन समझौता कर लेंगे तो कम्युनिस्ट और उनके समर्थक काटनेको दौड़ते। ऐसे समझौतेको वे कल्पनातीत मानते थे। और जब वह खबर अखबारोंमें छपी तो उन्होंने माननेसे इन्कार कर दिया। किन्तु रूससे पुख्ता खबर पाते ही वे उस समझौतेके कट्टर पक्षपाती बन गए। मास्को जो कुछ करे वही कम्युनिस्टोंके लिए उचित और उपादेय होता है। इसीलिए उन्होंने उस समझौतेका भी समर्थन किया। अन्यथा सभी दृष्टिकोणोंसे वह समझौता कुत्सित था और उसकी मार्जना नहीं हो सकती थी। उस समझौतेने रूसकी अन्तर्राष्ट्रीयताकी क़ब्र खोद कर रूसी साम्राज्यवादको जन्म दिया। स्टालिन जारशाहीके पदचिन्हों पर चलने लगा। रूसकी जनताके जीवनमें सुख जुटानेका ध्येय छोड़कर स्टालिनने दूसरे देशोंको हड़पना शुरू कर दिया। बस ताज पहननेकी कसर रह गई, वरना स्टालिन जारकी प्रतिमूर्ति बन चुका था। मजदूर और किसानोंकी कमर तोड़ कर, एक चापलूस नौकरशाही और पतित बुद्धिजीवी वर्गकी सहायतासे स्टालिनने एक साम्राज्यशाहीकी नींव डाली। आज रूसकी सरकार एक पूंजीवादी सरकार है, जो सैन्यबलके जोरसे दूसरे देशोंकी स्वाधीनता छीन लेती है। कम्युनिस्ट स्टालिनके कितने ही गुण गाएं, वास्तवमें तो वह एक दास-साम्राज्यका राजा है।

जनताका कल्याण चाहनेवाला और मानवताको शान्ति-पथ पर प्रगति

करते देखनेकी कामना करनेवाला कोई व्यक्ति भला क्योंकर रूसका समर्थन कर सकता है ? कई लोग कहेंगे कि रूसकी सुनानेसे क्या फायदा, हमारा गणतन्त्रवादी संसार क्या कम गला-सड़ा है। ऐसे लोगोंको मैं एक ही उत्तर दूंगा। इस गले-सड़े संसारमें कमसे-कम हम संघर्ष तो कर सकते हैं, सुधारकी आशा तो रख सकते हैं। किन्तु रूसके लोग तो स्टालिनके क्रूर शासनके विरुद्ध फुसफुसा भी नहीं सकते। मैं यह भी जानता हूँ कि किसी-किसीकी आँखें खुलनेमें देर लगती है। स्वयं मैं ही कितने दिन तक अन्धा बना रहा। इसलिए अन्धोंके लिए मेरे अन्तरमें सहानुभूति ही है। जानता हूं कि एक दिन वे भी जागेंगे। मैं तो हिटलर-स्टालिन समझौता देखकर ही विद्रोह कर बैठा। कुछ और थे जिनको रूस द्वारा फिनलैण्ड पर आक्रमण देखकर चोट लगी। ब्रिटेनके एक और प्रसिद्ध उदारवादी व्यक्ति फिनलैण्डसे भी नहीं हिले। उनको १६४० में नाजियों द्वारा नार्वेका आक्रमण देखकर तैश आया। उस समय तक वे कम्युनिस्टोंके स्वरमें-स्वर मिला कर हिटलरके विरुद्ध युद्धको अनुचित कहते थे और उस युद्धमें रोड़े अटकाना अपना धर्म मानते थे। नार्वेकी हत्या देखकर वे उठ बैठे और इंगलैण्डकी फौजमें भर्ती हो गए। वे सोचा करते थे कि रूस समाजवादी देश है, इसलिए कोई साम्राज्यवादी हरकत नहीं कर सकता। किन्तु वे यह भूल गए कि अपने-आपको क्रिश्चियन कहनेवाले अनेक देश भी तो पाप करनेसे बाज नहीं आते। किसी धर्मका दम भरनेसे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। असली बात तो करतूत पर निर्भर करती है।

दिल पर चोट पड़नेके लिए कुछ परिस्थितियाँ आवश्यक हैं। बहुत

कुछ व्यक्तिके स्वभाव पर भी निर्भर करता है। सभी लोग एक ही घटनासे एक-सी चोट नहीं खाते। कुछ लोग तो पूँजीवादके पाप देख-देख कर इतने क्रुद्ध गए हैं कि वे बोल्शेविकोंके पाप और दीवालिएपनकी ओर आँख उठाना ही नहीं चाहते। पाश्चात्य युरोपके पापोंका किस्सा सुना-सुनाकर वे मास्कोकी काली करतूतें ढाँक देना चाहते हैं। किन्तु मैं मानता हूँ कि पाप जहां भी हो हम उसे देखें और उसे अस्वीकार करें। यदि हमारा मन स्वस्थ हो, यदि हम आर्थिक बन्धनोंसे मुक्त हों और हमने अपनी बुद्धिको बेचा न हो, तो दोनों ओरके पापोंकी भर्त्सना करते हुए, जहाँ भी हम हों, वहीं पर सुधार द्वारा शांतिका पथ अपना सकते हैं। शान्तिके साथ सम्पन्नता भी बढ़ेगी। ऐसे नैतिक वातावरणमें कोई भी तानाशाही अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सकती। दम घुटनेके कारण तानाशाहीको तड़प-तड़प कर प्राण खोने ही होंगे। एक आखिरी सवाल उठता है। रूसके प्रति मोहसे जो मुक्त हो गए हैं, वे लोग कहाँ जाते हैं? चोट खाकर कोई हाथ-पर-हाथ धरे बैठा रहे, ऐसा मैं नहीं मानता। किन्तु दूसरी बार ऐसे लोगोंको तानाशाही जैसी गन्दी व्यवस्थाका समर्थक नहीं बनना चाहिए।

उन लोगोंमें जो किसी समय कम्युनिस्ट रहे हैं अथवा जिन्होंने मेरी तरह सोवियत् रूसका समर्थन किया है, कुछ तो ऐसे लोग हैं जिनको एकाधिपत्यमें गहरा विश्वास है। कोई चोट खाकर वे स्टालिनसे अलग हो सकते हैं। किन्तु जिस मनोभावकी प्रेरणासे वे सर्वप्रथम स्टालिनकी शरणमें गए थे, वह नहीं बदल पाता। वे बुद्धिसे कम्युनिज्मका परित्याग भले ही कर दें, किन्तु उनकी भावना वैसा ही कोई अन्ध-विश्वास खोजती

रहती है। ऐसे लोग भीतरसे कमजोर होते हैं। उनको हमेशा किसी ऐसे सिद्धान्तकी आवश्यता रहती है जिसमें भूलकी गुञ्जायश न हो और इसीलिए वे किसी-न-किसी अन्धविश्वासके इर्द-गिर्द मँडराते रहते हैं। वे किसी ऐसी शक्तिकी शरण लेना चाहते हैं जो बाहरसे देखनेमें बहुत मजबूत और तड़क-भड़कवाली हो। बहुत बार तो वे कम्युनिज्मको इसीलिए छोड़ बैठते हैं कि कम्युनिस्ट-नीति बार-बार बदलती रहती है और उनको एक दृढ़ विश्वास पानेका अवसर नहीं मिलता। वे किसी अन्य समग्रवादके चक्करमें पड़ कर कम्युनिज्मके विरुद्ध लड़ाई करते हैं। किन्तु उस लड़ाईमें वही पागलपन और हिंसा भरी होती है जो कि उन्होंने कम्युनिज्मका पक्षपात करते हुए दिखाई थी। कम्युनिज्मके ऐसे विरोधी वास्तवमें एक प्रकारके कम्युनिस्ट ही होते हैं।

फ्राँसके कम्युनिस्ट नेता दोरियो कामिन्टर्नकी कार्यकारिणीके सदस्य थे, पीछे चलकर वे फासिस्ट बन गए और कम्युनिज्मके विरोधमें उन्होंने घमासानकी लड़ाई लड़ी। लावाल जो फ्राँसके प्रधान मन्त्री बने एक समय कम्युनिस्ट थे। पीछे चलकर वे नाजियोंके साथ मिल गए और उनकी छत्रछायामें प्रतिक्रियाकी शक्तियाँ ही आगे बढ़ीं। इसी प्रकार द्वितीय महायुद्धके बाद इटली, रूमानिया, हंगरी, पोलैंड इत्यादिके हजारों फासिस्ट और नाजी लोगोंने कम्युनिस्ट पार्टीमें नाम लिखा कर अन्ध राष्ट्रीयता और समग्रवादका ढोल पीटना शुरू कर दिया है। समग्रवादी, चाहे वे किसी भी दलके हों, एक-दूसरेको खूब पहिचानते हैं और उनको रूप बदलते देर नहीं लगती।

स्टालिनकी प्रतिमूर्ति गांधी हैं। किन्तु जो एकाधिपत्यके पुजारी हैं,

उनको स्टालिनसे विदा लेकर भी गांधी अच्छा नहीं लगता। एक स्टालिनमें श्रद्धा खोकर वे दूसरे स्टालिनको ढूँढ़ लेते हैं। और जब दूसरे स्टालिनके भेड़िए जनताको पैरों तले कुचलते हैं तो वे उनका प्रतिरोध नहीं करते। वे स्वयं उस दमनमें साझीदार बन जाते हैं। तानाशाहीके विरुद्ध उनमें विद्रोह जागता है तो इसीलिए कि वे खुद तानाशाह बनना चाहते हैं। वे दूसरों पर जुल्म ढा सकें और उन्हें जुल्म सहना न पड़े, यही उनकी प्रधान प्रेरणा रहती है। इस प्रकारके लोग कम्युनिज्मसे चोट खाकर किसी दूसरी समग्रवादी सेनामें नाम लिखा लेते हैं। उनका हृदय परिवर्तन नहीं होता। वे एक पत्थरका देवता त्याग कर दूसरा पत्थर खोज लेते हैं। किन्तु पाषाण पूजासे विमुख नहीं हो पाते। इसलिए चोट खानेको ही मैं अन्तिम बात नहीं मानता। चोट खाकर जिसने हृदय मन्थन नहीं किया और जिसको तानाशाहीका पूर्ण परित्याग करके गणतन्त्र अपनानेकी प्रेरणा नहीं मिली, उसका चोट खाना ही मैं व्यर्थ समझता हूं।

तानाशाही कभी गणतन्त्र नहीं बन सकती और वहाँ स्वाधीनताकी आशा करना दुराशामात्र है। जिन दिनों मैं रूसका समर्थक था उन दिनों यह सीधी-सी बात मेरी समझमें नहीं आ सकी। मैं सोचता था कि कुछ दिनके लिए स्वाधीनताका दमन करके यदि आर्थिक प्रगति सम्भव हो सके तो पीछे चलकर स्वाधीनता और भी पूर्णतर रूपमें लौट आएगी। ऐसा तो हुआ नहीं। सोवियत् यूनियनमें स्वाधीनताका गला घोंटा गया, इसलिए वहाँ आर्थिक उन्नति भी नहीं हो सकी। आज भी वहाँ दुकानें खाली पड़ी हैं और जनताको भोजन-आच्छादनकी

सुविधा नहीं मिल रही। राजनीतिक स्वाधीनताके बिना आर्थिक स्वाधीनता अथवा सम्पन्नता सम्भव ही नहीं हो सकती। आज सोवियत् यूनियनमें करोड़ों लोग गुलाम-मजदूर कैम्पोंमें नरक यातना भोग रहे हैं। ऐसे देशके विषयमें आर्थिक अथवा राजनीतिक स्वाधीनताकी बात उठाना मुझे एक भयानक उपहास लगता है; और निरंकुश तानाशाहीके किसी प्रकारसे कमजोर पड़नेका कोई लक्षण हम नहीं देख पाते। एकबार दमनचक्र चलता है और जनताके कुछ वर्ग राज्यसे नफरत करने लगते हैं। दूसरी बार दमनचक्रका चलाना तानाशाहके लिए अनिवार्य हो जाता है। और इस प्रकार दमनचक्रका हमेशा चलाते रहना रूसके लिए एक साधारण धर्म बन गया है।

तानाशाहीमें जनताको कोई अक्षुण्ण अधिकार नहीं दिए जाते। इसलिए वहाँ कभी स्वाधीनता नहीं मिल सकती। तानाशाहके पास सब प्रकारकी सत्ता रहती है और व्यक्ति उसके हमलेसे अपने-आपको किसी हालतमें नहीं बचा सकता। तानाशाह जब चाहे व्यक्तिको कोई भी अधिकार दे सकता है, और जब चाहे तभी कोई भी अधिकार छीन सकता है। काम करनेका साधारण अधिकार ले लीजिए। आज व्यक्तिको अधिकार मिलता है कि वह किसी कल-कारखानेमें काम करे और भरण-पोषणके लिए उचित वेतन पाए। किन्तु कल ही यदि तानाशाह चाहे तो उसे गुलाम-मजदूर कैम्पमें भेजकर घोर परिश्रम करा सकता है और उसका भरपेट खाना बन्द कर सकता है। व्यक्तिको इस कुचक्रसे भाग निकलनेकी कोई राह नहीं मिल सकती। तानाशाह स्वयं कानून बनाता है, स्वयं कानून लागू करता है। और केवल उसीको

यह फैसला देनेका अधिकार होता है कि कब, किसने, कौनसा कानून तोड़ा और कब, किसको, क्या दण्ड मिलना चाहिए। रूसके लोग पुरुषार्थी हैं, प्रतिभाशाली हैं। वे इस दुर्दशाके पात्र नहीं। वे जानते हैं कि उनके साथ क्या अत्याचार हो रहा है और उनके मनमें भी आजादीकी आग सुलगती है। किन्तु उनको कोई किनारा नहीं सूझता। वे जानते नहीं कि क्या करें, कहाँ जाएँ। प्रतिवर्ष तानाशाहीका दमन उग्रतर होता जा रहा है और वे चुपचाप पिसनेके सिवाय कुछ भी नहीं कर सकते।

मैंने एक और भूल की थी। रूसके शासकोंका विश्वास है कि यदि ध्येय ठीक है तो वे कोई भी साधन जुटाकर उसकी प्राप्ति कर सकते हैं। मैं भी यह सिद्धान्त मान बैठा था। मैं समझ ही नहीं सका कि ऐसा घातक सिद्धान्त कभी भी एक उच्चतर मानव अथवा स्वच्छतर संसारकी सृष्टि नहीं कर सकता। यदि हमारे साधन ठीक नहीं तो हम कभी भी ध्येय पर नहीं पहुँच सकते। फिर चाहे समाज पूँजीवादी हो अथवा बॉल्शेविक। बुरे साधन सर्वत्र, सर्वदा बुरे परिणाम पर ही पहुंचा सकते हैं। आखिर रुपया कमाना, उच्चपद प्राप्त करना तथा सफल होना भी तो एक प्रकारके साधन हैं, जिनके द्वारा हम दूसरे साध्योंकी साधना करते हैं। व्यक्तिका अधिकतर जीवन तो केवल साधन जुटानेमें ही बीत जाता है। उन साधनोंकी पवित्रतामें भी एक आनन्द होता है। यदि एक अलौकिक भविष्यके लोभमें फँसकर अथवा किसी अन्य प्राप्तिकी आशासे हम उस आनन्दको भुला दें तो जीवन निस्सन्देह एक कुत्सित भार-वहनके सिवाय कुछ नहीं रह जाएगा।

तानाशाहीके साधन क्रूर होते हैं। इसलिए तानाशाहीकी नींवमें हमेशा आँसुओं और खूनका सागर लहराता रहता है। जनताके अभिशापका कूल-किनारा नहीं रह जाता। फिर तानाशाहीसे किसी प्रकारके आनन्द, स्वाधीनता अथवा शान्तिकी आशा करना हठधर्मी है। भय, बलात्कार, मिथ्या और संतापके बीच कभी भी एक उच्चतर मानवका उदय नहीं हो सकता। सोवियत् रूसका पक्षपात करके मैंने एक मंत्र सीखा है। आज मैं निश्चयके साथ कह सकता हूं कि जिसे भी जनता तथा शान्तिसे प्रेम है वह कभी किसी तानाशाहका पक्षपात नहीं कर सकता। हमारे पूंजीवादी समाजके विरुद्ध यही आक्षेप है कि वह स्वतन्त्रताका ढिंढोरा पीटकर भी वास्तवमें स्वतन्त्रताका गला घोंटता है। किन्तु ऐसे समाजसे चिढ़कर कोई तानाशाहीकी शरणमें जाए, यह मेरी समझमें नहीं आता। तानाशाही तो स्वतन्त्रताका आमूल उच्छेद कर डालती है। गणतन्त्रमें स्वतन्त्रताके ऊपर जो बन्धन हैं, उनको खोलने की चेष्टा क्यों न की जाए ताकि व्यक्तिगत, राजनीतिक और आर्थिक स्वाधीनतासे ओतप्रोत होकर गणतन्त्र अपना मस्तक ऊँचा कर सके। यह तभी संभव है जब कि हम गांधीवादी नीतिको अपना लें। गांधीवाद का अर्थ है सत्यको सर्वोच्च मानना और साधनों की पवित्रतापर अडिग रहना।

आज अपने पिछले जीवन पर आंख उठाकर देखता हूं तो रूसकी भक्तिका एक और कारण पाता हूं। आजके युगमें विज्ञानने मनुष्यकी सत्ताको बहुत बढ़ा दिया है और वह नहीं जानता कि उस सत्ताका क्या उपयोग करे। सत्ताका सही उपयोग आज मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या है। मैंने सोचा था कि सोवियत् व्यवस्थामें उस समस्याका एक

हल मिलता है। आज व्यक्तिके पास, वर्गके पास अथवा राष्ट्रके पास एक बड़ी शक्तिका संचय होता है और वे उसका अन्धाधुन्ध दुरुपयोग करते हैं। मुझसे यह नहीं देखा जाता। व्यक्तिगत सम्पत्तिका दुरुपयोग सदा मेरी आँखोंमें खटका है। जवानीमें मैंने हैनरी जार्ज की लिखी 'प्रगति एवं सत्ता' नामक पुस्तक पढ़ी थी। फिर रूजवेल्ट युगके उदार-वाद और जनवादका भी मुझपर गहरा असर पड़ा था। अमेरिकाके सारे गरीब लोग मेरी तरह ही एक किनारे की खोजमें रहे हैं। और मेरी तरह बहुतोंने जब देखा कि सोवियत् रूसने जमींदारों, पूँजीपतियों तथा व्यवसायी शोषणकारियोंको नष्ट कर डाला है तो हमारा उस ओर आकर्षित होना कोई अजीब बात नहीं थी। आज भी मैं सत्ताधीशोंके प्रति उतना ही संशयशील हूं। किन्तु आज मैं इतना जानता हूँ कि कम्युनिज्म उस समस्याका कोई हल नहीं, क्योंकि कम्युनिज्म तो स्वयं सत्ताके एकीकरणमें विश्वास रखता है। मैं जिस जिलेका रहनेवाला हूं उधर कोयले की खानें हैं। खानों की मालिक कम्पनियां ही वहाँपर बने मजदूरोंके घरों और दुकानोंकी असली मालिक हैं। वे मजदूरों पर बहुतसे अन्याय करती रहती हैं। और मेरे तन-बदनमें वह सब देखकर आग लग जाती है। फिर भी इतना मैं जानता हूं कि जो भी मजदूर चाहे वह ही उन खानोंको छोड़कर अन्यत्र जा सकता है और कम्पनियोंके अन्यायसे बच सकता है। किन्तु रूसमें कोई क्या करे, वहाँ तो सारी खानोंकी मालिक एक ही कम्पनी है। सारे काम-धन्धे, घर, दुकानें, स्कूल और समाचार-पत्र उसी एक कम्पनी की मिलकियत हैं और उसके अत्याचारसे बचकर भागनेका कोई रास्ता नहीं, कोई ठिकाना नहीं। रूसको तानाशाही

कहकर ही बस नहीं हो जाता। तानाशाही तो उसका एक पक्ष है। रूसके शासक केवल पुलिस और जेलके बलपर ही अपनी जनतापर अत्याचार नहीं करते। आज उनके हाथमें राष्ट्र की समस्त आर्थिक सत्ता भी है। ऐसी सम्पूर्ण सत्ता कि जिसके सामने हमारे बड़े-बड़ेसे पूँजीवादी भिखमंगेसे दीख पड़ते हैं। वह सत्ता व्यक्तिको चाहे जिस तरह पीस सकती और व्यक्तिके लिए त्राणका कोई मार्ग नहीं। रूसमें ऐसी कोई सत्ता ही नहीं जो सरकारने हस्तगत न की हो। तो फिर सरकारके विरुद्ध व्यक्ति और किस सत्ता की दुहाई दे ?

रूससे मैंने एक पाठ पढ़ा है। व्यक्तिके हाथसे सम्पत्ति छीनकर सरकारके हाथोंमें पहुँचा देनेसे ही स्वाधीनता अथवा सम्पन्नता की उपलब्धि नहीं हो सकती। यदि समस्त सम्पत्ति सरकारके हाथोंमें पड़ जाए और वह मध्यमवर्ग जो कि हमारी औद्योगिक सभ्यता की रीढ है, पिस जाए, तो कोई लाभ नहीं हो सकता। इसके विपरीत हानि होने की अधिक सम्भावना है। आज राजनैतिक और आर्थिक सत्ताओंके बीच एक संतुलन जमाने की आवश्यकता है, जिससे कि कोई भी पार्टी, वर्ग, सरकार, अथवा एकांगी स्वार्थोंका गुट सम्पूर्ण सत्ता न हथिया सके। एक सत्ताके विरुद्ध दूसरी सत्ता की दुहाई हम जब तक दे सकते हैं, तभी तक स्वाधीनता जीवित रह सकेगी। सोवियत् रूसमें आज ऐसा कोई संतुलन नहीं। सत्ताओं की ऐसी कोई टक्कर नहीं। यही तानाशाहीका मूलमन्त्र है। इसीलिये रूसकी सरकार घरमें और घरके बाहर मनमाना करती रहती है। वह मजदूरों, किसानों, कर्मचारियों, कम्युनिस्टों, कलाकारों इत्यादिके साथ चाहे जैसा व्यवहार कर सकती है और वे प्रतिकारका

मार्ग नहीं खोज पाते। इसलिए रूसमें सत्ताकी समस्याका हल खोजना मूर्खता होगी। वहाँ इस रोगकी पराकाष्ठा हो चुकी है।

तानाशाहीको तिलाञ्जलि देकर आनेवालेको ऐसे गणतन्त्रकी साधना करनी चाहिए जिसमें सत्ता इस प्रकार विभक्त हो कि कोई सरकार अथवा गुट उसे कभी भी पूर्णतया न हथिया सके। जनताका कोई भी सच्चा नेता सत्ताको जुटाने और सत्ताके उपयोगमें संयमसे काम लेगा। अन्यथा उसकी नेतागिरी थोथी है। कम्युनिज्मका परित्याग करनेवालेका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अपने विरोधियोंके लिए पूरी स्वाधीनता की मांग उठाए और उस मांग की पूर्तिके लिए आवश्यकता होनेपर आन्दोलन करे। विभिन्न धर्मों, जातियों और वर्गोंको अपनी-अपनी कहनेका बाधा-बन्धनहीन अधिकार मिलना ही चाहिए। संस्कृतिकी पूर्णताका यदि कोई निश्चित लक्षण है तो यह कि हम अपने घोरतर विरोधियोंके साथ भी शान्तिसे ही रह सकें। यदि ऐसा नहीं कर सकते तो या तो जीवन नीरस हो जाएगा या तानाशाही हम पर सवार हो जाएगी। कम्युनिज्मका परित्याग करनेवालोंको कम्युनिस्टों और रूसके समर्थकोंके साथ भी सहानुभूति दिखानी चाहिए। उनको भी एक दिन सत्यका साक्षात्कार होगा, एक दिन उनकी भी नींद खुलेगी। प्रत्येक कम्युनिस्टके अन्तरमें कम्युनिज्म-विरोधके अंकुर हैं और उनको पनपनेमें हमें सहायता पहुँचानी चाहिए।

चोट खाए हुए रूस-भक्तोंको राष्ट्रवादका परित्याग करके अन्तर्राष्ट्रीयताका समर्थन करना चाहिये। सिद्धान्ततः शायद राष्ट्रवाद और अन्तर्राष्ट्रीयतामें कोई विरोध नहीं हो। शायद किसी दिन व्यवहार

में भी वह विरोध मिट जाए। किन्तु आज तो यही देखा जाता है कि एक देशकी पूजा अन्तर्राष्ट्रीयताके लिये घातक है। चाहे हम एक राष्ट्रको पूंजीवादका गढ़ मानकर पूजें, चाहे समाजवादके नाम पर। एक राष्ट्रको समस्त गुणोंका आश्रय मानते ही हम पथभ्रष्ट होने लगते हैं। अन्तर्राष्ट्रीयताकी मौखिक स्तुति अर्थहीन है। यदि हमारे हृदयमें अपने देशके बड़े-बड़े योद्धाओं और बड़े-बड़े सफल लोगोंके प्रति अन्ध-भक्तिके सिवाय और कोई प्रेरणा नहीं है, तो हमें चुप रहना चाहिये। जातीयवादी, अपने देशको अलग-थलग माननेवाला, दूसरे देशोंसे घृणा करनेवाला, कभी भी अन्तर्राष्ट्रीयताकी सेवा नहीं कर सकता, चाहे संसार-व्यापी सरकारकी मांग करते-करते वह कितने ही पोथे क्यों न लिख मारे। आजके संसारमें किसी भी देशके लिये अकेले सफल होना अथवा उस सफलताका अकेले उपभोग करना असम्भव है। यदि हमारे पड़ौसीको सुख-शान्ति उपलब्ध नहीं है, तो हम भी सुखी नहीं रह सकते। चाहे वह पड़ौसी पासके मकानमें रहनेवाला व्यक्ति हो, चाहे दस हजार मील दूर एक दूसरा राष्ट्र।

जो तानाशाही और गणतन्त्रके दोषोंका दोहरा अस्वीकार करता है, उसे सबसे अधिक मनुष्यकी देखरेख करनी चाहिये। यदि मनुष्य मर जाता है, तो कुछ भी नहीं बच रहता। राष्ट्रीय स्वाधीनता, अन्तर्राष्ट्रीय प्रेमभाव, आर्थिक और वैज्ञानिक प्रगति, राष्ट्रीय सुरक्षा, पूँजीवादकी मर्यादा और समाजवादका उदय—अपने आपमें ये सब उद्देश्य अमूर्त हैं, निरर्थक हैं। जीते-जागते पुरुष, नारी और बच्चे ही उनको सार्थक बना सकते हैं। धरा पर कुछ भी ऐसा नहीं, जिसका अर्थ मनुष्यके ऊपर,

मनुष्यके परे हो। किसी धर्मके नशेमें भले ही हम मनुष्यको भुला दें, भले ही कहने लग कि मनुष्य कुछ दिन और इन्तजार कर सकता है अथवा मनुष्यको दुःख-दर्दकी परवाह नहीं होनी चाहिये। धर्मके नशेमें डूबकर हम बहुत बार कहने लगते हैं कि एक पीढ़ीको दूसरी पीढ़ीके सुखके लिये बलिदान कर देना चाहिये। किन्तु बलिदान करनेकी यह परम्परा एक ही पीढ़ी पर नहीं रुक पाती, वह तो दूसरी, तीसरी और चौथी पीढ़ी तक चलती रहती है। मैंने रूसको अपना देवता मानकर सोचा था कि मानवताकी सेवा कर रहा हूँ। किन्तु उस दिन मैंने हाड़मांसके मानवको भूला दिया था। उस अन्ध उपासनाके मोहसे मुक्त होकर ही मैंने हाड़-मांसके मानवको पहिचाना है।

स्टीफन स्पेण्डर

जीवनी : स्टीफनका जन्म १९०९ में हुआ था। इनके पिता इङ्गलैंडके प्रसिद्ध उदारवादी नेता एडवर्ड हैरल्ड स्पेण्डर थे। इनकी शिक्षा कुछ दिन स्वीट्जरलैण्डमें हुई। फिर ये यूनिवर्सिटी कालेज ऑक्सफोर्डके छात्र बने। वहां डे लूइस और ऑडनके सम्पर्कमें इन्होंने कविता लिखना शुरू कर दिया। राजनीतिमें दिलचस्पी रखनेके कारण इन्होंने १९३७ में एक पुस्तक—"उदारवादके आगे"—लिखी। उसके तुरन्त ही बाद ये कुछ दिनके लिये कम्युनिस्ट पार्टीमें भर्ती हो गए। १९४६ में ये विदेश विभागके राजनैतिक गुप्तचर बनकर युरोप गए और जर्मनीमें इन्होंने नाजीवादका प्रभाव वहाँके युवकों पर देखा। इनकी प्रथम कविताएँ १९३३ में छपीं। १९३५ में एक साहित्यिक समालोचना सम्बन्धी पुस्तक निकली। १९४६ में इन्होंने 'युरोपके साक्षी' नामक पुस्तक लिखी। अब ये अपनी कविताओंका संग्रह छपवानेमें लगे हैं।

मैं १६३६-३७ की सर्दियोंमें चन्द सप्ताहके लिए कम्युनिस्ट पार्टीका मेम्बर रह चुका हूँ। किन्तु पार्टीमें नाम लिखानेके तुरन्त बाद ही मेरी सदस्यता झूठी पड़ गई। मुझे कभी भी सैलकी मीटिंगमें नहीं बुलाया गया। उन दिनों मैं हैमरस्मिथमें रहता था और वहाँ पार्टीका सैल भी था। एक बार चन्दा देनेके बाद फिर कभी मुझसे चन्दा भी नहीं मांगा गया।

पार्टीमें भर्ती होनेके कुछ दिन पूर्व मेरी पुस्तक 'उदारवादके आगे' छपी थी। वामपन्थी पुस्तक मण्डलने उस पुस्तककी सराहना की थी। पुस्तकमें मैंने कहा था कि उदारवादियोंकी व्यक्ति-स्वाधीनता सम्बन्धी मान्यताएँ दोषयुक्त हैं। बहुत बार उदारवादी लिखते और बोलते हैं तो ऐसा जँचता है मानों वे व्यक्ति-स्वाधीनताके नाम पर एक व्यक्तिका दूसरे द्वारा शोषण देखनेके लिये भी तैयार हों। बहुत बार ऐसा लगता है कि सब व्यक्तियोंकी सामर्थ्य एक-सी मानकर ही वे स्वाधीनताकी बात कर रहे हैं। मैंने कहा कि उन्नीसवीं सदीमें जब कि ब्रिटेनका व्यापार बढ़ रहा था, तो व्यवसायी लोगोंमें स्वाधीन स्पर्द्धा और मजदूरों के जीवनमें सुधार एक साथ चल सकते थे। उस समय उदारवादियोंको कठिनाईका सामना नहीं होता था। किन्तु १६३० और उसके बादके सालोंमें जब कि व्यापारमें मन्दी आ गई, देशोंने आयात पर भारी कर लगाने शुरू कर दिए, बेकारी बढ़ गई और फासिस्टवादका उदय हुआ, तो उदारवादी एक ही साथ मजदूरों और मालिकोंके लिये पूर्ण

स्वाधीनताकी पुरानी बातें नहीं दोहरा सकते। उनकी मान्यताकी आधारभित्ति होनी चाहिये सामाजिक न्यायकी एक धारणा। उन्हें यह मानना चाहिये कि समाजको शोषण बन्द करनेका अधिकार है। मैंने अन्तमें कहा था कि उदारवादियोंको मजदूरोंका समर्थन करना चाहिये, फासिस्टोंसे लड़ना चाहिये और तब वे व्यक्ति स्वाधीनताकी बातें करें, तो अधिक उचित होगा। व्यक्ति स्वाधीनतासे मेरा मतलब था अपने मनकी बात कहनेकी आजादी और बिना मुकदमा चले जेलमें रक्खे जाने पर पाबन्दी। मैं चाहता थां कि व्यक्ति स्वाधीनताका समर्थन करनेवाले फासिस्टवादका विरोध अवश्य करें। उस संघर्षमें सत्ता हथियानेके लिये उदारवादियोंको हाथ-पांव मारने पड़ेंगे, अन्यथा वे पीछे पड़ जाएँगे। संक्षेपमें मेरा आशय था कि जिस स्वाधीनतासे सामाजिक न्यायका पोषण नहीं उसकी कानी-कौड़ी भी कीमत नहीं। इसलिये व्यक्ति स्वाधीनताकी बात करनेवालोंको पूँजीवादका पक्ष त्यागकर मजदूरों के पक्षमें आ जाना चाहिये।

मेरी पुस्तकको लेकर अनेक चर्चा हुई। बहुतसे पत्र मुझे मिले। उनमें एक पत्र हैरी पौलिट[1] का भी था। उन्होंने मुझे मिलनेके लिये बुलाया था। इसलिये एक दिन मैं चेयरिंग क्रॉस रोड पर कम्युनिस्ट पार्टीके गन्देसे दफ्तरमें जा हाजिर हुआ। मिस्टर पौलिट बड़े तपाकसे मिले। मेरा हाथ अपने हाथमें दबाकर वे बोले—"मुझे आपकी पुस्तक बहुत पसन्द आई। कम्युनिज्मके प्रति आपका जो दृष्टिकोण है, उससे मेरे अपने दृष्टिकोणका अन्तर मुझे खूब जँचा। आप बुद्धिवादके मार्गसे

---

1. इङ्गलैण्डकी कम्युनिस्ट पार्टीके सेक्रेट्री जनरल।

कम्युनिज्मकी ओर बढ़े हैं। किन्तु मैंने तो अपने ही घरमें पूंजीवादके अत्याचार देखकर कम्युनिज्मकी दीक्षा ली थी। मेरी माँ काम करनेके लिये एक कारखानेमें जाती थीं और जिन परिस्थितियोंमें उन्हें काम करना पड़ता था, उनके कारण उनकी अकाल मृत्यु हो गई।"

और भी अन्तर उन्होंने बताया। कहने लगे कि मेरी पुस्तक में घृणाका प्रदर्शन नहीं मिलता। उनका अपना विश्वास था कि पूँजीवादके प्रति घोर घृणा ही एक ऐसी प्रेरणा है, जिसके बल पर मजदूर आन्दोलन आगे बढ़ाया जा सकता है। उन्होंने यह भी कहा कि पुस्तकमें मैंने बुखारिन इत्यादिके मुकदमोंको लेकर जो मास्कोकी भर्त्सना की थी, वह अनुचित थी। मैंने कहा कि मुझे विश्वास नहीं होता कि वास्तवमें अभियुक्तोंने कोई अपराध किया था। उनका एकमात्र अपराध था स्टालिनका विरोध करना। पौलिट महाशयने जोरसे मेरा विरोध किया। कहने लगे कि उन लोगोंको अदालतमें खड़े होनेका अवसर मिला यह भी उनका सौभाग्य था। अन्यथा उनको वैसे ही मार देनेमें भी कोई अन्याय नहीं होता। फिर वे बोले कि मास्कोके मुकदमों पर हमारा मतभेद कोई बहुत बड़ी बात नहीं। मैं स्पेनके गृहयुद्धमें कम्युनिस्टोंका समर्थन करता था, यही उनके लिये काफी महत्त्व का प्रसंग था। उन्होंने कहा कि कुछ मतभेद रखते हुए भी मुझे स्पेनमें कम्युनिस्टोंका समर्थन करनेके लिए कम्युनिस्ट पार्टीमें भर्ती हो जाना चाहिए। पार्टीमें भरती होनेके साथ मुझे डेली वर्कर[1] में एक लेख लिखकर कम्युनिस्टोंपर टीका-टिप्पणी करनेकी छूट भी उन्होंने दे दी। मैंने

---

१. इंगलैण्डकी कम्युनिस्ट पार्टीका मुख्य पत्र।

उनकी बात मान ली। मुझे पार्टीका कार्ड मिल गया और मेरा लेख डेली वर्करमें छपा। किन्तु उत्तर-इंगलैण्ड और स्कॉटलैण्डके कम्युनिस्ट मेरा लेख पढ़कर आगबबूला हो गए और फिर किसीने मुझे याद नहीं दिलाया कि मैं कम्युनिस्ट पार्टीका मेम्बर बन चुका हूँ।

पौलिटने ठीक कहा था। मैं जिस प्रेरणासे कम्युनिस्ट पार्टीकी ओर गया था, वह एक मजदूरकी प्रेरणा नहीं हो सकती। कुछ घटनाओंका एक तांता था जिनके कारण मैं पार्टीमें नाम लिखानेके लिए तैयार हो गया। वह घटनाक्रम मेरे बचपनमें शुरु हुआ था। मैंने बाइबल पर विश्वास किया था। उस धर्म-पुस्तकमें कहा गया था कि भगवानकी आंखोंमें सभी मनुष्य एक समान हैं और चन्द लोगोंका अमीर होना बहुमतके साथ अन्याय है। मैं जनताके सम्पर्कसे समानताका समर्थक नहीं बना। घोर एकाकीपनके कारण ही वह भावना मुझमें जागी थी। रातको देर तक जाग-जागकर मैं मनुष्यकी बिडम्बना पर सोचा करता। मैं देखता था कि आदमीको बिना उसकी इच्छाके ही कुछ विशेष परिस्थितियोंमें जन्म लेना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति शेष संसारके प्रति आखिर तक एक अजनबी-सा रहकर ही जीवन बिताता है। उसको अपने-आपसे बाहर निकलनेका मार्ग नहीं सूझता। वह दूसरोंका प्यार चाहता है। और उसे सामना करना पड़ता है मौतका। चूंकि आदमी इतना एकाकी है, इसलिए कम-से-कम उसको पृथ्वी पर आकर जो कुछ यहाँ मिलता है, उसका समान भावसे उपयोग करनेकी छूट तो होनी ही चाहिए। मैं यह देख ही नहीं सकता था कि अगणित स्त्री-पुरुष संसारमें जन्म लेकर भी धरती पर स्वाधीन भावसे नहीं विचर सकते, मनमाना उपभोग

नहीं कर सकते, बल्कि तंग तारीक गलियोंमें रहकर अपना समस्त जीवन बिता देते हैं। मुझे ऐसा लगा कि किसी वर्ग अथवा व्यक्तिके विशेष अधिकारोंका समर्थन बुद्धि अथवा हृदय द्वारा नहीं किया जा सकता। आज भी मुझे वैसा ही लगता है।

उस दिन मैंने अपने विचारोंका क्रान्तिसे कोई सम्बन्ध नहीं जोड़ा था। मेरी प्रेरणा ईसाइयतसे सम्बन्ध रखती थी और मेरा जी चाहता था कि मेरे पास जो कुछ भी है वह सब त्याग कर भारत अथवा चीनके किसानकी नांई साधारण जीवन बिताने लगूँ। कम्युनिस्टोंको मैं उस समय आदमखोर भेड़िए समझता था जो कि संसारके समस्त नगरोंका विध्वंस करके खण्डहरोंमें विचरना चाहते हैं। मैंने अपने परिवार और मित्रोंसे ऐसा ही विश्वास पाया था। वे सब क्रान्तिको भूचालकी नांई एक घोर दुर्घटना मानते थे। सोशलिस्टोंको वे कम्युनिस्टोंसे थोड़ा कम खतरनाक समझते थे। इसलिए कुछ दृष्टिकोण तो मेरे लिए सर्वथा त्याज्य रहे, क्योंकि उन दृष्टिकोणोंसे सोचनेवालोंको मैं पागल अथवा पतित मानता था।

जब मैं सोलह वर्षका होकर लन्दनके एक स्कूलमें भरती हुआ तो मेरा सम्पर्क एक अध्यापक और दो-तीन छात्रोंसे हुआ जो कि सोशलिस्ट थे। अध्यापक प्रथम महायुद्धमें लड़ चुके थे, '१६१७ क्लब' के सदस्य थे और लेबर पार्टीका मुखपत्र डेली हेरल्ड पढ़ा करते। उनके मतानुसार सोशलिज्मका मतलब गुण्डागर्दी अथवा ऐसा कुछ नहीं था। सोशलिज्मका मतलब था कारखानोंका राष्ट्रीयकरण, ताकि उनमें पैदा होनेवाली वस्तुओं पर सारी जनताका समान भावसे अधिकार हो। सोशलिज्मका

मतलब था व्यक्तिगत लाभकी प्रेरणा पर टिके हुए पूंजीवादका विलोप। पूंजीवादके कारण देशोंमें परस्पर व्यापारिक तनातनी होती है और अन्तमें महायुद्ध छिड़ता है। सोशलिज्मका मतलब था कि देशमें उत्पन्न सारे बच्चोंको इन्सान बननेका समान अवसर प्राप्त हो। मैं चौंक उठा। सोशलिज्मकी ये सारी परिभाषाएं तो मेरी सामाजिक न्यायकी धारणाओंसे मेल खातीं थीं। स्कूलमें एक लड़केसे मेरी दोस्ती हो गई। उसका नाम था मौरिस कौर्नफोर्थ। वह बर्नार्डशॉके नाटक पढ़ता था और वैसे ही अच्छे नाटक स्वयं भी लिखता था। उसमें ऐसी बौद्धिक क्षमता थी कि सब बातोंको तर्क-शृङ्खलामें बाँध कर समझा सकता था। उसने मुझे ईसाइयतको छोड़ कर बुद्ध-धर्म अपनानेकी प्रेरणा दी। वह शाका-हारी था और छुट्टीके दिन तीस-चालिस मील तक पैदल घूमा करता। उसके बाल घुँघराले थे और घुँघराले बालोंवाला ही एक कुत्ता अपने साथ रखता था। वह स्कूलके वाद-विवादोंमें सबसे आगे था और ढेर-की-ढेर कविताएं, नाटक और पत्र लिखा करता।

कौर्नफोर्थ और मुझको सोशलिज्मके सिवाय और भी कई बातोंमें दिलचस्पी थी। आधुनिक चित्रकारी, नाटक, नृत्य और कवितामें हमें रुचि थी। सोशलिज्म तो वास्तवमें हमारी आधुनिकताकी एक अभिव्यक्ति मात्र थी। बर्नार्डशॉ जैसी दाढ़ी रखकर और लाल टाई बाँधकर हम अपनेको सोशलिस्ट कहते थे। ऑक्सफोर्डमें रहते हुए मैंने आसानीसे उन दिनोंकी प्रचलित धारणा मान ली कि कलाका राजनीतिसे कोई सम्बन्ध नहीं। वैसे मेरी तमाम धारणाएँ प्रगतिवादी हो गई थीं। किन्तु कला पर मैं रूढ़िवादी बना रहा। कलाको मैं कलाके लिए मानता

था। आज १९२८-३० का जमाना बहुत दूर-सा लगता है और हमारे जमानेकी अपेक्षा कुछ शान्तिपूर्ण भी। उन दिनों हम मनुष्य-समाजमें भरे अन्यायको भुला सकते थे, अथवा कम-से-कम कह सकते थे कि कविका उससे कोई सम्बन्ध नहीं। इस प्रकार मैं एक ऐसा सोशलिस्ट था जैसे कि बहुतसे कैथोलिक जो कभी गिरजेमें नहीं जाते। बस एक मतामत बनकर मन ठहर-सा जाता है। मनमें संशय भी उठते रहते हैं कि एक दिन वह मतामत मिथ्या मालूम पड़ने लगेगा और एक नए संघर्षका संकेत मिलेगा। किन्तु उस समय तो कम-से-कम आदमी जमकर बैठ ही जाता है।

ऑक्सफोर्डसे निकलकर मैं जर्मनी चला गया। वहाँ मनुष्यके सामाजिक संघर्षकी ओर मेरी आँखें गईं। अधिकतर जर्मन नवयुवक जो मुझे मिले दीन-हीन थे और मुश्किलसे भर पेट जुटा पाते थे। वर्गोंके बीचकी खाई पट चुकी थी। सभी वर्गोंमें एक-जैसी पराजयकी भावना थी और सभी युद्धके बाद आनेवाली मन्दीसे निकलनेका मार्ग खोज रहे थे। जर्मनीके अधिकांश संगीत, चित्रकला तथा साहित्यमें या तो क्रांतिका सन्देश मिलता था अथवा दीन-हीनोंके प्रति करुणाका भाव। मैं परदेशी था। मेरे मनमें पहिले-पहल तो जर्मन-जातिके लिए एक करुणाका भाव ही जागा। किन्तु गरीबोंके लिए क्रियात्मक रूपसे कुछ करनेकी प्रेरणा मुझे नहीं मिली। फुट-पाथोंपर टुकर-टुकर देखती आँखें देखकर मेरे आँसू ही छलक पाए। किन्तु जब वही रोग ब्रिटेन और अन्याय देशोंमें फैलने लगा, तब मेरी समझमें आया कि यह तो संसार-व्यापी पूँजीवादका रोग है। मुझे विश्वास हो गया कि बेकारीको मिटानेके लिए युद्धके

सिवाय एक ही और रास्ता है—एक अन्तर्राष्ट्रीय समाजका गठन जिसमें संसारका समस्त धनधान्य जनताके भरण-पोषणमें लग सके।

इन्हीं दिनों एक मित्र, जिनको ईशरवुड* ने अपनी आत्मकथामें चैमर्जका नाम दिया है, बर्लिन आए और ईशरवुडने मुझे उनसे मिलनेके लिए बुलाया। चैमर्जने उन्हीं दिनों कम्युनिस्ट पार्टीमें नाम लिखाया था। दस-पांच दिन रूसमें बिताकर लौटते समय वे बर्लिनमें रुके थे। वे नाटे, सांवले किन्तु सुन्दर व्यक्ति थे। उनकी दृष्टिमें एक अजीब दृढ़ता थी और बातें करते-करते वे सुननेवालेको ऐसे देखने लगते थे मानो अन्त-रतमकी जानकर मानेंगे। उनमें गम्भीरताके साथ-साथ एक हास्यकी पुट भी मैंने देखी। जब मैंने उनसे पूछा कि रूस कैसा देश है, तो कुछ मन्त्र-मुग्धसे वे अपने सामनेकी ओर देखते रहे, फिर बोले—"संसारमें सबसे बढ़ कर सुन्दर है वह देश।" किसी और युगमें वे शायद गाँवके गिरजेके पादरी होते जो गलियोंमें घूमते-घूमते वहाँ उगे हुए ऊबड़-खाबड़ फूलोंसे प्रेरणा प्राप्त करके झूमने लगते।

एक दिन मैं और चैमर्ज घूमने निकले। थोड़ी देर बाद ही कम्यु-निज्मके विषयमें बातें होने लगीं। चैमर्जका दृष्टिकोण सीधा-सादा था। वे मानते थे कि हमारे युगकी सब विडम्बनाओंकी जड़ है पूँजीवाद। बेकारी, युद्ध, यहाँ तक कि अभिसारके ईर्ष्या-द्वेष भी पूँजीवादके ही बच्चे कच्चे हैं। पूँजीवादके कारण ही लेखकोंको भूखे मरना पड़ता है, अथवा

* इङ्गलैण्डके एक विख्यात विचारक एवं कवि। भारतीय दर्शनसे विशेष प्रभावित।

वे मनके माफिक नहीं लिख पाते। इस महाव्याधिका इलाज उनकी रायमें था पूँजीवादका विनाश और कम्युनिज्मका उदय। व्यक्तिको अपने अन्तरमें उस संघर्षका स्वर सुनना चाहिए और समाजमें जो वर्ग-युद्ध छिड़ा है, उसमें मजदूरवर्गका साथ देना चाहिए। चैमर्ज यह मानते थे कि प्रस्तुत समाजमें भी अनेक लोग ऐसे हैं, जिनको बेकारी और युद्ध अच्छे नहीं लगते। ऐसे लोग इन दुर्गणोंको मिटानेके लिए अपने स्वार्थों का त्याग करनेकी क्षमता भी रखते हैं। किन्तु जब तक वे पूँजीवादी व्यवस्थाको मानते रहते हैं, उनके समस्त प्रयत्न बेकार जाते हैं। पूँजी-वादका मतलब है कि वर्ग और राष्ट्र आपसमें लड़ मरें। ऐसी व्यवस्थाको मानकर खाली उसके दोष दूर करनेकी चेष्टा करना, अपना मन सम-झानेकी बात है। जैसे कोई नदीके किनारे बैठकर कूएँ खोदे। असली कर्त्तव्य है इतिहासके प्रवाहसे जूझ जाना। नदीकी धाराको पलट कर अपनी ओर बहा देना। यह एक महान् काम है, जिसको पूर्ण करनेमें साधनोंकी नैतिकता अनैतिकताका सवाल नहीं उठाना चाहिए और न ही व्यक्तिके भाग्यकी चिन्ता करनी चाहिए। जो इतिहासके पक्षमें नहीं होते, इतिहास उनकी परवाह नहीं करता। "इतिहास" का अर्थ चैमर्ज यही लगाते थे कि मजदूर क्रान्ति हो जाए, मजदूर-तानाशाही और कम्यु-निज्मका उदय हो। यह सब होने पर, उनका खयाल था कि सब दुःख-दर्द दूर हो जाएँगे और एक स्वाधीन संसारकी स्थापना होगी। इस स्वप्नमें वे विश्वास रखते थे। उनके हृदयमें मानवताके लिए कल्याण कामना ही थी। किन्तु उन्होंने यह सोचकर नहीं देखा था कि इतिहास अपनी रवानीमें केवल क्रान्ति ही नहीं उपजाता, बल्कि अनेक अन्याय और

कुविचारको भी जन्म देता है। अथवा शायद वे अपनी भावनाके देशमें इन सब बातोंको कोई मायने नहीं देते थे। वे क्रांतिके लिए काम करनेका निश्चय कर चुके थे और अब मानो अपने कामके नतीजोंको दूरसे देख रहे थे। उनकी आँखें भविष्यपर ऐसी जमीं थीं कि वर्तमानमें क्या हो रहा है, इसकी उन्हें कोई परवाह ही नहीं होती थी। जैसे हमको आज दो सौ वर्ष पूर्व लिजबनके भूकम्पमें मरे लोगोंको लेकर दुख संताप नहीं उठाना पड़ता। वे मानो भविष्यमें रह रहे थे और वर्तमान तो उनके लिए क्रान्तिके पूर्वका एक पुरातन युगमात्र था। वे चाहते थे कि उनकी नाईं जो लोग इतिहासका साथ निभानेका बीड़ा उठा चुके हैं, उनको मनसा, वाचा, कर्मणा एक वर्गहीन समाजके लिए काम करना चाहिए। वे वर्तमानको सवथा भविष्यकी वेदी पर बलिदान कर डालनेके हकमें थे।

मुझे चैमर्जका सहवास बड़ा अजीब-सा लगा। मुझे हिंसा नापसन्द थी। मैं व्यक्ति-स्वाधीनताका हिमायती था। मैं क्रान्ति तो चाहता था, किन्तु मेरी इच्छा थी कि व्यक्ति-स्वाधीनताको नष्ट किए बिना ही एक न्यायपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय समाजकी स्थापना हो जाए। चैमर्जसे मैंने ये सब बातें कह डालीं। उसने अपना पाइप मुखसे बाहर निकाला और एक प्यारभरे, किन्तु कड़े स्वरमें बोला—"गांधी।" मैंने लीग आफ नेशन्सके बारेमें चर्चा चलाई। चैमर्जने मुझे समझाया कि लीगका थोथा आदर्शवाद युद्धको नहीं रोक सकेगा। लीग तो साम्राज्यवादी शक्तियोंका गुट है, जो यदि अपने साम्राज्यका और विस्तार नहीं, तो कमसे कम रक्षा अवश्य चाहते हैं। वे अपनी स्वार्थपूर्तिके लिये लीगको कठपुतलकी तरह नचाएंगे। लीगको नचानेवाले राष्ट्र स्वयं शस्त्रास्त्र

बनाने वाले पूँजीपतियोंके कठपुतले हैं। और सच्ची बात तो यह है कि लीग केवल रूसके विरुद्ध गढ़ा गया एक षड्यन्त्र मात्र है। जब तक पूंजीवादी व्यवस्था कायम है, तब तक निरस्त्रीकरणकी बातें करना बकवाद है।

उपन्यास साहित्यके बारेमें हमारी बातें हुईं। इस विषयमें मैंने चैमर्जको भी अन्य कम्युनिस्ट लेखकों जैसा पाया। उनके निकट अनुभूतिकी कोई कीमत नहीं थी। बस एक विप्लवका सिद्धान्त लेकर वे कागज काले करना सीखे थे। मार्क्सने कम्युनिस्ट घोषणा-पत्रमें कुछ ऐसे बूर्जुआ लोगोंकी ओर संकेत किया है, जो कि जान-बूझकर मजदूर वर्गका पक्ष लेते हैं। चैमर्ज मुझे उन्हींमेंके लगे। राजनीतिमें यह सम्भव है। रूसकी क्रान्तिके अधिकतर नेता इसी वर्गके थे। किन्तु साहित्यमें यह बात मानना कठिन है। जो बूर्जुआ वातावरणमें पला-पनपा है, वह साहित्यकार अपने जन्मजात संस्कारोंको नहीं मिटा सकता। वह भला अपने राजनीतिक विश्वासके बल पर एक मजदूरके संस्कार कहाँसे पा सकता है। यदि कोई इस दिशामें सफल भी हो जाए, तो उसे पता लगेगा कि कुछ मजदूरोंको छोड़कर क्रान्ति होनेके पूर्व प्रायः सभी मजदूर बूर्जुआ संस्कार वाले होते हैं। मजदूरोंको मजदूर-साहित्यमें कोई दिलचस्पी नहीं होती। इसके सिवाय पूँजीवादकी भर्त्सना करते हुए एक क्रान्तिकारी उपन्यास लिखना भी साहित्यमें एक समस्या उपस्थित कर देता है। राजनीतिमें क्रियाशील लोग प्रचारात्मक ढंगसे लिखना अधिक पसन्द करते हैं। किन्तु जिस साहित्यका निर्माण अनुभूतिकी प्रेरणासे होता है, उसमें एकांगी प्रचारका समावेश एक प्रकारसे

असम्भव-सा है। ऐसे साहित्यमें तो क्रान्तिकारो गुण भी रहेंगे और कुछ बुरी बातें भी। चैमर्जने ये सब कठिनाइयाँ स्वीकार कर लीं। कहने लगे—"मैं यह नहीं कहता कि जिस उपन्यासमें मजदूर नायक है और पूँजीपति खलनायक, वही एक उपादेय कम्युनिस्ट उपन्यास है। एक और भी अच्छा उपन्यास वह हो सकता है जिसमें कि पूँजीपति लोगोंको सहृदय और सज्जन व्यक्तियोंके रूपमें दिखाया गया हो और कम्युनिस्टोंको जले-भुने क्रूर लोगोंके रूपमें। किन्तु उस उपन्यासमें यह तो दिखाना ही चाहिये कि पूंजीपति लोग अच्छे होकर भी गलत रास्ते पर हैं और कम्युनिस्ट बुरे होकर भी सही रास्ते पर। हां, इतना भी मैं जानता हूँ कि पार्टी इस प्रकारके उपन्यासका स्वागत नहीं करेगी।" मैं समझ गया कि चैमर्ज बुद्धिवादी कम्युनिस्ट हैं। तभी वे अच्छे पूँजीपति और बुरे कम्युनिस्टकी बात मान गए। उनके लिये व्यक्ति और उसके गुण-धर्म तो सर्वथा गौण थे। वे मुख्य स्थान तो इतिहासके प्रवाहको देते थे। इतिहासमें रोड़े अटकाने वाले लोग अच्छे हों, तो भी नहीं बच सकते। इतिहासको आगे बढ़ानेवाले लोग बुरे हों, तो भी उनको रोका नहीं जा सकता। उनका इतिहास पर पूर्ण विश्वास था। कहते थे कि इतिहास भूल नहीं कर सकता, अन्ततः वह सब लोगोंको भला बनाकर ही सांस लेगा। उसी प्रकार जैसे कि पूँजीवादी व्यवस्था भले आदमियोंको भी क्रूर और जंगबाज़ बना डालती है। कम्युनिस्ट सिद्धान्तोंकी यह व्याख्या कम्युनिस्टोंमें आम तौर पर पसन्द नहीं कि जाती। हैरी पौलिट भी चैमर्जकी बात नहीं मानते थे।

इस सब चर्चाके कई वर्ष बाद १९३७ में मैंने चैमर्जसे मास्कोके नए मुकदमोंके सम्बन्धमें पूछताछ की। उन मुकदमोंमें बुखारिन और राडेक इत्यादिको दोषी ठहराया गया था। वे कुछ हकलाए, कुछ क्षण तक दूसरी ओर ताकते रहे, फिर पलकें झपकते हुए बोले—"ये सब मुकदमे इतने अधिक हो रहे हैं कि मैंने उनके विषयमें सोचना ही बन्द कर दिया है।" ऐसा लगा जैसे चैमर्जने अन्तिम फैसला कर डाला हो। चूंकि उन्होंने अपनी सारी आशा भविष्य पर लगाई थी, इसलिये वर्तमानकी नृशंसताको उन्होंने स्वीकार कर लिया। एक ओर तो वे मार्क्सवादी इतिहासका सिद्धान्त मानते थे और दूसरी ओर उनका मजदूर श्रेणी पर एक अन्ध-विश्वास था। मजदूर जैसे कोई चमत्कार जानते हों। कहते थे कि मजदूर ही मानवताका भविष्य हैं और उनको यदि अवसर मिला, तो वे एक नई सभ्यताका निर्माण अवश्य करेंगे। यदि उनको कभी कम्युनिज्मकी करतूतों पर संशय होता था, तो वे सोचने लगते थे कि मजदूर तानाशाहीकी क्रूरता द्वारा उपस्थितकी हुई परिस्थितियोंमें ही भावी मजदूर संसारका बीजारोपण हो सकता है। इन सब बातोंसे जान पड़ता था कि कम्युनिज्ममें उनका विश्वास तर्क पर नहीं, बल्कि भावना पर आश्रित है। मेरे विचारमें अधिकतर बुद्धिवादी कम्युनिस्ट भावनाके बल पर ही अपना विश्वास टिकाए रहते हैं। राजनीतिक क्रियाशीलता और आर्थिक शक्तियोंके संघर्षमें विश्वास करने वाला स्वयं अपने भीतर एक शक्तिका संचार पा लेता है। उसके निकट क्रान्तिकी क्रूरता पर आँसू बहाना निरर्थक भावुकता रह जाती है। मनमें उमड़ती करुणाको वह विप्लवसे भागनेकी प्रवृत्ति मानने लगता है। इस प्रकार मानवताके

चरम कल्याणमें विश्वास रखते हुए भी वह जेलमें सड़नेवाले अथवा गुलाम कैम्पोंमें तड़पनेवाले हजारों मनुष्योंकी ओरसे आँख मूद लेता है। वह कहने लगता है कि रूसमें कारागार और गुलाम कैम्प हों या नहीं, कमसे कम पूँजीवादी तो उस प्रकारका प्रचार करते रहना चाहते हैं। इस पूँजीवादी प्रचारका प्रत्युत्तर देनेके लिये क्रान्तिवादीको कहते रहना चाहिये कि रूसमें वह सब कुछ नहीं। इस प्रकार हाड़मांसके हजारों व्यक्तियोंकी यन्त्रणा एक बौद्धिक दलील बनकर रह जाती है। वह रटता रहता है कि आज संघर्ष करो, कल कम्युनिज्म आएगा और फिर सब इन्सान सर्वप्रकारेण मुक्त हो जाएँगे। कहने लगता है कि यदि ये कारागार और गुलाम कैम्प सचमुच ही रूसमें हों, तो भी घबरानेका कोई कारण नहीं। क्रान्ति जैसे भव्य कामके लिये बलिदान तो होने ही चाहिये। क्रान्तिमें मरने पिसने वालों पर आँसू बहाना निरी भावुकता है। बस ध्येय पर आँखें जमाए रहना चाहिये, मनके सारे संशय और क्लेश अपने आप मिट जाएँगे। संशय और मनोवेदनासे फायदा ही क्या है। फिजूलमें शक्तिका अपव्यय होता है। ये सब उदारवादकी भूलें हैं। इत्यादि-इत्यादि।

इस तर्क-पद्धतिका एक दूसरा पक्ष होता है। पूँजीवादकी काली करतूतोंको सोच-सोचकर कम्युनिज्मके हत्याकांडको झुठला देना। कहा जाता है कि माना कि कम्युनिज्म कुछ लोगों पर अत्याचार करता है, किन्तु पूँजीवादका अत्याचार तो और भी विशाल है। शान्तिके समय करोड़ों आदमी बेकार फिरते रहते हैं, महायुद्धमें करोड़ोंको प्राण देने पड़ते हैं। यह सब पूँजीवादका ही तो नतीजा है। पूँजीवादमें तो

अत्याचारका कुचक्र कभी बन्द ही नहीं होता, पिसने वालोंकी संख्या बढ़ती ही जाती है। कम्युनिज्मका वर्गहीन समाज स्थापित होने पर यह सब बन्द हो जाएगा। इसलिये कम्युनिज्मके अत्याचारोंकी बात करना बेईमानी है। अत्याचार यदि कुछ होते भी हैं, तो क्रान्तिके युगमें। जब क्रान्ति सफल हो जाएगी और मजदूर तानाशाही भी मिटने लगेगी, तो ये अत्याचार कम होकर खत्म हो जाएँगे। कम्युनिज्म में शोषित वर्ग ही नहीं रहता। अत्याचार कौन और किस पर करेगा? कम्युनिज्म सब लोगोंके सहयोगसे एक सुन्दर संसार बनाना चाहता है। इत्यादि-इत्यादि। शुरू-शुरूमें मैं भी अपने साथ इसी प्रकारके तर्क किया करता था। इस तर्कको मेरे अन्तरमें छिपी पाप भावना और भी मजबूत कर देती थी। मुझे ऐसा लगने लगता था कि कम्युनिज्मकी क्रूरताओंका प्रसंग उठाकर मानों मैं पूँजीवादके गुनाहोंकी मार्जना कर रहा हूँ।

चैमर्ज की बातोंका मेरे मनपर प्रभाव पड़ा। कई महीने तक मैं विचार करता रहा। मुझे ऐसा लगने लगा कि हमारे सभी कामोंको दो भागोंमें बाँटा जा सकता है—एक वे जो क्रान्तिको आगे बढ़ाते हैं और एक वे जो क्रान्तिको ठेस पहुँचाते हैं। किसी भी कामके पीछे करनेवालेके मनोभावका कोई मूल्य नहीं। कामका परिणाम क्या होता है यही सोचनेकी बात है। कोई सच्चे दिलसे ग़रीबोंके साथ हमदर्दी रखकर उनके बीच काम करे तो भी वह गरीबोंका दुश्मन हो सकता है। उसकी सेवाका यह परिणाम हो सकता है कि गरीब लोग पूंजी-वादी व्यवस्थासे सन्तुष्ट हो जाएं और विद्रोह करना छोड़ दें। वास्तवमें

गरीबोंकी सेवा करनेवाले पादरी और समाज-सुधारक पूंजीवादके दलाल हैं। इसी प्रकार एक देशकी सरकारको चलानेवाले सच्चे दिलसे समाजवादी हो सकते हैं। किन्तु उनमें यदि क्रान्तिके योग्य कठोरता दिखाने की क्षमता नहीं है, तो उनका समाजवाद थोथा है। किसी दिन भी उनको एक पूँजीवादी षड्यन्त्रका सामना करना पड़ सकता है। पूंजीवादी गुट उनके देशकी साखको पहिले विदेशोंमें मिटा कर देशके भीतर सरकारका दीवाला निकालने की कुचेष्टा कर सकता है। ऐसी अवस्थामें या तो समाजवादी सरकारको सब कुछ देखते हुए सिर झुकाना पड़ेगा अथवा क्रूरताका अवलम्बन करके भी पूँजीवादका विनाश करना होगा। बीचका कोई रास्ता ही नहीं। १९३० के बाद कई समाजवादी सरकारोंको ऐसी परिस्थितिका सामना करना पड़ा। प्रश्यामें ब्रौन और सैवरिंग और इंगलैण्डमें रेमजे मैक्डानल्डने क्रान्तिवादी मार्ग अपनानेसे इन्कार कर दिया। उन्होंने पूँजीवादसे समझौता करके हाथमें आई सत्ताका परित्याग कर दिया।

जिस प्रकार मैंने समाजवादियोंके बारेमें सोचा, उसी प्रकार अपनी भी आत्मसमीक्षा करना मैंने शुरू किया। मैंने अपने आपसे पूछा कि आखिर मैं चाहता क्या हूं। कहीं मैं मनबहलाव तो नहीं कर रहा हूँ? मेरी अवस्था अच्छी है। दूसरोंको अपने जैसा देखनेकी इच्छा एक मनबहलाव भी हो सकती हैं। क्या सचमुच मैं एक समाजवादी व्यवस्थाका स्वागत करनेके लिए तैयार हूं। उस व्यवस्थाको कायम करनेके लिये जो कठोर काम आवश्यक हैं, क्या वे मुझे पसन्द आएंगे? समाजवादी व्यवस्थाके पूर्णतया कायम होनेके पूर्व मध्यमकालमें पँजीवादसे भी अधिक

दुखदायक जो समाज बनेगा, क्या वह मुझे स्वीकृत होगा? और यदि समाजवादकी स्थापनाके लिए आवश्यक कठोरताका मैं पक्षपाती नहीं तो क्या मेरा समाजवाद एक भावुक स्वप्नशीलतासे अधिक कुछ हो सकता है? इन सब प्रश्नोंका उत्तर मैंने अपने-आपसे मांगा। मेरे मनने गवाही दी कि मैं मजदूरोंके साथ एक होना नहीं चाहता। मैं तो इतना ही चाहता हूँ कि औरोंको भी मेरी तरह जीवन-यापनका अवसर मिल जाए। पूँजीवादी व्यवस्थामें मुझे जो स्वाधीनता मिली थी वह खो देना मैं नहीं चाहता था। कल्पना और विचारका सारा जोर लगाकर मैंने अपना मन समझाया और यह कहनेको तैयार हो गया कि मेरी अपनी स्वाधीनता चली जाए तो भी मैं क्रांतिका समर्थन करूंगा। आखिर युद्ध छिड़ जाने पर भी तो मैं यह सब सहनेके लिए तैयार था। किन्तु इतना सब मान लेने पर भी मेरी उलझनें कम नहीं हुई। मेरे सामने कुछ ऐसे प्रश्न उपस्थित हो गए जिनका सामना करते हुए मुझे कंपकंपी आने लगी। उन प्रश्नोंसे मेरे किसी स्वार्थका लगाव नहीं था। मैं जानता था कि क्रान्तिके उपरान्त मजदूर-तानाशाहीके अन्तर्गत व्यक्ति-स्वाधीनता बहुत कुछ सीमित हो जाएगी। कुछ लोग यदि कुछ ऐसी बातें कहना चाहेंगे जो कि मजदूर-तानाशाहीको स्वीकृत न हों, तो क्या मैं उनका गला घोंटनेमें सहयोग दे सकूँगा? नहीं। मुझे भगवानमें विश्वास रखना राजनीतिक दृष्टिसे प्रतिक्रियात्मक नहीं लगता। इसी प्रकार प्रकृति एवं मनुष्यके सम्बन्धमें बहुतसी ऐसी बातें हैं, जो मार्क्सवादके दृष्टिकोणसे "वैज्ञानिक" नहीं। मार्क्सवाद विज्ञानके नाम पर बार-बार वैज्ञानिक पद्धतिका विरोध करता है। क्या मैं भी मार्क्सवादकी ये सब हठधर्मियाँ मान सकूँगा? नहीं।

सहृदय बुद्धिवादीके लिए कम्युनिज्म एक मानसिक द्वन्द्व उपस्थित करता है। वह द्वन्द्व समझना आवश्यक है। बहुत-सी और बातें इस प्रकार स्पष्ट हो जाएँगी। कम्युनिस्ट बहुतसे ऐसे काम करते हैं, जिनमें दूसरोंको बेईमानी दीख पड़ती है। किन्तु उन कामोंको करनेवाले कम्यु-निस्ट पूर्णतया ईमानदार हो सकते हैं। कम्युनिष्ट मानो एक ऐसे जहाज पर सवार रहते हैं जिसने कि दोहरे लंगर डाले हों। तूफानमें पड़कर अनेक जहाज शायद बह जाएँ। किन्तु कम्युनिस्टोंका जहाज टस-से-मस नहीं होता। उन दो लंगरोंमें एक होता है पूँजीवादकी काली करतूनोंका सतत् स्मरण और दूसरा होता है वर्गहीन समाज-व्यवस्थाकी अनवरत टेर। इसलिए उनके लिए वह तूफान उठता ही नहीं जो कि उदारवादी जहाजों पर चढ़े लोग अपने लिए खड़ा करते रहते हैं। कम्युनिस्ट कभी नहीं सोचते कि क्रान्तिके लिए जो रक्तपात आवश्यक है, उसको लेकर भी एक हृदय-मंथनका प्रसंग पैदा हो सकता है। अन्तरात्माके स्पन्दन बन्द हो जानेपर ही ऐसा हो सकता है। इस वजहसे कम्युनिस्टोंमें एक दृढ़ताका आभास होता है और बहुतसे गैर-कम्युनिस्ट कम्युनिस्टोंके सामने अपराधीसे बनकर अपनी भूलें स्वीकार करनेको दौड़ पड़ते हैं। अन्तरात्माको जीवित रखना तो घोर विडम्बना है। दुनिया भरके लिए हमको दुःख-दर्द सहना पड़ता है। कम्युनिस्टोंको यह सब बला नहीं होती। बस पार्टीकी शरण लेने भरसे उनका सारा उत्तरदायित्वका भार उनपर से उतर जाता है और कुछ भी कर-गुजरनेमें उनको सोचने-समझनेकी जरूरत नहीं पड़ती। इसीलिए कम्युनिस्ट इतनी आसानीसे और लोगोंका मज़ाक उड़ा सकता है। कहता रहता है कि जिसको हम

अन्तरात्मा कहकर आसमान पर उठाए हुए हैं, वह तो हमारे मनकी एक दुर्बलता मात्र है जो नए समाजके लिए संघर्षमें हमको कायर बनाती है। हम मारकाट और खूनखराबी नहीं देख सकते तो साफ-साफ कह देना चाहिए। हम अन्तरात्माकी दोहाई क्यों देते हैं? इत्यादि, इत्यादि।

कम्युनिस्टोंको पूर्ण विश्वास होता है कि पूँजीवादी सत्ताधीशोंको मिटाकर मजदूर वर्ग समाजका नव-निर्माण करेगा। और यह "मजदूर वर्ग" की बात भी उनकी अन्तरात्माको ठोस बनानेमें सहायक होती है। कम्युनिस्ट स्वयं चाहे बुद्धिकी स्वाधीनतामें विश्वास रखते हों, किन्तु मानते हैं कि करोड़ों मजदूर तो केवल शान्ति, रोटी, कपड़ा इत्यादि चाहते हैं। उनको बुद्धिकी स्वाधीनतासे क्या मतलब? और यदि चन्द हजार लोगोंकी बौद्धिक स्वाधीनता छीनकर लाखों करोड़ोंको रोटी, कपड़ा दिया जा सकता है तो वह स्वाधीनता छीन लेनी चाहिए। चीन अथवा भारतके मजदूरको क्या पड़ी कि पेरिसके चायखानोंमें बैठकर चन्द लोग कला, तत्त्व-दर्शन अथवा साहित्यकी चर्चा करते हैं या नहीं?

फिर भी जिन दिनों की बात मैं कह रहा हूं उन दिनों कम्युनिस्टोंने बुद्धिवादियों की अवहेलना करना बन्द कर दिया था। और बुद्धिवादी भी फासिज्मके विरोधमें कम्युनिज्म की ओर झुक रहे थे। जर्मनीमें हिटलरके उत्थानने बुद्धिवाद पर प्रचण्ड प्रहार किया था। कलाकार, विचारक, साहित्यकार सबकी स्वाधीनता खतरेमें थी। उसी समय मैंने रूसमें बने कुछ छाया-चित्र देखे और उनकी कलात्मक मौलिकता देख कर मैं वाह-वाह कह उठा। मैंने मौरिस हिन्डस तथा लूई फिशर

इत्यादि की पुस्तकें पढ़ीं, जिनमें बताया गया था कि रूसमें बहुत बड़ी सामाजिक प्रगति हुई है। उन्हीं दिनों मैंने रूसके विरुद्ध भी कुछ पढ़ा था, किन्तु पीछे चलकर मुझे पता चला कि वह सब मिथ्या प्रचार था। और स्टालिन संविधान लागू होने पर तो मुझे पूरी आशा होने लगी कि रूसमें वृहत्तर स्वाधीनताका युग आनेवाला है। आज यह सब लिखना मुझे एक क्रूर मज़ाक-सा लग रहा है, क्योंकि नाजियोंकी तरह ही आज कम्युनिस्ट भी बौद्धिक स्वाधीनताके कट्टर शत्रु बन गए हैं। किन्तु उस समय यह सब स्पष्ट नहीं हो पाया था। कीरोवकी हत्या होनेके पूर्व ऐसा लगता था कि रूसमें गणतन्त्र स्थापित हो रहा है। यद्यपि रूसमें जाने-वालोंको कुछ चुने हुए स्थान ही दिखाए जाते थे, तो भी आजकी तरह पूर्णतया रूसको बाहरके संसारसे छुपाया नहीं गया था। कुछ प्रतिक्रिया-वादी लोग रूस विरोधी प्रचार करते रहते थे। उन्होंने भी रूसकी मदद की। एक ऐसा वातावरण बन गया था जिसमें कि रूसके विरुद्ध कुछ भी सुननेको लोग तैयार नहीं थे।

फासिज्मसे त्रस्त बुद्धिवादी और यहूदी इत्यादि किसी मित्र-पक्षकी खोजमें थे। गणतन्त्रोंके नेताओंसे उनको कोई सहानुभूति नहीं मिली। और वे कम्युनिज्मकी ओर झुक गए। अपने मनकी तराजू पर उन्होंने एक ओर फासिज्म, बेकारी और महायुद्ध इत्यादिको रक्खा और दूसरी ओर कम्युनिज्मके दोषोंको। उन्हें कम्युनिज्मका पाँसा भारी लगा। इ० एम० फोर्स्टर जैसे उदारवादी व्यक्तिने भी कह डाला कि संसारकी समस्त आशा विश्वासका केन्द्र कम्युनिज्म है। साथ ही उन्होंने यह भी कहा था कि वे स्वयं कम्युनिस्ट नहीं हैं। किन्तु उधर किसीने ध्यान

नहीं दिया। और साधन और साध्यकी तत्त्वचर्चाको लेकर एक बहुत भारी वाद-विवाद खड़ा हो गया। मैं यह नहीं कहूंगा कि उस विवादमें भाग लेनेवाले व्यक्ति जागरूक होकर उस विवादमें भाग ले रहे थे। अधिकतर लोग तो एक नष्ट-भ्रष्ट होती सभ्यतामें कहीं सिर छुपानेका स्थान ढूँढ़ रहे थे। १९३० की मन्दीने उनकी समाज-व्यवस्थाको जड़-मूलसे हिला दिया था। हिटलरका उदय देखकर उनको यह विश्वास भी खोना पड़ा था कि उनके संसारमें सहनशीलताका बोलबाला है। यहूदियों पर किए गए अत्याचार देखकर वे करुणासे द्रवित हो गए थे। और कम्युनिज्मके सिवाय उन्हें कोई किनारा ही नहीं सूझा।

स्पेनके गृहयुद्धने इस वाद-विवादको पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया। स्पेनके निवासी शायद उस गृहयुद्धको उस रूपमें न देख पाए हों जिस रूपमें कि हम बाहरवाले देख रहे थे। उनको शायद दोनों पक्षों पर लड़नेवाले विदेशियोंसे घोर घृणा हुई हो। किन्तु बाहरवालोंके लिए तो वह गृहयुद्ध फासिज्म और फासिज्म-विरोधका मोर्चा बन गया। मानों युरोपकी आत्माके लिए संघर्ष हो रहा हो। जनता द्वारा चुनी हुई सरकारके विरुद्ध स्पेनके कुछ फौजी अफसरोंने विद्रोह किया था। उस विद्रोहमें सफल होनेके लिए उन्होंने विदेशियोंकी सहायता ली। वह सहायता पहुँचते ही सरकारका पक्ष गणतन्त्रका पक्ष कहलाने लगा और विद्रोहियोंका पक्ष फासिज्मका पक्ष बन गया। इटली, जर्मनी, रूस और अन्तर्राष्ट्रीय स्वयंसेवक स्पेनकी धरती पर वह युद्ध लड़ते हुए ऐसा ही सोच रहे थे। उनको यह जाननेकी जरूरत ही महसूस नहीं हुई कि स्पेनवाले उस युद्धको क्या समझते हैं। इस प्रकार यह आदर्शवादियों

और अनाड़ियोंका युद्ध बन गया। कवि लोग लड़ने जा पहुंचे। इङ्गलैण्डके ही पांच श्रेष्ठ कवियोंने इस युद्धमें अपने प्राण दे डाले। और देशोंके भी कुछ कवि मरे। बुद्धिवादी इसीलिए इस युद्ध पर लट्टू हो गए। युद्धके प्रथम दिनोंमें ही मैं भी जिब्राल्टर, ओरैन और टाँगियर गया था। वहाँ लोक सभाओंमें प्रजातन्त्रके लिए जनताका जोश देखकर मैं अवाक् रह गया। टांगियरमें मैंने जो सभा देखी वैसी आज तक फिर नहीं देख पाया हूं। सभामें कुछ अन्धे, लंगड़े और लूले भी थी। वे जिस तल्लीनतासे प्रजातन्त्रके समर्थकोंके भाषण सुन रहे थे, वह देखकर मुझे बाइबलके उन लोगोंकी याद आई जो कि ईसामसीहकी वाणी सुननेके लिए एकत्र हुआ करते थे।

सभी स्थानों पर मेरी कम्युनिस्टोंसे भेंट हुई। उनका आत्मविश्वास और भद्रता देखकर मैं बड़ा प्रभावित हुआ। औरैनमें मैंने बहुत शोर-शराबा, गन्दगी और पियक्कड़ देखे। उनके बीच रहते हुए वे कम्युनिस्ट मानो किसी अन्य संसारके निवासी थे। साथ-ही-साथ मैं गणतन्त्रवादी देशोंसे आए हुए कर्मचारियों तथा व्यापारियोंसे भी मिला। मुझे वे पसन्द नहीं आए। प्रायः सभी फ्रैंकोके समर्थक थे। मैं कई उदाहरण दे सकता हूं। किन्तु सबसे अच्छा उदाहरण टाँगियरका रहेगा। टाँगियरमें एक अन्तर्राष्ट्रीय सरकार थी, जिसे ब्रिटेन, इटली, स्पेन, बेल्जियम तथा फ्राँसके प्रतिनिधि मिल कर चलाते थे। उन सबने स्पेनिश प्रजातन्त्रके प्रतिनिधि प्रीतो दैलरियोका बहिष्कार-सा कर रक्खा था। मैंने जब एक टैक्सीवालेसे स्पेनिश दूतावास तक ले जानेके लिए कहा तो वह मुझे फ्रैंकोके हैड क्वार्टर पर ले गया। उसीको वह स्पेनिश दूतावास

समझता था। ब्रिटिश दूतावासमें एक पार्टीमें गया था। वहाँ पर आए अतिथि विस्मय दिखा-दिखा कर चर्चा कर रहे थे कि प्रीतो जैसे भलेमानसने भला प्रजातन्त्रका पक्ष क्यों अपनाया। जैसे प्रीतो कानूनन बनी हुई सरकारका प्रतिनिधि न होकर किसी डाकुओंके दलका सरदार हो। जब मैं प्रीतोंसे मिलने गया तो देखा कि वह अपने कर्मचारियोंके साथ एकाकी जीवन बिता रहा है। कहनेको वह टांगियरकी सरकारका सदस्य था, किन्तु उसे कोई नहीं पूछता था।

जिब्राल्टरमें मेरी एक पुराने ब्रिटिश अफसरसे बात हुई। उसने स्पष्ट रूपसे परिस्थितिका विश्लेषण कर डाला। कहने लगा—"ब्रिटेनमें लोग नहीं समझ पाते कि स्पेनके प्रजातन्त्रवादी हमारी किस्मके गणतन्त्रवादी नहीं हैं। आप अगर स्पेनकी गलियोंमें जाकर दस मजदूरोंसे पूछ कर देखें कि वे किसके साथ हैं तो वे उत्तर देंगे कि प्रजातन्त्रके साथ। ब्रिटेन जैसा गणतन्त्रवाद वह नहीं है। वहाँ तो नब्बे प्रतिशत लोग उसका समर्थन करते हैं।" अफसरकी बातमें व्यंग था। उसने यह सब बातें प्रजातन्त्रके विरुद्ध समझ कर कही थीं। वास्तवमें जिब्रराल्टरमें रहनेवाले अंग्रेजोंका स्पेनकी जनतासे कोई सम्पर्क ही नहीं था। वे तो स्पेनके अमीर-उमराओंको ही जानते थे। इन्हीं लोगोंसे उन्होंने सुन रक्खा था कि स्पेनके प्रजातन्त्रवादियोंने क्या-क्या कुकर्म किए हैं। यदि उनको फ्रैंकोंके कुकर्मोंका कच्चा चिट्ठा सुनाया जाता तो वे कहते थे कि उन्होंने वह सब नहीं सुना। एकबार फिरसे मैं स्पेनके दौरे पर गया और बारसेलोना, मैड्रिड तथा वैलेन्सियामें ठहरा। घर लौटकर मैंने स्पेनके प्रजातन्त्रके पक्षमें आन्दोलनमें भाग लिया। मैंने वक्तृताएँ दीं

और अनेक कमिटियोंमें काम किया। एकबार तो कुछ और लेखकोंके साथ मैं एक जलूसमें भी शामिल हुआ। हमारे हाथोंमें झण्डे थे, जिन पर स्पेनके जनतन्त्रके नारे लिखे हुए थे। इन दिनों "जनवादी मोरचे" का बोलबाला था। उस आन्दोलनके कारण उदारवादकी एक धारा उठी थी और केवल कम्युनिस्ट पार्टीने ही उस धाराको अपनाया था। रेमजे मैकडॉनल्डने विलायतकी लेबर पार्टीके साथ जो विश्वासघात किया था, उसकी चोटसे लेबर पार्टी सम्भल नहीं पाई थी। इसलिए सारा मैदान कम्युनिस्ट पार्टीके लिए खाली पड़ा था।

बुद्धिवादियों और लेखकोंमें विक्टर गौलाँक्स, जान स्ट्रेची, जार्ज ऑरवेल, आर्थर कोयस्लर, ई० एम० फोर्स्टर इत्यादि तो पूर्णतया कम्युनिस्टोंके साथ रहकर फासिज्मका विनाश करने तथा स्वाधीनता और सामाजिक न्यायकी स्थापना करनेके हकमें थे। किन्तु अनेक ऐसे लोग थे जो कम्युनिस्ट न होते हुए भी स्पेनिश प्रजातन्त्रका समर्थन करते थे, क्योंकि उधर वे गणतन्त्रकी शक्तियाँ देखते थे। यदि कम्युनिस्ट "जनवादी मोर्चे" में उसी ईमानदारीसे आए होते जैसे कि समाजवादी और उदारवादी लोग तो एक नयी क्रान्ति सम्भव थी, जिसमें १८४८ की क्रान्तियों जैसा स्पन्दन, श्रद्धा और विश्वास होता। किन्तु कम्युनिस्ट तो मोर्चेमें इसीलिये शामिल हुए थे कि भीतरसे वह सबका नियन्त्रण कर सकें। इस प्रकार जो पार्टी एकताके लिये सबसे ज्यादा हो-हल्ला कर रही थी, उसीने वास्तवमें एकताका मूलोच्छेदन किया। १९३० की मन्दी, वाइमर प्रजातन्त्रका विनाश, वीयनाके समाजवादका पतन— ये सब मैंने अपनी आँखोंसे देखे थे और मुझे सिद्धान्तरूपेण कम्युनिज्म

में विश्वास हो गया था। अपनी कविता और लेखोंमें मैंने कम्युनिज्मकी अनिवार्यताका दावा किया था और पौलिटके कहनेसे मैं कुछ दिनके लिये कम्युनिस्ट पार्टीमें भी भर्ती हो गया था। फिर भी स्पेनके कारण ही मुझे दूसरे लोगोंके साथ राजनीतिक काम करनेका अनुभव हुआ। जिस कारणसे मैं पार्टीमें शामिल हुआ था, वही कारण मुझे बाहर भी निकाल लाया। मैंने शीघ्र ही यह देखा कि यद्यपि संगठन और नेतृत्व कम्युनिस्टोंके हाथमें हैं, तो भी जनताके जिस जोशके बल पर स्पेनका संघर्ष चल रहा है, उसके पीछे उदारवादकी ही प्रेरणा है। कम्युनिस्ट भी यह जानते थे कि स्पेनके प्रजातन्त्रको जो समर्थन मिल रहा है, वह इसीलिये कि प्रजातन्त्र कम्युनिस्ट नहीं है। वे उच्च स्वरसे कहते थे कि प्रजातन्त्र कम्युनिस्ट नहीं है और अपना कूटचक्र चलाते रहते थे। उनके हथकण्डे देखकर उदारवादियोंको एक आत्म-द्वन्द्व सहना पड़ा, जिसके कारण प्रजातन्त्रके समर्थकोंमें फूट पड़ गई। कम्युनिस्ट सब कुछ अपने हाथमें करना चाहते थे और गृहयुद्ध तो उनके शक्ति-संचयके लिए एक अवसर मात्र था। किन्तु दूसरे लोग कुछ और प्रेरणाओंको लेकर ही उस संघर्षमें शामिल हुए थे। उस समयकी लिखी हुई श्रेष्ठ पुस्तकें सारे संघर्षको जिस दृष्टिकोणसे समझाती हैं, उन सब पर उदारवादकी स्पष्ट छाप है।

दूसरी बार जब मैं स्पेनमें गया, तो देखा कि कम्युनिस्टोंने अन्तर्राष्ट्रीय दस्ते पर पूर्ण अधिकार जमा लिया है। वह दस्ता "जनवादी मोर्चे" का नारा लगाकर संगठित किया गया था। इसी प्रकार वे सारे स्पेनमें काम कर रहे थे। स्पेनिश सेनामें भी उन्होंने समस्त राजनैतिक

दलोंको संगठनका नारा दिया और संगठनका नेतृत्व अपने हाथमें लेकर सेना पर अधिकार जमा बैठे। कम्युनिस्टोंकी जालसाजीसे बहुत-सी दुःखद घटनाएँ घटी। एक घटना मुझे भी याद है। मैं मैड्रिडके निकट युद्ध-मोर्चे पर गया, तो मुझे एक अङ्गरेज लड़का मिला। वह स्कूल छोड़कर दस्तेमें भर्ती हुआ था। उमर थी केवल अठारह साल। उसने मुझे बताया कि वह तो दस्तेको प्रजातन्त्रकी नाई उदारवादी संगठन समझ कर आया था। किन्तु जब उसने देखा कि दस्ते पर कम्युनिस्टोंका प्रभुत्व है, तो उसकी प्रजातन्त्र परसे श्रद्धा मिट गई। वह कम्युनिस्टोंसे किसी प्रकारका सम्पर्क रखनेके लिये तैयार नहीं था। मैंने उससे बातें की तो मालूम हुआ कि स्पेनमें आनेसे पहले उसने कभी कम्युनिज्मके बारेमें नहीं सोचा था। मैंने उससे पूछा कि क्या मैं उसे ब्रिटेन वापिस बुलवानेका प्रयत्न कर सकता हूं। उसने सामने पहाड़ीकी ओर उंगली उठाकर कहा—"अब तो मृत्युके दिवस तक मैं इन्हीं चोटियों पर टक्करें मारूँगा।" उसे इङ्गलैंड लौटनेमें लाजका अनुभव होता था। लोग उसे बेवकूफ कहते। छः सप्ताह बाद वह युद्धमें मारा गया।

इङ्गलैंड लौटकर मैंने 'न्यू स्टेट्समैन' में एक लेख लिखा। मैंने कहा कि कम्युनिस्टोंको मिथ्या प्रचार नहीं करना चाहिये। नौजवानोंको दस्तेमें भर्ती करनेसे पूर्व साफ-साफ बता देना चाहिये कि दस्ता एक कम्युनिस्ट संस्था है। कम्युनिस्टोंको वह लेख अच्छा नहीं लगा। कई सप्ताह पश्चात् मुझे बैलेन्सियामें एक कम्युनिस्ट समाचार-पत्रका प्रतिनिधि मिला। उसने मेरा लेख पढ़ा था। वह मानता था कि जो कुछ मैंने लिखा था वह सत्य था। फिर भी उसकी रायमें मुझे वैसा लिखना

नहीं चाहिये था। मेरा कर्त्तव्य था कि स्पेनका युद्ध जीतने और कम्युनिज्मको विजयी बनानेमें मदद दूं। वह बहुत नम्रतासे तर्क कर रहा था। कहने लगा कि सचाईके लिये अनेक लोगोंको मरना पड़ता है, अन्याय अत्याचार भी सहना पड़ता है और इन सब साधारण बातोंको लेकर संघर्षसे किसीको विमुख नहीं होना चाहिये। उसकी बातोंमें मोह लेनेकी शक्ति थी।

कम्युनिस्टोंके प्रचारका ढंग भी निराला था। वे कहते रहते थे कि समस्त हत्याकाण्डोंमें फ्रैंकोंका हाथ है। जो लोग प्रजातन्त्रके विरुद्ध कुछ अत्याचारोंका सच्चा आरोप लगाते थे, उन्हींको कम्युनिस्ट फासिस्ट कहकर गाली देने लगते थे। कम्युनिस्टोंका प्रचार था कि प्रजातन्त्रका पक्ष तो देवपक्ष है और उसके विरुद्ध केवल फासिस्ट लोग ही हो सकते हैं। मालरो और हैमिंगवेके उपन्यास पढ़कर हम जानते हैं कि प्रजातन्त्र का पक्ष देवपक्ष नहीं था, उधर भी कुछ ज्यादतियाँ हो रही थीं। लोरकाकी हत्याको लेकर भी कम्युनिस्टोंने मिथ्या प्रचार किया। लोरका कम्युनिस्ट नहीं था, बल्कि कैथोलिक था और गृहयुद्धके आरम्भमें ही वह फ्रैंको अधिकृत स्पेनमें भाग गया था। फासिस्टोंने उसकी हत्या कर डाली और कम्युनिस्टोंको अवसर मिल गया। कम्युनिस्ट अपने जीवित विपक्षियोंसे घृणा करते हैं। किन्तु मरे हुए विपक्षियोंसे फायदा उठाना भी उन्होंने खूब सीखा है। वे कहने लगे कि फासिस्ट लोग केवल कम्युनिस्टोंके ही दुश्मन हैं, यह कहना भूल है। लोरका तो कम्युनिस्ट नहीं था, वह तो एक प्रकारका प्रतिक्रियावादी ही था। तो भी उसको मार डाला गया। जब कम्युनिस्टोंको बताया जाता था कि उसकी हत्या

कुछ भूलोंके कारण हुई थी, तो वे बिगड़ पड़ते थे। कहते थे कि फासिस्टोंने जान-बूझकर उसकी हत्या की है। मैंने देखा कि स्पेनके अधिकतर कवि जिनके सम्पर्कमें मैं आया, कम्युनिस्टोंके इस मिथ्या प्रचारसे शरमाते थे। किन्तु इस मिथ्या प्रचारसे भी अधिक कुत्सित उनका वह प्रचार था, जो वे प्रजातन्त्रके पक्षमें रहनेवाले गैर-कम्युनिस्टों के विरुद्ध कर रहे थे। उन्होंने ट्राट्स्कीवादियों[१] को फासिस्ट कहकर जिस जघन्यतासे मारा, उसके कारण सभी गैर-कम्युनिस्टोंकी आँखोंमें प्रजातंत्रका पक्ष कलंकित हो गया। युद्धके बाद स्पेनिश सेनाके एक अफसरने मुझे बताया कि कम्युनिस्टोंके प्रचारसे प्रजातन्त्रके पक्षको नुकसान ही पहुँचा। कहने लगा—"हमारा आदर्श और पक्ष तो अच्छा ही था। हम सत्य बोल सकते थे, किन्तु……।" उसकी बातमें सार था। जिस प्रचारमें मित्रपक्षको देवता और शत्रुपक्षको शैतान बताया जाता है उसका असर उन्हीं पर पड़ता है जो कि पहलेसे पक्षपातका निर्णय कर चुके हों। दूसरोंको उसमें विश्वास नहीं होता। कईबार कम्युनिस्टोंके प्रजातन्त्र-समर्थक प्रचारका ठीक उलटा असर हुआ। जिन लोगोंको उस प्रचारसे एकबार धोखा हो चुका था, उन्होंने सत्यको माननेसे भी इन्कार कर दिया। वेलेन्सियामें एक आदमी मुझे मिला जिसकी आँखें खुल चुकीं थीं। वह एक अमेरिकन पत्रकार और प्रजातन्त्रका पक्का समर्थक था।

---

१. एक बड़ी संख्यामें ये लोग फ्रेंकोंके विरुद्ध लड़ रहे थे। किन्तु कम्युनिस्टों के लिये प्रत्येक स्टालिन-विरोधी फासिस्ट होता है। बहाने बनाकर कम्युनिस्टोंने ट्राट्स्कीवादियों पर जहाद बोल दिया। अकेले बारसीलोना में ही ६०,००० लोगोंकी नृशंस हत्या कम्युनिस्टोंने की।

उस समय वह एक बड़े ब्रिटिश समाचारपत्रके लिए लिखता रहता था। किन्तु होटलके लाउन्जमें बैठकर दैनिक पत्र पढ़ते-पढ़ते उसे बहुत क्रोध आता था। वे पत्र उसकी रिपोर्ट तो बहुत काट-छांटकर छापते थे किन्तु फ्रांकोंके शिविरमें जो पत्रकार था उसकी रिपोर्ट पूरी छपती थी। वह पत्रकार अनेक समझदार अमेरिकनोंकी नाईं भोला था। एक दिन पत्रोंमें छपा कि वैलेन्सिया और बारसीलोनामें प्रजातन्त्रके समर्थकोंने कई खून कर डाले हैं। उसने मुझसे पूछा कि क्या यह सत्य है। मैंने कह दिया कि क्रान्तिके साथ यह सब खून-खराबी तो होती ही है। वह बोला—"तो प्रजातन्त्रवाले क्यों नहीं सच-सच कह देते? झूठ बातें सुनते-सुनते क्या आपका प्रजातन्त्र परसे विश्वास नहीं उठ जाता?" मैंने जब कहा कि नहीं तो उसने कहा—"मुझे तो यदि मालूम हो जाय कि ऐसे काण्ड हुए हैं और वे झूठ बोलकर सब छुपा रहे हैं तो मेरा तो प्रजातन्त्रके प्रति सारा विश्वास जाता रहेगा।" कई सप्ताह बाद वह बारसीलोना गया। उस समय कम्युनिस्ट ट्राट्स्की-वादियोंकी हत्या कर रहे थे। उसने कम्युनिस्टोंके मिथ्या प्रचारका भण्डाफोड़ किया और स्पेन छोड़कर चला गया। फिर उसने प्रजातन्त्रका समर्थन नहीं किया।

जुलाई १९३७ में वैलेन्सिया और मैड्रिडमें अन्तर्राष्ट्रीय लेखक संघ का अधिवेशन हुआ। मैंने उसमें भाग लिया। उसी समय आन्द्रेजीद ने अपनी "रूस-भ्रमण" नामक पुस्तक प्रकाशित की थी। पुस्तक क्या एक रोजनामचा-सा था। यदि इंगलैंड, फ्रान्स अथवा अमेरिकाके बारेमें ऐसा ही कुछ लिखा गया होता, तो विशेष टीका-टिप्पणी नहीं होती और न ही किसीको क्रोध आता। किन्तु पुस्तक रूसके सम्बन्धमें

थी। उसमें रूसकी तारीफ भी की गई थी किन्तु स्टालिनकी पूजा और भय तथा अविश्वासका वातावरण देखकर जीदने रूसकी भर्त्सना भी की थी। सारा कम्युनिस्ट संसार एक स्वरसे चीत्कार कर उठा। जैसे किसी लाडले बच्चेकी मां अपने बच्चेको धमकाया जाता देखकर संयम खो बैठती है। अभी तक कम्युनिस्ट कहते थे कि जीद संसारका सर्वश्रेष्ठ लेखक है जो संसारके सर्वश्रेष्ठ देशकी तीर्थयात्रा करने गया है। अचानक वे कहने लगे कि जीद फासिस्ट, पतित, गद्दार और न जाने क्या-क्या है। मुझे वह गाली-गलौज सुनकर विश्वास करना कठिन हो गया। अधिवेशनमें मैंने रूसके प्रतिनिधि भी देखे। उनका अहंकार और बेवकूफी दोनों ही जोरदार थे। अपनी वक्तृताओंमें उन्होंने साहित्यके विषयमें कुछ नहीं कहा। उन्होंने ट्राट्स्की और जीदको गालियाँ दीं, स्टालिन और कम्युनिस्टोंकी तारीफ की और बैठ गए। ईल्या आयरनबूर्ग, काल्टसोव इत्यादिने एक भी बात ऐसी नहीं कही जिसको लेकर कुछ विचार-विनिमय किया जाता। उनकी अपनी कुछ राय ही नहीं थी। काल्टसोवने जीदकी पुस्तकका भरपेट मजाक उड़ाया। किन्तु इस चाटुकारीने उसकी जान नहीं बचाई। रूस लौटने पर वह हमेशाके लिए गायब हो गया। मैंने अपने भाषणमें कहा कि जब लोग समझना नहीं चाहते तो उनको कुछ समझाया नहीं जा सकता। जब वे आँखें खोलना नहीं चाहते तो उनको कुछ दिखाया नहीं जा सकता। वैलेन्सियासे बारसीलोना लौटते समय मैंने एक कारमें सफर किया। मेरे साथ एक कम्युनिस्ट कवि, एक महिला उपन्यासकार और उसकी मित्र एक कवयित्री भी थी। मैं ड्राइवरके साथ आगेकी सीटमें बैठा था। वह एक

भला लेकिन भभक उठनेवाला व्यक्ति था। उसने बड़े अभिमानसे मुझे बताया कि बारसीलोनामें ट्राट्स्कीवादियोंके उच्छेदनके समय उसने अपने हाथोंसे पाँच आदमियोंको गोली मारी थी। थोड़ी देर बाद हम सीमान्त पर पहुँच गए। वहाँ कुछ रुकना पड़ा। महिला उपन्यास-कारने कहा कि दस दिन तक स्पेनमें रहकर उसने कोई भी ऐसी बात नहीं देखी जिसके लिए प्रजातन्त्रकी भर्त्सना की जा सके। मैंने वह ड्राइवरकी कही बात बता कर पूछा कि उस काण्डको क्या कहा जाए। क्रोधसे लाल होकर सब मुझे घूरने लगे। एकबार उन्होंने एक-दूसरेसे आँखों-ही-आँखोंमें बात की और फिर चुपचाप मुझे छोड़ कर चले गए।

मैड्रिडमें एक अंग्रेज लेखक था जो राजनैतिक कमीसार बन गया था। कुछ मोटा-सा, बातूनी आदमी था। वह होटलमें हमलोगोंको युद्धकी पृष्ठभूमि समझाता रहता था। लेकिन बार-बार एक ही बात कहता था—"कम्युनिस्ट ही एकताके एकमात्र हिमायती हैं। सरकारमें, सेनामें, दस्तेमें—सभी जगह कम्युनिस्ट एकताके लिए चेष्टा करते रहते हैं। और जब भी लोग एक हुए हैं तो कम्युनिस्टोंने उनका नेतृत्व किया है। यदि कम्युनिस्टोंने नेतागिरी करनेसे किनारा किया है तो यह भी उनकी समझदारीका सबूत है।" मैंने विरोध करते हुए कहा—"यह क्या एकता है? दूसरी पार्टियोंको धोखा देकर एकताकी डींग हाँकना एकता नहीं कहला सकता।" महिला कविके मुख पर मेरे प्रति ग्लानिकी रेखा उभर आई। किन्तु लेखकने समझाया कि मुझे ठीक तरह सोचना चाहिए। उसके कहनेका यह मतलब था कि इतिहासकी

दृष्टिसे कम्युनिज्म ही एकमात्र सत्य है। इसलिए एकताका सही मतलः यह हुआ कि सब लोग कम्युनिस्टोंकी बात मान लें। कम्युनिस्टोंके विरुद्ध दूसरी पार्टियोंको धोखा देनेका आरोप लगाना तो फासिस्टवादका तर्क है। इत्यादि, इत्यादि। कम्युनिस्ट वास्तवमें विश्वास करते हैं कि धोखाधड़ीसे जब वे 'जनवादी मोरचा' बनाते हैं, तो वास्तवमें एकताकी साधना करते हैं। जो कम्युनिस्ट ऐसा नहीं सोचता वह पतित है। कम्युनिस्टोंकी इस मनोवृतिको दोहरे विचारकी वृत्ति कहा जाता है। इसी वृत्तिका एक और उदाहरण मिलता है। कम्युनिस्ट एक ओर तो स्वाधीनता, गणतन्त्र और 'जनवादी मोरचे' के गीत गाते रहते हैं और दूसरी ओर उदारवादियों तथा समाजवादियोंको फासिस्ट कहकर गालियां देते रहते हैं। यही नहीं वे अपना विरोध करनेवाले उदारवादियों तथा समाजवादियोंको मार डालनेसे नहीं हिचकते। स्पेनमें उन्होंने ट्राट्स्की वादियोंके साथ ऐसा ही किया था।

इन दिनों मैं एक निर्णय पर पहुँचा। बात गहरी नहीं है। सभी जानते हैं। लेकिन मुझे जब उसका ध्यान आया, तो मेरे राजनीतिक चिन्तनकी दिशा बदल गई। मुझे विश्वास हो गया कि प्राय: सभी लोग सत्यको आंशिक रूपमें जानते हैं। केवल अपने आदर्श और स्वार्थ ही उनको साफ-साफ दीख पड़ते हैं और दूसरी बातें जो उतनी ही सत्य हों, उनको जैसे दिखाई ही नहीं देतीं। जब कोई व्यक्ति एक काम करनेका इरादा कर लेता है, तो उसके काममें सहायक सब बातें उसे अच्छी लगने लगती हैं। जो बातें उसके विरुद्ध जाती हैं, वे थोथीं दीखने लगती हैं। हमको अपने मित्र तो हाड़मांसके असली

आदमी लगते हैं और उनके साथ हम सहानुभूति दिखाते हैं। अपने विरोधी हमको बेकारके बकवादी लोग दीख पड़ते हैं, जो मिथ्याके बीच रहते-रहते इन्सानियत ही खो चुके हैं। उनको मार डालना तो ऐसा ही है जैसे स्लेट पर लिखकर कुछ मिटा डालना। इस प्रकार सोचनेसे बचनेके लिये बौद्धिक क्षमता और सहृदयताकी आवश्यकता है, जो बहुत कम मिलती है। स्पेनके गृह-युद्धमें मैं स्वयं अपने विरोधियोंको मार डालनेके हकमें था। जब मैं फासिस्टों द्वारा मारे हुए बच्चोंके फोटो देखता था, तो मैं क्रोधसे पागल हो जाता था। लेकिन जब फ्रैंकोके समर्थक कम्युनिस्टों द्वारा की गई हत्याओंकी ओर संकेत करते थे, तो मुझे दुःख होता था कि लोग ऐसा मिथ्या प्रचार भी करते हैं। पहली बातें सुनकर मुझे लाशें दीख पड़तीं, दूसरी बातोंमें केवल शब्दोंका दुरुपयोग। किन्तु मेरे मनके भीतर एक साक्षी था, जो पूर्णतया कभी बेकार नहीं हो पाया। धीरे-धीरे मुझे अपने मनकी अवस्था देखकर भय लगने लगा। मुझे ऐसा लगा कि जब तक प्रत्येक बच्चेकी हत्या पर मुझे दुःख नहीं होता, तब तक बच्चेकी हत्या मेरे निकट अपराध नहीं है। लाशें तो लाशें हैं, चाहे उनको गिरानेका उत्तरदायित्व फासिस्टों पर हो, चाहे प्रजातन्त्र-वादियों पर। यदि मैं एक ओरकी लाशें ही देखता हूँ, तो मैं मिथ्या प्रचारका पक्षपात करनेके सिवाय और कुछ नहीं करता।

कम्युनिस्टोंकी मनोदशा और आदमियों जैसी ही होती है। अधिकतर लोग कुछ थोथी बातोंको लेकर हंगामा करते रहते हैं और असली, हाड़मांसके मनुष्यके सच्चे दुःख दर्द पर उनकी आँखें नहीं जातीं। बस मनुष्यकी इसी कमजोरीको कम्युनिस्टोंने एक शास्त्रका रूप

दे डाला है। अपनी बातोंको तथा अपने साथियोंको सच्चा मानना और अपने विरोधियोंको थोथा कहकर उड़ा देना ही तो वह कमजोरी है। कई लोग कहने लगेंगे कि इस कमजोरीकी बात पर रोना भींकना व्यर्थ है; क्योंकि कम्युनिज्म आ जाने पर मनुष्यकी सुख सम्पन्नतामें बहुत वृद्धि होगी। मुझे ऐसा विश्वास है कि यह बात ठीक नहीं है। जो लोग इतने अन्ध-विश्वासी हैं कि अपनेको इतिहासके नियन्ता और मानव कल्याणके एकमात्र ठेकेदार माननेसे उनको अरुचि नहीं होती, उनकी इन्सानियत तो वहीं खत्म हो चुकी। इतिहासकी प्रगतिमें आदर्शोंके साथ-साथ आदमी भी साथ देते हैं। आदमीको भुलाकर केवल आदर्शोंके बल पर इतिहासको आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। यदि आदर्श ही इन्सानियतके खिलाफ हों, तो उनके आधार पर रचित समाज भी वैसा ही होगा। मैं आल्डुअस हक्सलेकी यह बात पूरी तरह नहीं मानता कि सत्ता सदा भ्रष्ट करनेवाली होती है। तो भी इतना तो मानता हूं कि सत्ताके साथ जहाँ इन्सानियत और विनयभाव नहीं रहे, वहाँ उसको भ्रष्ट होनेसे बचाना असम्भव है। विनय भावके बिना सत्ता दमन, हत्या और मिथ्या-प्रचारका साधन बन जाती है।

मैंने अपनेको तथा अपने साथियोंको देखा। हमारी कट्टर विचार-धाराका हमारे चरित्रों पर प्रभाव पड़ा था। हम मानते थे कि मनुष्यके सम्मुख एक ही आदर्श है और उस तक पहुंचनेका एक ही मार्ग है। हमारा सारा दृष्टिकोण विषैला हो गया। जहाँ भी मनुष्यके सुख-दुःख हमारी आदर्श पूजाके काम आते थे, हम उनका लेखा-जोखा ले लेते थे, किन्तु जहाँ वे आदर्शके विपरीत थे, वहाँ हमें उनका ध्यान ही नहीं

आता था। हम एक बौद्धिक तर्क-जालमें फँसकर अपनी अनुभूतियोंकी अवहेलना करते रहते थे। इसलिये जीवनके वास्तव द्वन्द्व और कटुताएँ पूर्णतया देखना हमारे लिये असम्भव बन गया। कम्युनिस्ट बुद्धिवादियों ने तो मानों एकबारगी जीवनका समस्त गणित समझ लिया था। उस गणितके दृष्टिकोणसे उनको नफे-नुकसानके समस्त प्रश्नोंका उत्तर सदाके लिये मिल चुका था। फिर प्रतिदिनकी अनुभूतियोंका जमा खर्च भला क्योंकर उनकी रोकड़में गड़बड़ कर सकता था। बस क्रान्ति ही सारे आकड़ोंका केन्द्र-बिन्दु बन गई थी। किसी दिन सारे आंकड़े मिलकर मजदूर-तानाशाही और कम्युनिस्ट समाजके बराबर हो जायेंगे। इस प्रकारकी विचारधारामें देख सुनकर मत स्थिर करनेके लिये कोई गुँजायश नहीं थी। बुद्धिवादी कम्युनिस्ट निरे सिद्धान्तकी बात करता रहता है। उस सिद्धान्तका खण्डन करनेवाले तथ्य सामने पड़ते ही वह आँखें बन्द कर लेता है। उदाहरणके लिये मैंने एक भी कम्युनिस्ट ऐसा नहीं देखा, जो रूसके सम्बन्धमें रूसी प्रचारके अतिरिक्त और कुछ सुनने में दिलचस्पी रखता हो। जब पैरिसमें कम्युनिस्ट और उनके समर्थक रूसके विषयमें कोई जानकारी रक्खे बिना ही क्रावचैंकोंकी पुस्तक्के खिलाफ गवाही देनेके लिये तैयार हो गए, तो मुझे कुछ भी ताज्जुब नहीं हुआ। उनके लिये इतना जानना काफी था कि क्रावचैंको रूसका विरोधी है। बस उनको क्रावचैंकोकी बेईमानी पर पक्का विश्वास हो गया।

कम्युनिस्टोंके चरित्रमें भी वैसी ही अनीतिकी छाप थी। उनकी दृष्टिमें साध्यकी प्राप्तिके लिये कोई भी साधन ठीक थे। एक कम्युनिस्ट

पत्रके प्रतिनिधिने बड़ी विद्वत्ताके साथ मुझे समझाया कि झूठ बोलना आवश्यक है। कमीसार बने एक लेखकने एक किस्सा बताया। एक सैनिक पर उसे विश्वास नहीं था। झट उसने सैनिकको युद्धके ऐसे मोर्चे पर भेज दिया, जहाँ उसका मारा जाना अवश्यम्भावी था। हैरी पौलिटने १९३९ में एक वक्तव्य दिया कि गणतन्त्र और फासिज्मका युद्ध छिड़ा है। रूसको बात पसन्द नहीं आई। पौलिटने अपने शब्द वापिस ले लिए और कह दिया कि युद्धके नाम पर दोनों ओरके साम्राज्यवादी पूँजीवादी लोग एक फजीहत-सी कर रहे हैं। १९४६ में मैं बृटिश कम्युनिस्ट पार्टीके एक लीडरसे मिला। वह मुझे दोषी-सा ठहराकर बोला—"जब कि सोवियत् यूनियनके लिये जीवन-मरणका प्रश्न है, तब तुम चन्द हजार पोल लोगोंको लेकर क्यों हंगामा करते हो ?" इस प्रकार मानों दुनियाँमें सब कुछ एक शून्य था, जिसको रूसके साथ सम्बन्धित होकर ही मूल्य मिल सकता था। यदि पार्टी लाइन बदल जाए और कल तक जिसको गणतन्त्र कहते आए हैं, उसको फासिज्म कहना पड़े तो कम्युनिस्टोंको कोई अजीब बात नहीं लगती। गैर-कम्युनिस्ट लोगोंका अपने आपमें तो कोई मूल्य नहीं, इसलिए अपनी सुविधाके अनुसार पार्टी उनको गधा-घोड़ा जो कुछ कह दे सब ठीक हैं।

इस प्रकार कम्युनिस्ट लोग एक मपे-तुले सिद्धान्तपर यथार्थको साधते रहते हैं। वे इतिहासको भगवान मानकर मन्त्र-मुग्धसे रहते हैं और इतिहासकी ठोस घटनाओंको आँखोंसे देखनेकी उन्हें कभी जरूरत नहीं पड़ती। मैं तो कभी मन्त्र-मुग्ध हुआ नहीं और जब मैंने देखा

कि जिन बातोंके बारेमें एक कम्युनिस्टको कुछ भी नहीं मालूम, उसके बारेमें भी अपने सिद्धान्तके बलपर वह एक राय बना लेता है, तो मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। एक और अजीब बात मैंने देखी। कम्युनिज्म छोड़ देनेपर कुछ लोग कम्युनिज्मके विरुद्ध वे ही बातें कहने लगते हैं, जो पहले दूसरोंसे सुनकर उन्होंने मज़ाकमें उड़ा दी थीं। श्रीमती शारलट् हॉल्डेन, एक महिला उपन्यासकार, कम्युनिस्ट प्रोफेसर हाल्डेनकी पत्नी थी। स्पेनके गृह-युद्धके दिनोंमें मेरा उससे सम्पर्क हुआ। उस समय वह मन्त्र-मुग्ध अवस्थामें थी। एक दिन एक सभाके बाद मैं उसको अपनी मोटरपर लन्दनकी एक सड़कपर से ले जा रहा था। बूंदें पड़ रही थीं और ट्रामकी बाट जोहनेवालोंकी कतारें लगी थीं। श्रीमती ने उफनकर कहा—"कैसी शरमकी बात है! रूसमें लोग कभी भी यह सहन नहीं कर सकते।" मैंने विरोध करते हुए कहा कि कतारें तो रूस में भी लगती हैं और रूसके अखबारोंमें उनका जिक्र भी मिलता है। श्रीमतीने मुझे करुणा-भरी आँखोंसे देखा; जैसे मैं कोई कीट-पतंग हूँ, जिसे एक कम्युनिस्ट महिलाका मान रखना नहीं आता। उसके उपरान्त द्वितीय महायुद्धके दिनोंमें श्रीमती रूसमें गई। स्टालिनके लिए बड़ी भक्ति थी उसके दिलमें। किन्तु रूससे आकर उसने पार्टी और प्रोफेसर हाल्डेन दोनोंसे ही विदा ले ली। उसने एक लेख लिखा, जिसमें उपरोक्त मेरी बातका सबूत मिलता है। उसने कहा—"रूसमें कोई नागरिक, वैज्ञानिक अथवा अन्य व्यक्ति जब भी एक शब्द कहता है या एक काम करता है, तो उसे ध्यान रहता है कि कम्युनिस्ट पार्टीकी आँखें उसपर टिकी हैं और उसके चारों ओर गुप्तचरोंका जाल बिछा है।

व्यक्तिने जीवनमें जो कुछ कहा, लिखा अथवा किया है, उस सबका लेखा सरकारके पास रहता है और किसी समय भी वह लेखा उसके विरुद्ध गवाहीका काम दे सकता है।"

मैं सोचने लगा कि यह सब जाननेके लिए श्रीमतीको रूस जानेकी क्या जरूरत थी। दर्जनों पुस्तकोंमें यह सब लिखा था और जीदकी 'रूस भ्रमण' तो उसने अवश्य पढ़ी थी। शायद जीदकी बात वह न भी मानती कि कम्युनिस्ट किस प्रकार स्वाधीनताका गला घोंटते हैं। किन्तु जीदके विरुद्ध कम्युनिस्टोंने जो हंगामा किया था, वह भी उसने देखा था। उसीसे वह समझ सकती थी कि यदि कम्युनिस्टोंका बस चलता, तो वह जीद महाशयको क्या दण्ड देते। रूसमें जानेके पूर्व जो बातें उसकी समझमें नहीं आती थीं, वे ही अब इतनी साफ दीखने लगीं। बात अजीब-सी लगती है। फिर भी मैं यह कहूँगा कि श्रीमतीने हृदय-परिवर्तनके बाद बड़ी ईमान्दारी दिखाई। हाल्डेनको ध्यानमें रखकर उसी लेखमें उसने यह प्रश्न उठाया कि वैज्ञानिक लोग क्यों स्टालिन-भक्त हो जाते हैं। लेखकोंकी स्टालिन-भक्तिके प्रश्नसे यह प्रश्न अधिक महत्त्वपूर्ण था। उसने प्रश्नका उत्तर देते हुए लिखा—"वे लोग शायद एक काले अथवा रंगीन चश्मेमें से एक ऐसे 'समाजवादी' देशका नक्शा देखते हैं, जहाँकी सरकार विज्ञानकी खोज-बीनके लिए पानीकी तरह रुपया बहा देती है, जहाँ वैज्ञानिकोंको मोटी तनख्वाहें मिलती हैं और जहाँ अपना काम करते समय वैज्ञानिकोंको यह भय नहीं रहता कि उनके आविष्कारोंसे कुछ मोटे व्यवसायी व्यक्तिगत फायदा उठाएँगे।"

प्रोफेसर हाल्डेन और जे० जी० बर्नैलको मैंने दूरसे देखा है। मुझे

तो ऐसा ही लगा है कि और लोगोंकी तरह वे भी इन्सान हैं। इन्सान, चाहे वे कितने ही बुद्धिमान हों, अपनी दुर्बलताओंसे सीमित रहते हैं। और अपनी सीमाओंको समझकर यदि उनमें विनय भाव नहीं आता, तो उनके सिद्धान्तोंके बलपर ही उनपर हमें विश्वास नहीं कर लेना चाहिए। प्रोफेसर हाल्डेनमें अनेक गुण हैं, किन्तु विनय भाव उनमें बहुत कम है। जब वे कैम्ब्रिज युनिवर्सिटीमें पढ़ाते थे, तो उनको सनकी अध्यापक कहा जाता था और आत्म-प्रदर्शनके लिए वे प्रसिद्ध थे। द्वितीय महायुद्धके पूर्व जब वे हवाई बचावके अड्डोंपर कुछ प्रयोग कर रहे थे, तो एक बात मशहूर हो गई थी। जब अड्डोंपर बम गिराए गए, तो प्रोफेसरने एक अड्डेमें बैठनेका हठ किया था। स्पेनके गृह-युद्धमें एक दिन मैं एक पार्टीमें गया, जो कि प्रोफेसरकी बहिनने दी थी। हाल्डेन भी आए। वे उन्हीं दिनों स्पेनसे लौटे थे। जब तक बच्चोंका खेल-कूद होता रहा, वे कुछ अप्रसन्नसे बैठे रहे; किन्तु ज्यों ही उनको स्पेनमें अपने कारनामोंकी कथा सुनाकर वहाँ बैठे लोगोंको मोहित करने का मौका मिला, वे फूल उठे। मुझे हाल्डेन स्कूलके छात्रसे लगे। हगांमा-बाजी कुछ उनको अच्छी लगती है। श्रीमतीने जब यह कहा कि कम्युनिस्ट वैज्ञानिक सोवियत् यूनियनमें मान पाने और प्रयोग करने का बहुत बड़ा क्षेत्र देखते रहते हैं, तो शायद उसने हाल्डेनके चरित्रकी किसी और दिशाकी ओर संकेत किया था। यह सब बातें मैं हाल्डेन और बर्नेल-जैसे महान् वैज्ञानिकोंपर लाञ्छन लगानेकी दृष्टिसे नहीं कह रहा हूँ। मैं तो यही कहना चाहता हूँ कि वैज्ञानिक लोग जब अपनी सामाजिक अथवा राजनीतिक धारणाएँ बनाते हैं, तो उनमें वही तटस्थता

नहीं होती, जो एक वैज्ञानिकके नाते उनमें देखनेकी हमें आदत पड़ जाती है। वैज्ञानिकमें भी भावावेशकी उतनी ही सम्भावना है, जितनी कि एक साधारण व्यक्तिमें। और योजनाबद्ध समाज-व्यवस्थाके लिए तो वैज्ञानिकोंके मनमें एक लालच भी होता है।

बर्नैलमें हाल्डेन-जैसा बचपन नहीं दिखाई देता; किन्तु वह भी है एक प्रकारका बचा ही। वह एक मशीनकी नाईं समाज और आदमी को गढ़ना चाहता है। गढ़नेकी कल्पना-मात्रसे उसका मन फूल उठता है। अपने वैज्ञानिक काममें वह सपने नहीं देखता; किन्तु समाजके विषयमें सोचते समय सारा संयम गँवा देता है। हमारे युगमें हम वैज्ञानिकको अति-मानव मान बैठे हैं; किन्तु सत्य तो यह है कि अन्य विशेषज्ञों और कलाकारोंकी नाईं वे भी इन्सानियतसे कुछ न्यून हैं। एक ओर तो वे ऐसी योजनाओंके लिए पागल रहते हैं, जिनसे कि सारा समाज उनके प्रयोग करनेका एक विशाल क्षेत्र बन जाय। दूसरी ओर वे कभी भी ऐसा संगठन नहीं कर पाते, जिससे कि वे अपने आविष्कारों का दुरुपयोग न होने दें। जब उनसे कहा जाता है कि उन्होंने कितने ही विनाशमय आविष्कार किए हैं, तो वे अपने-आपको शुद्ध वैज्ञानिक कहकर किनारा कर जाते हैं। उनमें परम्पराके प्रति कुछ भी श्रद्धा नहीं रहती। वे सोच ही नहीं पाते कि हमारी आजकी सभ्यता संस्कृतिमें अतीतसे चली आई परम्पराका कितना हाथ है। समाज मशीन नहीं है, जिसे तोड़-फोड़कर नित नया बना लिया जाए। यदि पुराने युगके समस्त मकान गिराकर केवल आरामकी दृष्टिसे मशीननुमा घर बना डाले जाएँ, तो हम क्या खो देंगे, इसका उन्हें कुछ पता ही नहीं।

हिटलरकी जर्मनीमें वैज्ञानिकोंने जो-जो कुकर्म किए, वे हमें याद रखने चाहिएँ। यहूदियोंके हत्या-काण्डमें उनका विज्ञान काम आया और आदमियों पर उन्होंने पैशाचिक प्रयोग किए। युद्धके बाद जर्मन वैज्ञानिकोंके प्रयोगोंका अध्ययन करने मेरा एक मित्र जर्मनी गया था। जो उसे सबसे बुरी बात लगी, वह यह थी कि जर्मन वैज्ञानिकोंको जो मनुष्य प्रयोग करनेके लिए दिए जाते थे, उनपर वे नृशंस प्रयोग करनेसे नहीं चूकते थे। बहुत बार तो वे प्रयोग बिल्कुल आवश्यक नहीं थे, केवल अपने मन-बहलावेके लिए ही उन्होंने आदमियोंको यन्त्रणा दी। मेरी बातका यह मतलब नहीं है कि और देशोंके वैज्ञानिक भी ऐसा ही कर सकते हैं। मैं तो केवल यह बात समझाना चाहता हूँ कि विज्ञानमें अपने-आपमें कोई ऐसी प्रेरणा नहीं जो कि नृशंस काम करनेसे वैज्ञानिक को रोक सके। यदि नृशंसताके विरुद्ध वैज्ञानिककी आत्मा जागती है, तो कोई अन्य मानवीय प्रेरणा पाकर। आधुनिक विज्ञानने कोई दलील उपस्थित नहीं की कि राष्ट्रोंको एक-दूसरेका विनाश करनेके लिए विज्ञान का उपयोग नहीं करना चाहिए। विज्ञान तो केवल एक अस्त्र है, जो अपने-आपमें बुरा-अच्छा कुछ नहीं। यदि किसीको विज्ञान द्वारा कल्याणकी साधना करनी है, तो उसके सामने एक वैज्ञानिक समाज-व्यवस्थाके आदर्शसे उच्चतर आदर्श होना आवश्यक है। वैसा आदर्श लिए बिना, केवल विज्ञान द्वारा सामाजिक प्रगतिको बढ़ानेके लिए एक तानाशाहीकी कामना करना, विज्ञानका दुरुपयोग ही कहलाएगा। रूसमें भी राजनीतिज्ञ ही विज्ञानको राह दिखाते हैं।

जब हाल्डेन, बर्नल और जोलियत्-क्यूरीको कम्युनिज्म अपनाते

देखता हूँ तो मुझे उनके विश्वासमें किसी आदर्शकी गन्ध नहीं मिलती। उनका विज्ञानमें अन्ध-विश्वास ही उन्हें ऐसी प्रेरणा देता है। जब वैज्ञानिक विज्ञानको राजनीतिज्ञोंके हाथमें सौंपनेके लिए तैयार हो जाते हैं, तो मुझे एक नैतिक अन्धेपनका आभास मिलता है। सो भी ऐसे राजनीतिज्ञ जो अपने राजनीतिक प्रतिपक्षियोंको जेलमें डालते हैं और जिन्हें वैज्ञानिकोंसे वैज्ञानिक मामलों पर मतभेद हो जाने पर उनका दमन करनेमें भी आनाकानी नहीं होती। रूसमें यदि वैज्ञानिक ऐसी वैज्ञानिक बातें कहे जो कि प्रचलित राजनीतिक मतामतके विरुद्ध पड़ती हैं, तो वैज्ञानिक की खैर नहीं।

१९३०-४० के दिनोंमें जब मैंने अपने कम्युनिस्ट साथियोंको देखा तो मुझे उनके साहस पर श्रद्धा हुई और उनके काममें मुझे स्वार्थकी गंध नहीं मिली। जिस आदर्शमें उनका विश्वास था, उसके लिए उन्होंने खूब बलिदान किया था और-और भी बलिदान करनेके लिए वे तत्पर थे। फिर भी मुझे ऐसा लगा जैसे उनके समस्त गुण उनके दुर्गुणोंकी सेवामें लगे हों और उनके व्यक्तित्व नष्ट होते मैंने अपनी आँखोंसे देखे। वे गरीबोंको लड़ाना चाहते थे, उनको प्रेमभाव सिखानेकी आदत नहीं थी। सत्य मानो एक गुलाम था जिसके लिए कम्युनिस्ट पार्टीके चन्द लीडरोंका हुक्म बजाना ही परम कर्त्तव्य था। वे घृणाको क्रियाशीलताकी प्रधान प्रेरणा मानते थे। वे भाषाके प्रचलित शब्दोंको दूसरे मायनोंमें उपयोग करके धाँधली फैलाते थे। उनके कोषमें 'शान्ति' का अर्थ 'युद्ध' हो सकता था और 'युद्ध' का अर्थ 'शान्ति'। 'एकता' का मतलब था 'बगलमें छुरी' और वे 'सोशलिज्म' को 'फासिज्म' कहकर पुकारते थे।

कम्युनिस्टोंके लिए यदि संयमकी आवश्यकता होती थी, तो केवल पार्टीकी सेवाके लिए। अन्यथा अहंकार, ईर्ष्या, गद्दारी इत्यादिको अपने व्यक्तित्व से दूर करनेका उनमें कोई प्रयत्न मैंने नहीं देखा। यही नहीं, यदि ये दुर्गुण भी पार्टीके काम आ सकते थे तो ये तुरन्त गुण बन जाते थे। प्रायः मैंने देखा कि जिन कम्युनिस्टोंमें इन्सानियत और हमदर्दी होती थी, वे कमजोर कम्युनिस्ट रहते थे। इन कमजोरियोंको रखनेवाले कम्युनिस्ट स्वयं यह बात जानते भी थे। मुझे ऐसा लगा कि कम्युनिस्टोंको चार श्रेणियोंमें बाँटा जा सकता है :—

(१) बुद्धिवादी लोग जो अमूर्त सिद्धान्तोंकी बात करते रहते हैं। उनको जैसे हाड़-मांसके इन्सानसे कोई सम्बन्ध ही नहीं। वे जानते हैं कि कम्युनिस्ट क्या-क्या क्रूर तरीकोंसे काम करते हैं, किन्तु उस क्रूरताको 'अनिवार्य' कहकर मन समझा लेते हैं।

(२) वे लोग जो रूस और अपने कम्युनिस्ट बन्धुओंकी क्रूरताके विषयमें कुछ नहीं जानते और जो एक काल्पनिक कम्युनिज्मका ध्यान करके आत्मतृप्त रहते हैं।

(३) मजदूर लोग जिनके पास खोनेके लिए उनकी बेड़ियोंके सिवाय कुछ नहीं, जो पूँजीवादी शोषणके विरुद्ध लड़ते हैं और जिनके लिए रोटीकी कीमत आजादीसे अधिक है।

(४) पुलिस, राजनीतिक कमीसार, दलाल, गुप्तचर इत्यादि।

ये अन्तिम कम्युनिस्ट ही पूरे तौर पर कम्युनिज्मके कारागारों और झूठे मुकदमोंका रहस्य जानते हैं।

जब मैंने कम्युनिस्ट पार्टीमें नाम लिखाया तो मुझे आशा थी कि

मुझे कम्युनिस्टोंकी कार्यवाहीके विषयमें पूरा ज्ञान हो जाएगा, कि मैं पूंजीवादके तरीकोंसे कम्युनिस्टोंके तरीकोंकी तुलना कर सकूंगा, और इस प्रकार साधनों और साध्योंके सही सम्बन्धके विषयमें मेरी आँखें खुलेंगी। मुझे यह नहीं मालूम था कि स्पेन और रूसके कम्युनिस्टोंकी करतूतोंको सुनकर अन्य देशोंके कम्युनिस्ट उन्हें माननेसे इन्कार कर देंगे। उन करतूतोंके विषयमें दूसरे कम्युनिस्ट जानकारी ही नहीं रखते, यह तो मैंने कभी भी नहीं सोचा था। यह तो मैं पहले ही बता चुका हूँ कि किस प्रकार चैमर्जको रूसके मुकदमोंमें कोई दिलचस्पी नहीं थी और किस प्रकार स्पेनमें मेरे साहित्यिक बन्धुओंने अपने विश्वासके विपरीत बातें सुननेसे साफ इन्कार कर दिया था। एक समय आया, जब कि मेरे पास कम्युनिस्टोंकी करतूत सम्बन्धी दो ऐसे प्रमाण जुट गए, जिनको पार्टीके लोग झुठला नहीं सकते थे और जिनका उत्तरदायित्व लेना उनके लिये अनिवार्य था। अमेरिकाकी एक महिला लेखिकाने जिसके पति एक रूसी सज्जन थे, मुझे एक कहानी बताई। वे जब मास्कोमें थे, तो एक दिन भोरमें पुलिस उनके घर आई और उसके पतिको पकड़ ले गई। उस बेचारीको कुछ नहीं मालूम था कि उसके पतिने क्या किया था। वह स्वयं कम्युनिस्ट थी। अमेरिका और ब्रिटेनके कतिपय माने हुए बुद्धि-वादियोंने उस अभागे पुरुषमें दिलचस्पी दिखाई और बात रूसके बाहर सबको मालूम हो गई। कांमिटर्नको अनेकों पत्र लिखे गए। पहले-पहले तो उन पत्रोंकी पहुँच मिली और कहा गया कि जाँच-पड़ताल चल रही है। उसके बाद पहुँच आनी भी बन्द हो गई। दूसरी कहानी मेरे मित्र व से सम्बन्ध रखती है जो अन्तर्राष्ट्रीय दस्तेमें काम करता था।

करते हैं या अस्वीकार, यह मेरे लिए आज महत्वका प्रश्न है। यदि आप यह सब नहीं जानते अथवा माननेसे इन्कार करते हैं, तो मेरा जी ऐसी पार्टीमें रहनेको नहीं चाहता जिसके सदस्योंको पार्टीकी करतूतोंका ही ज्ञान नहीं। किन्तु यदि आप इन बातोंको सत्य मान कर दलील देंगे कि जनताके सामने यह सब छुपाना आवश्यक है, तो मैं समझूंगा कि आप लोग गम्भीर हैं और शायद आपके दृष्टिकोणसे भी सहमत हो जाऊं।"

मैंने बोलना समाप्त किया तो एक लेखक खड़ा होकर बोला—"कामरेड स्पैन्डरकी बूर्जुआ मनोवृत्तिको इस प्रकारके किस्से गढ़े बिना सन्तोष ही नहीं होता।"

दूसरा कहने लगा—"यदि हम मान भी लें कि ये सब किस्से सत्य हैं तो भी यह समझनेकी बात है कि कामरेड स्पैन्डर क्यों ऐसी छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देते हैं। शायद सच्ची समस्याओंसे भाग कर पीछा छुड़ानेके लिए ये बहाने खोज रहे हैं।"

तीसरेने, जो मुझसे कुछ सहानुभूति रखता था, कहा—"देखो स्टीफन तुम तो स्वयं कह रहे थे कि तुम्हारा मित्र व, जिसने यह बात तुम्हें बताई, स्वयं जेलमें था। उसके मनमें जरूर वैमनस्य रहा होगा। इसलिए उसकी कही बातोंके कोई मायने नहीं होते।"

उनको यह बताना फिजूल था कि उसके मनमें कोई कड़वाहट नहीं थी और इसीलिए और कई किस्सोंमें से मैंने उसका किस्सा ही सच्चा मानकर चुना था। उनके तर्कके अनुसार ही मैं भी कह सकता था कि फासिज्मके कारनामोंको देखते हुए फासिस्टोंके गुनाहोंकी याद दिलाना

बेईमानी है और फासिस्टोंके विरुद्ध हमको उन लोगोंकी बातें नहीं माननी चाहिएँ, जिनको फासिस्टोंने मारा-पीटा है ; क्योंकि ऐसे लोगोंके मनमें फासिस्टोंके विरुद्ध कड़वाहट होनेके कारण उनकी गवाहीकी कोई कीमत नहीं रहती। किन्तु यह सब तर्क करना बेकार था। उन लोगोंमें यह मान्यता ही नहीं थी कि जिस आदर्शके लिए वे लड़ रहे हैं, उसके झण्डे तले यदि गुनाह हों, तो उनको जवाब देना पड़ेगा।

मुझे यह जाननेकी उत्कण्ठा होने लगी कि कम्युनिज्मके विषयमें कम्युनिस्ट कितना जानते हैं। अभी भी वह उत्कण्ठा बाकी है। एक कम्युनिस्ट दूसरेसे कभी नहीं कहता कि रूसमें गुलाम-कैम्प हैं। यदि कोई कम्युनिस्ट इस ओर संकेत भी कर दे, तो उसे या तो फासिस्ट कहा जाएगा या कहा जाएगा कि वह व्यर्थकी बातोंमें सिर खपाता है। सोचा करता हूँ कि क्या कभी किसी कॉमिन्टर्न अथवा कॉमिन्फोर्मके अधिकारीने हैरी पोलिटको कोई ऐसी बात बताई है जो कि मिथ्या प्रचार न हो। कम्युनिस्टोंको कम्युनिस्ट देशोंके विषयमें इतनी अल्प जानकारी होती है कि गैर-कम्युनिस्ट कभी कल्पना ही नहीं कर सकते। फिर भी कम्युनिस्ट सिद्धान्तके अन्तर्गत तानाशाहीके जो असूल हैं, वे तो कम्युनिस्टोंसे छुपे नहीं। १९४७ में हंगरीके कम्युनिस्ट उप-प्रधान मन्त्री राकोसीसे मेरी बातें हुई थीं। उसने जो बातें मुझसे कहीं, उनका सार यह था कि ब्रिटिश लेबर सरकार फासिस्ट है। जब मैंने कारण पूछा, तो बोला—"दो सबूत हैं। एक तो उन्होंने ब्रिटिश फौजके समस्त उच्च पदोंपर सोशलिस्टों को नहीं नियुक्त किया, दूसरे उन्होंने स्कॉटलैंड यार्डपर अपना अधिकार नहीं जमाया।"

इस कम्युनिस्ट दृष्टिकोणको समझनेकी जरूरत है। आज। शायद बारह साल पहले यह दृष्टिकोण हमारे सम्मुख इतना स्पष्ट नहीं हो पाया था। १९४६ की सरदीके दिनोंमें मैं पराग[1] में बेनेस[2] से मिला था। बेनेसका विचार था कि क्रूर तरीकोंसे काम लिए बिना शायद रूसके शासक क्रान्तिको पूरा नहीं कर सकते थे। लेकिन बेनेसने भगवानको धन्यवाद देते हुए कहा कि स्वयं उसके लिए ऐसे क्रूर तरीकोंसे काम लेने का अवसर कभी नहीं आया। उसे आशा थी कि वैसा अवसर कभी आएगा भी नहीं।

यह प्रबन्ध लिखते समय इस बातका मुझे ध्यान रहा है कि कम्युनिज्मके विरुद्ध आलोचना करनेसे पूँजीवादके दुर्गुणोंकी मार्जना नहीं हो जाती। मुझे इतने सालों तक जो कड़ुए अनुभव हुए हैं, उनके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि दोनों ही व्यवस्थाओंमें दमन, अन्याय, स्वाधीनता का विनाश और अनेक ऐसी ही बुरी बातें हैं। पूँजीवाद चूंकि बहुत दिन पहले पाँव जमा चुका है, इसलिए वह साहित्य और कलाकी स्वाधीनता दे सकता है तथा राजनैतिक-दलोंको भी वाद-विवादका अवसर मिल जाता है। लेकिन अमेरिकाके पूँजीवादको देखकर विश्वास होता है कि युद्ध, शोषण और संसारके विनाशके अतिरिक्त हम पूँजीवाद से कोई आशा नहीं रख सकते। कम्युनिज्म यदि सारे संसारपर छा जाए और उत्पादनके साधनोंको समाजकी सम्पत्ति बना डाले, तो शायद ऐसी व्यवस्था बन सके, जिसके भीतर आर्थिक विषमताएँ न हों। फिर भी

---

१. चेकोस्लोवाकियाकी राजधानी। २. चेकोस्लोवाकियाके उदारवादी राष्ट्रपति, जिनको कम्युनिस्टोंके हाथों मरना पड़ा।

उस वर्गहीन-समाजमें संस्कृतिकी रक्षाके लिए एक और बातकी आवश्यकता पड़ेगी। तानाशाहीका विनाश।

मार्क्स और कम्युनिस्ट बुद्धिवादी मान बैठे हैं कि तानाशाहीका विलोप अनिवार्य है और ठीक समय पर अपने-आप हो जाएगा। वे मानते हैं कि पूंजीवादका विनाश कुछ ऐसे नियमोंके अनुसार होता है, जिनके अंकुर स्वयं पूँजीवादके भीतर विद्यमान हैं। और मजदूरों द्वारा सत्तापर अधिकार भी वे प्रायः इन्हीं नियमोंके अनुसार मानते हैं। उनका विश्वास है कि जब पूंजीवादका नाश होनेपर उन नियमोंके अंकुर नष्ट हो जाएँगे, तो तानाशाही भी अपने-आप मिट जाएगी। जब मजदूरोंके शत्रु ही न रह जाएँगे, तो वे तानाशाहीका क्या करेंगे। यदि यह तर्क सत्य है, तो कम्युनिज्मके विरुद्ध हमारे समस्त अभियोग व्यर्थ हैं। कुछ कालके लिए जो दुःख-दर्द उठाना पड़ता है, उसके विरुद्ध शिकायत के क्या मायनी ? जिस संसारमें समस्त राष्ट्र एक-दूसरेके साथ भ्रातृ-भाव से रह सकेंगे, उसके लिए कुछ दुःख-दर्द सह लेना क्या बड़ी बात है। किन्तु यदि तानाशाहीका विनाश होना अवश्यम्भावी नहीं, तो हमारे सारे अभियोगोंमें सार है। फिर आज जो दुःख-दर्द तानाशाहीके कारण हो रहे हैं, वे कल भी होंगे, परसों भी—चिर दिन तक होते रहेंगे।

पिछले तीस वर्षोंके इतिहाससे हमने एक सबक सीखा है। आधुनिक युगमें तानाशाहीकी स्थापना होनेपर उसको मिटाना बहुत कठिन है। स्टालिन, हिटलर, मुसोलिनी तथा फ्रैंकोको कभी भी देशके भीतरसे विद्रोहका सामना नहीं करना पड़ा है। यदि तानाशाहीका विनाश कहीं सम्भव हुआ है, तो वहीं—जहाँ कि दूसरे देशोंने युद्ध

द्वारा उसकी कमर तोड़ दी है। किन्तु युद्धसे उनके देशोंका सम्पूर्ण विनाश भी हो जाता है। इसलिए यह मानना पड़ेगा कि एक संसार-व्यापी तानाशाहीको हटाना तो असम्भव हो जाएगा। और रूसमें जो कुछ हुआ है, उसके आधार पर यह भी नहीं माना जा सकता कि कम्युनिज्म अथवा किसी भी समाज-व्यवस्थामें तानाशाह, नौकरशाही और पुलिस इत्यादि कभी भी अपने-आप सत्ताका त्याग करेंगे। हमें कम्युनिस्ट-राज्यकी भावी रूप-रेखा समझनेके लिए आजके कम्युनिस्ट देशोंमें कमीसारों और तानाशाहोंका अध्ययन करना चाहिए।

१९३०-४० में मैंने कम्युनिस्ट लेखकोंमें एक खास आदत देखी थी। आज पूर्वीय यूरोपके देशोंमें लेखकोंके संघ बने हैं, जो कि कवियों और उपन्यासकारोंको यह बताते रहते हैं कि उन्हें क्या लिखना और अनुभव करना चाहिए। उन दिनों कम्युनिस्ट लेखक जब समाज और कलाकी समस्याओंपर चर्चाके लिए एकत्र होते थे, तो एक ही बात कहते थे—साहित्यमें मार्क्सवादी सिद्धान्तोंकी पुष्टि होनी चाहिए। उन सिद्धान्तोंके अनुसार मजदूर-वर्ग श्रेष्ठ-वर्ग है और क्रान्ति अनिवार्य है। अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियोंकी उनके निकट कोई कीमत ही नहीं थी और एक बौद्धिक वितण्डावादमें वे फँसे रहते थे। अनुभूतिकी बात वे यदि कभी करते थे, तो बुद्धि द्वारा निर्मित किसी सिद्धान्तकी पुष्टिके लिए ही। अपने-आपमें अनुभूतिको थोथी मानते थे। वे लेखक मार्क्सवाद पर कितना ही सच्चा विश्वास क्यों न रखते हों, उनके इस मनोभावका साहित्य पर एक असर पड़ना आवश्यक था। जो लोग अच्छे मार्क्सवादी पण्डित थे, वे अच्छे साहित्यकार भी बन बैठे—चाहे उनको कितना

आता हो या नहीं। सिद्धान्तके पण्डित ही साहित्यके आलोचक भी हो गए और वे किसी भी लेखकके राजनैतिक मतामतको सामने रखकर उसके द्वारा लिखे साहित्यका विश्लेषण करने लगे। एक बार हैम्पस्टेड साहित्य-गोष्ठीमें बोलनेवाले एक कम्युनिस्ट कविकी बातें मैंने सुनीं। कीट्सकी वर्षगाँठका अवसर था। कवि बोला कि कीट्स चाहे मार्क्सवादी नहीं था, तो भी हमें यह याद रखना चाहिए कि वह एक अश्वपालका पुत्र था। इसके सिवाय उसे तपेदिक था, जिसकी उस समयकी सरकार ने कोई परवाह नहीं की। इसलिए कीट्सको हम पूंजीवादका शिकार तो कह ही सकते हैं। उसी कविको मैंने कहते सुना था कि जॉयसके उपन्यासोंमें व्यक्तिवादी बूर्जुआ संसारमें नष्ट-भ्रष्ट होते हुए विचारों और भाषाकी गन्ध मिलती है। १९४१ में वर्जीनिया वुल्फने जब आत्म-हत्या की, तो उन्हीं कवि महाशयने उनको मृत्यु-वरणके लिए बधाई दी थी और कहा था कि दूसरे बूर्जुआ लेखकोंको भी वुल्फका अनुकरण करना चाहिए!

इन साधारण लेखकोंकी तोतारटन्तको सुनते-सुनते मुझे ग्लानि होने लगी। इनकी बातोंका मतलब था कि एक राजनैतिक सिद्धान्तको माननेवाला इतने ऊँचे आसन पर बैठ जाए कि तमाम साहित्यिक महारथियोंको उसका उपदेश पाकर कलम घिसनी पड़े। इसी प्रकार मुझे मार्क्सवादी साहित्यिक आलोचना पद्धतिसे भी नफरत हुई। उस आलोचनाका मतलब था कि समस्त लेखक जाने-अनजाने ऐसी कल्पनाएं करते रहते हैं, जिनसे कि सत्ताशील वर्गके स्वार्थोंकी पुष्टि हो सके। मुझे ऐसा लगता है कि यद्यपि दाँते और शेक्सपीयर जैसे कवि एक अंशमें अपने युगके राजनैतिक विचारक थे, तो भी उनकी अनुभूतियोंमें कुछ ऐसी

बातें मिलतीं हैं जो मनुष्य-समाजके साधारण स्वार्थोंके बहुत परे चली जाती हैं। समाज चाहे तो उन मनीषियोंकी अनुभूतियोंको जीवनमें चरितार्थ कर सकता है। वे अनुभूतियां किसी एक युगके लिए नहीं बल्कि सदा सर्वदाके लिए सत्य होती हैं। इस प्रकार समाजका कल्याण और उत्थान हो सकता है। उन अनुभूतियोंको किसी सामाजिक अभीप्सा का प्रतीक मानना भयानक भूल है। मेरे लिए कवियोंके विश्वास पवित्र सत्य हैं। जीवनके गूढ़तम रहस्योंकी झांकी कवि हमें करा सकते हैं। कविके विश्वासको मैं समझ न पाऊँ, किन्तु उसको एक सामाजिक घटना-प्रवाह बता देनेकी धृष्ठता मैं नहीं कर सकता। यदि कला हमें कुछ सिखाती है तो यही कि सारा मनुष्य सामाजिक चारदीवारीमें समाकर नहीं रह सकता। कलासे बहुत बार समाजको सीखना पड़ता है कि अपने बन्धनों को किस प्रकार ढीला किया जाए। यह मानना ही पड़ेगा कि कला एक ऐसी अनुभूति की वाहक है जो कलाकारके अतिरिक्त और किसीको नहीं होती और जिसे कलाकार दूसरोंको कराना चाहता है। अन्यथा कला भी हमारी अन्य सामाजिक आवश्यकताओं जैसी आवश्यकता बन कर रह जाएगी। कवि और कलाकारको सामाजिक सिद्धान्तों तथा घटनाओंका श्रेष्ठ परीक्षक नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार राजनैतिक पण्डितोंको कलाके पथप्रदर्शक बननेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिए। किन्तु मैंने देखा कि कम्युनिस्ट कलाको एक कटघरेमें बाँधना चाहते हैं।

१९३०-४० के दिनोंमें एक नाटकसंघवालोंने मेरे एक नाटककी आलोचनाके लिए एक सभा बुलाई। नाटक रंगमंचपर खेला जा चुका था। एक सजधज वाली कम्युनिस्ट महिलाने खड़ी होकर मेरे नाटकको

बुरा-भला कहा। उसने कहा कि नाटकको देखकर उसे और उसके साथी कम्युनिस्टोंको घोर निराशा हुई है। उन्होंने आशा की थी कि नाटकमें पूँजीपतियोंका फासिस्ट स्वरूप, उदारवादियोंकी दुर्बलताएं तथा कम्युनिस्टों की सचाई की ओर ध्यान आकर्षित किया जाएगा। किन्तु नाटकमें इसके विपरीत उदारवादका समर्थन किया गया था। अन्तिम अंकमें तो एक रहस्यवाद की छाप भी थी। महिला कहने लगी कि समाज अपने लेखकसे उदारवाद अथवा रहस्यवाद सीखने की आशा नहीं करता, समाज चाहता है संघर्षशील कम्युनिज्मका पाठ पढ़ना। इत्यादि, इत्यादि। यही हैरी पौलिटका भी मत था। जब भी वे मुझे मिलते, कहते थे—"वर्ड्स्वर्थ, बायरन और शैले की नाईं तुम भी मजदूरोंके लिए गीत क्यों नहीं लिखते ?" मैं भला क्या उत्तर देता। इङ्गलैण्डके इन पुराने रोमाण्टिक कवियोंकी मिट्टी पलीद करना मैं नहीं चाहता था, अन्यथा विवाद करने पर तुल जाता। कुछ लोग शायद सोचें कि वह महिला और हैरी पौलिट तो भद्देसे उदाहरण हैं। मैं कहना चाहता हूं कि स्टालिनका दृष्टिकोण उससे भी भद्दा है। हाँ, उसके कहनेका ढंग जरूर अधिक जोरदार है। बहुत बार भद्दी बातको भी तरीकेसे कहकर जोरदार बनाया जा सकता है। उदाहरणके लिए चेकोस्लोवाकिया की बात कहूँगा। १९४७ में वहाँके एक बड़े विश्वविद्यालयमें रूसके एक कम्युनिस्ट प्रोफेसर रूसी भाषा पढ़ाते थे। उस समय सोवियत् यूनियनके लेखक संघने कुछ रूसी लेखकोंको खूब बुरा-भला कहा। प्रोफेसरने लेखकसंघका समर्थन करते हुए कहा कि रूसको अच्छे लेखकों की जरूरत नहीं। बोले—"माना कि ये सब हमारे श्रेष्ठ लेखक हैं। परन्तु हमें अच्छे लेखक महंगे पड़ते

हैं। हमारे श्रेष्ठ कवि ऐसी कविताएं करते हैं कि जनतामें जीवनके प्रति अश्रद्धा उमड़ती है और लोग आत्महत्या करना चाहने लगते हैं। लेकिन हम तो जनतासे काम कराना चाहते हैं, इतना काम जितना कि उन्होंने पहले कभी नहीं किया। इसलिए हम कवियोंको यह कहने की इजाजत नहीं दे सकते कि जनता असन्तुष्ट है।"

लेकिन मैं इन तमाम बातोंको भुलाकर मुख्य बातको ही लेना चाहता हूं। यदि हिंसा, गुलाम-मजदूर कैम्प, विज्ञान और कलाके ऊपर अत्याचार द्वारा अन्ततः एक वर्गहीन समाज की स्थापना सम्भव हो तो मैं उनका विरोध नहीं करूंगा। यदि कम्युनिज्ममें एक न्यायपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय समाजव्यवस्था गढ़ने की क्षमता है तो उसके विपरीत समस्त आरोप बे-मायनी हो जाएंगे। किन्तु मेरी धारणा है कि आज की कम्युनिस्ट पार्टियोंमें एक अच्छा समाज गढ़ने की क्षमता बिल्कुल नहीं है। प्रस्तुत समाजको और पीछे हटानेमें शायद वे शायद सफल हो जाएं। इसका कारण यह है कि एक मुट्ठीभर लोगोंके हाथमें समस्त सत्ता इकट्ठी हो जाती है और इन थोड़ेसे लोगोंके कामोंकी कोई आलोचना नहीं कर सकता। यदि वे कोई अत्याचार करना चाहें तो उससे बचनेका कोई उपाय नहीं रह जाता। उनमें अधिकतर बर्बरता, बदलेकी भावना, ईर्ष्या, लोभ और सत्ता की आकांक्षा ही देखी जाती है। और चूंकि मैं कम्युनिस्ट संघठनको वर्गहीन समाजका स्रष्टा माननेको तैयार नहीं, बल्कि एक घृणित नौकरशाही की भूमिका मानता हूं, इसलिए मैं अपनी विवेक-बुद्धि उस संघठन की भेंट चढ़ाना नहीं चाहता। चाहे मैं कितना ही अकिंचन हूँ और कम्युनिस्ट कितना ही सत्ताशील, मेरी बातमें अन्तर नहीं पड़ता।

कम्युनिस्ट पार्टीके भीतर सत्ताका अभूतपूर्व रूपसे केन्द्रीकरण हो गया है। राज्यकी बागडोर संभालते ही कम्युनिस्ट पार्टी और सब पार्टियोंको मिटा देती है। इस प्रकार अन्ततः सारी सत्ता सिमट कर दो चार लोगोंके हाथोंमें आ जाती है, और समाजके समस्त काम उन्हींके राजनैतिक नियन्त्रण पर चलने लगते हैं। कलाका राजनैतिक नियन्त्रण अन्तमें कलाका ध्वंस कर डालता है। चाहे पुलिससे घिरा तानाशाह अटल बना रहे, कलाके ध्वंससे अनेक लोगोंके लिए घोर यन्त्रणा की परिस्थिति उपस्थित होना भी अनिवार्य है। रूसमें तो कलाका आमूल उच्छेद हो चुका है। यह बात तो स्वयं कम्युनिस्टोंने भी बहुत बार मानी है। १९४५ में इल्या आयरनबुर्गने पेरिसमें मुझसे कहा था कि चित्रकारी की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनीमें रूस भाग नहीं ले सकता, क्योंकि रूसके पास अच्छे चित्र ही नहीं हैं। उसने यह भी माना कि अच्छे उपन्यास आजकल अमेरिकामें ही लिखे जा रहे हैं। रूसका संगीत ही उसने श्रेष्ठ बतलाया। एक हंगेरियन कम्युनिस्टने तो यह भी कहा कि रूसियोंने साहित्य और चित्रकारीको तो नष्ट कर डाला है और अब संगीतके विनाशकी तैयारी कर रहे हैं।

कलाकार समाजका सबसे अधिक चेतनाशील व्यक्ति होता है। वह पक्के तौर पर यह नहीं जता सकता कि सारी मानव जातिके लिए क्या-क्या आवश्यक है, किन्तु व्यक्तियों की भावना और अनुभूति की समझ रखने के कारण वह उनके दुःखसुख की बात खूब समझता है। कलाकार व्यक्तिवादी होता है इसका यह अर्थ नहीं कि वह केवल अपने लिए ही कला की सृष्टि करता है। इस बातका यही मतलब है कि वह अपनी

अनुभूतिको ऐसे स्तरसे आँकता और लिखता है जिसका कि सम्बन्ध बहुत लोगों की अनुभूतिसे होता है। किन्तु उन अनुभूतियोंका जनता की सामाजिक जरूरतोंसे कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं होता। कला और साहित्य किसी युगके ठोस व्यक्तिके साक्षी होते हैं। व्यक्तिको ठोक पीट, कूट पीस कर सरकारी फार्मके कॉलम भरनेका मसाला बना डालनेकी कोशिश करना एक बात है और कल का सृजन दूसरी बात। कलाके माध्यमसे विभिन्न व्यक्ति अपनी एकता और अनेकता की चेतना पाते हैं। कलाका गला घोटनेका मतलब मानव जाति की आत्मचेतनाका द्वार रुद्ध कर डालना है। यह विश्वास करना कठिन है कि कोई सरकार कलाकार और साहित्यकार की स्वाधीनता छीनकर जनताके जीवनमें सुख जुटा सकती है। सरकारी राजनैतिक पक्षके विरुद्ध भी हो तो भी कलाकारों को अपनी अनुभूतियोंके निवेदन की स्वाधीनता तो मिलनी ही चाहिए। कलाका स्थान यदि राजनीति ले लेगी तो जीवन यन्त्रवत् और खोखला हो जाएगा। कलाका उन्मूलन करना वास्तवमें एक प्रकारका पागलपन है, जैसे कि किसी व्यक्तिके कानोंको बहरा करके उसे मनको अच्छे लगनेवाले स्वर सुननेसे रोका जाए और बदलेमें उसे माइक्रोफोन दिए जाएं, जिनकी सहायतासे वह सरकारी प्रचारका स्वर ही सुन सके। फिर भी इसी स्वाधीनताको लोग एक नारेके बदलेमें बेचनेके लिए तत्पर हो जाते हैं। नारा कहता है कि स्वाधीनताका असली अर्थ है परिस्थितियोंके बन्धनोंको समझ कर स्वीकार कर लेना। और जब परिस्थितियोंका परिचय देना सरकारका दायित्व बन जाए तो एक अमूर्त, सामूहिक मानवकी बुद्धि-कल्पित आवश्यकताएँ सब जीते-जागते व्यक्तियों

की आवश्यकताएँ बन कर रह जाएंगी। कलाकी स्वाधीनताका सही मतलब है कि प्रत्येक मानव-प्राणी एक व्यक्ति भी है। कला कोई राज-नैतिक तत्व नहीं, फिर भी उसका राजनीति पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि कला द्वारा ही हम राजनीतिक स्वाधीनताकी परिभाषाको उत्तरोत्तर अधिक व्यापक बनाना सीखते हैं। इस व्यापकताके कारण ही पीढ़ी-दर-पीढ़ी हम जीवनकी नई-नई झाकियाँ देखते हैं और समाजके राजनीतिक आदर्शोंकी परिभाषाओंको भी व्यापकतर बनाते चलते हैं।

मेरा कोई विपक्षी आलोचक कह सकता है कि इस निबन्धमें मैंने कम्युनिज्मका विश्लेषण करनेकी बजाय आत्मविश्लेषण हो अधिक किया है। मैं मानता हूं। मैंने कम्युनिज्मकी पृष्ठभूमिकामें आत्मविश्लेषण किया है। मैं कम्युनिज्मका विश्लेषण करने जैसे निरर्थक काममें समय बरबाद करना नहीं चाहता। कम्युनिज्मका विश्वास है कि समाज-परि-वर्तन करनेके लिए मनुष्योंको परिवर्तन करनेवाली मशीनें बनाना पड़ेगा। जो आजकी समाज-व्यवस्थासे मेरी तरह असन्तुष्ट हैं, वे इस विश्वासको अस्वीकार नहीं कर सकते, केवल इसके प्रति अपना दृष्टिकोण बता सकते हैं। मैंने वही किया है। आत्मविश्लेषणके सिवाय कोई किनारा ही नहीं। अपने आत्मविश्लेणकी सीढ़ियों पर एक दृष्टि डालता हूं तो निम्नलिखित मंजिलें मिलती हैं।

हैरी पौलिटके साथ मेरी मुलाकातसे मेरा आत्मविश्लेषण आरम्भ हुआ। उसने कहा कि पूँजीवादसे घोर घृणा करना आवश्यक है। मुझे अपने भीतर ऐसी घृणाकी कोई प्रेरणा नहीं मिली।

मुझमें एक सामाजिक और नैतिक आत्मग्लानिकी भावनाने सिर

उठाया। मुझे ऐसा लगने लगा कि मुझे प्रस्तुत संघर्षमें पक्ष लेनेका फैसला करना चाहिए। मुझे यह भी प्रेरणा मिली कि मजदूर आन्दोलनके साथ सहयोग करके मुझे अपने अतिशय व्यक्तिवादको घटाना चाहिए।

आज मुझे स्पष्ट दीख पड़ता है कि एकबार पक्ष ले लेने पर मुझे कम्युनिस्ट पार्टीमें भरती होनेकी जरूरत नहीं थी। जो भी सामाजिक न्याय और स्वाधीनतामें विश्वास रखते थे और जो अपने आदर्शोंकी सिद्धिके लिए आवश्यक साधनोंको समझ कर सच बोलनेके लिए तैयार थे, उन्हींका पक्ष मैंने लिया था। यदि राजनीतिज्ञ लोग खुले तौर पर ईमान्दारीके साथ अपना मत नहीं बता सकते तो बुद्धिवादीको चाहिए कि सबसे कम बेईमान राजनीतिज्ञका पक्ष ले। राजनीतिज्ञकी सहायता करते समय बुद्धिवादीको उसकी आलोचना भी करते रहना चाहिए। हिंसा और झूठका भण्डाफोड़ अत्यन्त आवश्यक है।

उदारवादी व्यक्तियोंने १९३०-४० के जमानेमें एक नैतिक अन्तर्द्वन्द झेला था। द्वन्दका विषय था साधन और साध्यका सम्बन्ध। एक तर्क था कि सत्ता प्राप्त करनेके लिए बुरे साधन भी अपनाने चाहिएँ। किन्तु उन बुरे कामोंको करते समय यदि करनेवालों पर उंगली उठाई जाती थी तो वे बिगड़ने लगते थे। एक लेखक और बुद्धिवादीके नाते इस धांधलीका किनारा खोजना मेरा कर्त्तव्य बन गया। आरम्भमें तो मुझसे कुछ भूलें हुईं। मेरे भीतर जो कुछ मूल्यवान था उसीके लिए मैंने अपने-आपको टोंचा। एक ओर तो मुझे समाजकी वेदना हिला देती थी। किन्तु सरी ओर मैं अपने भीतर एक ऐसे व्यक्तित्वका

आभास पाता था जो किसी भी सामाजिक आन्दोलनमें मर-मिटनेके लिए तैयार नहीं था। उस व्यक्तित्वमें सबके लिए करुणा और मैत्रीभाव था। इसीलिए मैं आसानीसे पक्ष नहीं ले सकता था। इसी बातको लेकर मैंने अपने-आपको कोसा। फिर मुझे ऐसा लगा कि करुणा, मैत्रीभाव और व्यक्तिगत स्वाधीनताके आदर्शोंकी प्रेरणाने ही मुझे कम्युनिस्ट बनाया है। कम्युनिस्ट कहने लगे कि ये सब भावनाएं बूर्जुआ हैं और पार्टीमें भरती होनेके बाद इन सबको कुचल देना चाहिए। बात मेरी समझमें नहीं आई।

आज मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि बिना कोई पक्ष लिए जो कुछ मुझे ठीक जंचता है उसीका समर्थन मुझे करना चाहिए। आज संसारमें दो पक्ष हैं, किन्तु मैं जिस सुलझावको संसारकी उलझनोंका एकमात्र सुलझाव मानता हूँ, उसको कोई-सा पक्ष नहीं मानता। मेरा सुलझाव सीधा सा है। जो लोग और जो राष्ट्र स्वाधीनताके प्रेमी हैं उन्हें चाहिए कि संसारके दीन-दुखी जनगणके लिए कुछ ठोस काम करें। जनगण आज स्वाधीनताकी बजाय रोटीके लिए अधिक तरसता है। उनकी भूखको मिटा कर उन्हें उस स्तर तक उठा लेना जहाँ कि वे स्वाधीनताकी कीमत समझने लगें, हमारा कर्त्तव्य है। संसारके जो मुट्ठी भर लोग स्वाधीनताके प्रेमी हैं, उनको अपने स्वार्थ जनगणके स्वार्थोंके साथ जोड़ने होंगे। और आज जनगणका सबसे बड़ा स्वार्थ है रोटी। यह मेल नहीं हुआ तो स्वाधीनताका लोप होनेमें मुझे सन्देह नहीं।